

श्री रामचरित मानस

बाल-काण्ड

(मूल व्याख्या एवं भ्रालोचनात्मक प्रश्नोत्तर सहित)

टीकाकार

श्रीमती गायत्रीदेवी ^{पू. म. प्र. वि. वि.} ज्योतिषी

प्रमुख विशेषताएँ

महाकवि तुलसी का व्यक्तित्व और कृवित्व परिचय

मूल एवं टीका सगों में विभक्त

- शब्दार्थ, भावार्थ, एवं छंद अलंकार की पूर्ण व्याख्या सहित
- महत्वपूर्ण परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तर
- सरल शुद्ध भाषा एवं प्रभावपूर्ण शैली में
- प्रसिद्ध अनुभवी लेखकों द्वारा लिखित

एज्यूकेशनल पब्लिशर्स

चौड़ा रास्ता, जयपुर

नवीन संस्करण

मूल्य ₹ ५०

❀ अनुक्रमणिका ❀

विषय	पृष्ठ संख्या
१. वयानार	१
२. व्यात्या भाग	१२
३. तुलनी पर नामान्य प्रश्न	२४८
४. बालकाण्ट पर प्रश्न	२८५

रामचरित मानस

[बाल काण्ड]

संक्षिप्त कथा—

वन्दना —‘रामचरित मानस’ गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख और प्रसिद्ध रचना है। इस रचना को हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा जा सकता है। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र का सविस्तार वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ सात काण्डों में विभाजित है। प्रत्येक काण्ड की कथा अपने पूर्वापर काण्डों से सम्बद्ध है। बालकाण्ड इसका प्रारम्भिक अंश है। इसमें कवि ने मंगलाचरण किया है। सर्वप्रथम सरस्वती की वन्दना की गयी है, इसके बाद क्रमशः गणेशजी, शिव-पार्वती, वाल्मीकि, हनुमानजी, सीताजी और श्रीराम को प्रणाम किया गया है। अपनी रचना के उद्देश्य को कवि ने प्रारम्भ के एक श्लोक से स्पष्ट कर दिया है—

“नाना पुराण निगमागम समत यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि,
स्वान्तं सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा, भाषा निबध अति मञ्जुल मातनोति।”

रचना स्वान्तः सुखाय .—अनेक पुराणों, वेदों, शास्त्रों आदि से सम्मत, जो कुछ वाल्मीकि रामायण में वर्णित है, अन्यत्र भी कई स्थानों पर जिसका वर्णन मिलता है, उस राम कथा को तुलसी अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अति सुन्दर भाषा में रचकर विस्तृत करता है। इससे यह स्पष्ट है कि तुलसी ने रामचरित मानस की रचना ‘स्वान्त सुखाय’ की है। तुलसी सभी देवों की स्तुति करते हुये कहते हैं कि वे उन पर प्रसन्न हों तथा श्रीराम के चरणों में अनुरक्ति उत्पन्न करें। कवि ने अपने गुरुजन को प्रणाम करके भूसुरों (ब्राह्मणों) के चरणों की वन्दना की है। उसकी दृष्टि में सत् समाज तीर्थ राज के समान होता है, उसकी सगति या सत्सगति से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। विना सत्संग के ज्ञानोदय नहीं हो सकता।

राम ने राम नाम कहा —तुलसी ने राम नाम के ज्ञान ने सभी
 ईश्वरों को पुनः प्रणाम किया है, क्योंकि वान्प्रस्थों को प्रणाम किया है राजा
 दशरथ और रानिसौ को प्रणाम करने उन्होंने राजा दशरथ के नामों राम-भार्ये
 की वन्दना की है। साथ ही उन्होंने श्रीराम के पत्न भयन हनुमान, जाम्बवन्त
 आदि को प्रमाण किया है। 'रामनाम' की वन्दना करके वे नाम को राम में
 अविष्ट मानते हैं। तुलसी के विचार से राम के नाम का द्रष्टव्य मन्त्र है, उसने
 ईश्वर के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूप अभिहित हैं। भगवान् के नाम ने
 करोड़ों जनों का उद्धार किया है जबकि स्वयं श्रीराम ने सी-पंचाम भक्तों का
 उद्धार किया होगा। इसी प्रकार के महिमामय श्रीराम के मृगुण रूप का गान
 तुलसी ने किया है।

चार सबाद :—तुलसी के रामचरित मानस की कथा अनेक ग्रन्थों और
 लोक कथाओं के आधार पर बनी हुई है। इस कथा को सर्व प्रथम शिवजी ने
 पार्वती जी ने कहा था तत्पश्चात् गरुड जी ने वाक भुगुण्डी को राम कथा का
 अधिष्ठात्री मनन कर यह कथा गयी। काक भुगुण्डी से यह कथा यागवल्क्यने
 तथा उनके भरद्वाज ने सुनी। इन प्रकार यह कथा जनन-जिह-पादनी,
 याज्ञवल्क्य भरद्वाज वाक भुगुण्डी-गुरुड और अन्त में तुलसी-भक्तों की
 कथा के रूप में प्रचलित हुयी। 'रामचरित मानस' में ली गयी यह कथा

कलमल-विध्वंसिनी है। भगवान् शंकर ने श्रीराम की इस कथा को पहले सती को और बाद में पार्वती के लिये कहा। उन्होंने ही इसका नाम 'मानस' रखा।

मानस-रूपक — 'मानस' का एक अर्थ होता है-मानसरोवर और दूसरा अर्थ होता है-मन। गिवजी ने इस कथा को अपने मन में सोचा और बाद में कहा-इस कारण यह 'राम-चरित मानस' के नाम से प्रसिद्ध हुई। तुलसी ने अपने 'मानस-रूपक' में इस कथा का विश्लेषण किया है।

रूपक वाचते दृष्टे उन्होंने लिखा है कि उपर्युक्त चारों सवाद ही इस मानस (मानसरोवर) के चार मनोहर घाट हैं, सात काण्ड इसकी सात मीटियाँ हैं। श्रीराम और सीता का यग ही इसका सुवोपम जल है, इसकी उपमायें ही इसकी तरंगें हैं, आदि। तुलसी की बुद्धि इसके निर्मल जल में स्नान करने से पावन हो गयी है। इसमें रामचरित रूपी जो निर्मल जल भरा है वह सासारिक आशा और तृष्णा को नष्ट करने वाला है। जो व्यक्ति इसमें अवगाहन करता है या इसका पान करता है, वह समार की सभी व्यथाओं से मुक्त हो जाता है।

शिव के आराध्य राम — तुलसी ने इस पवित्र जल में अपने मन को स्नान कराया है और पञ्चात कथा का आरम्भ करते हुए लिखा है कि प्रसिद्ध तपस्वी भरद्वाज तीर्थराज प्रयाग में निवास करते थे। वहाँ मकरमकरान्ति के दिन अनेक ऋषि मुनि आते थे, स्नान करते थे। और कुछ समय तक विश्राम करके चले जाते थे। एक बार भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य नामक ऋषि को रोक लिया और श्रीराम के बारे में उनसे पूछने लगे। याज्ञवल्क्य ने उन्हें शिव पार्वती सवाद कह सुनाया। उन्होंने कहा कि त्रेतायुग में एक बार गिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। वहाँ कुछ समय तक बहर कर उन्होंने उन्हें रामकथा सुनायी। शिवजी ने उस कथा को प्रेम पूर्वक सुना। विष्णु ने उस समय पृथ्वी का उद्धार करने के लिये राम का अवतार लिया। वे अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र थे। गिवजी ने श्रीराम के दर्शन उनके वनवास काल में किये थे। जब नीताहरण हो चुका था, श्रीराम और लक्ष्मण व्याकुलता से उनकी खोज करके लौट रहे थे तभी सती सहित शिव ने उनके दर्शन किये। सती के पूछने पर उन्होंने कहा कि ये ही मेरे आराध्य श्रीराम हैं। जब सती को यह विश्वास न हुआ तो अपने

सीता का वेश बनाकर उनकी परीक्षा ली, किन्तु श्रीराम उसे तुरन्त पहचान गये। उनके यह पूछने पर कि शिव को कहाँ छोडा, सती लज्जित हुई। श्रीराम ने उन्हें अपना परिचय दिया और उनके भ्रम को दूर कर दिया।

शिव ने समाधि लगायी.—शिवजी ने सती के रूप बदलने की बात को व्यान लगाकर नमस्त लिया था। उन्होंने श्रीराम की उस माया को प्रणाम किया जिसके कारण सती ने मिथ्या आचरण किया था और शिवजी के सामने आकर मिथ्या वचन कहे थे। उन्होंने इसी कारण यह निश्चय किया कि वे सती के शरीर से भेट नहीं करेंगे। शिवजी के इस निश्चय का आभास सती को मिल गया था। शिवजी ने कैलाश में जाकर बट वृक्ष के नीचे समाधि लगा ली। सती बहुत दुःखी रहने लगी और वह भगवान् से अपनी मृत्यु मागने लगी। सत्तासी हजार वर्ष के बाद शिवजी ने अपनी समाधि छोडी इसके बाद उन्होंने सती को अर्धांगिनी न मानकर अपने सामने आसन दिया और श्रीराम की कथा कहने लगे।

दक्ष द्वारा यज्ञ —सती के पिता प्रजापति दक्ष थे, उन्होंने एक बहुत बड़ा यज्ञ करना प्रारम्भ किया। उस समय तक दक्ष प्रजापति एक अभिमानी शासक हो चुके थे। उन्होंने यज्ञ के भागी सभी देवताओं को बुलाया, अपनी पुत्रियों को भी आमन्त्रित किया। किन्तु सती को नहीं बुलाया। इसका कारण यह था कि वे शिवजी में शत्रुता रखते थे। सती बिना बुलाये ही शिवजी में आज्ञा लेकर यज्ञ में सम्मिलित होने चली गयी। जाते समय उसे अच्छे शकुन नहीं हुये, प्लवस्वरूप वहाँ भी सती का कोई आदर नहीं हुआ। यज्ञ में शिवजी का भाग नहीं रखा गया। इससे सती को बहुत बुरा लगा। इस आचरण को उसने अपना अपमान समझा। बहू उपस्थित सभी ऋषि मुनियों को फटकार कर उसने योग विद्या में अपने शरीर को भस्म कर दिया। उधर जब शिवजी को यह सूचना मिली तो उन्होंने अपने एक सेवक वीर भक्त को भेजकर यज्ञ का विन्वंस कराया। सती ने मरते मरते ईश्वर से यह वरदान मागा कि जन्म-जन्म में मुझे शिवजी के चरणों में आश्रय मिले। सती ने दूसरे जन्म में इसी कारण हिमाद्रय के यहाँ मना के गर्भ से जन्म लिया। नारद मुनि ने इस नवजात कन्या का भविष्य बताया और कहा कि अन्य सभी लक्षण शुभ हैं किन्तु इसको जो पति मिलेगा वह पागल सा तथा अमंगल बेशवाला होगा।

उमा की तपस्या — हिमालय की भी इससे चिन्ता हुई। उसने इसका उपाय पूछा। नारदऋषि ने कहा कि यदि इसका विवाह जरूर के साथ हो जाय तो इनके सभी दोष दूर हो जाय। उमा ने शिव की प्राप्ति के लिये घोर तप किया। उनके मन में शिव के प्रति स्वभाविक प्रेम था। तप यहाँ तक बढ़ा कि उसने पत्ते खाना भी छोड़ दिया। इसलिये उमा को 'अपर्णा' भी कहते हैं। जब आजागवाणी में यह बात हुआ कि उमा की सभी कामना पूर्ण होगी, तब उसे मन्तोप प्राप्त हुआ। श्रीराम ने प्रकट होकर शिवजी ने प्रार्थना की कि वे उमा से विवाह करने। शिव ने उमा के प्रेम की परीक्षा ली और जब उन्हें उसके अचल प्रेम का आभाम मिल गया तो शिवजी ने पार्वती के साथ विवाह करने का निश्चय किया।

कामदेव को भस्म किया :—उन्हीं दिनों तारक नाम का एक भयंकर राक्षस उत्पन्न हुआ। सभी देवता उसके आतंक से दुःखी थीं। जब वे ब्रह्मा के पास पहुँचे तो उन्होंने बताया कि शिवजी का पुत्र ही इसे परास्त कर सकता है। सती ने हिमालय के यहाँ जन्म ले लिया है। यदि शिवजी उसके साथ विवाह करले तो इस राक्षस के मारे जाने का सुयोग मिल सकता है। देवताओं ने शिवजी को समाधि से विचलित करने के लिये कामदेव को भेजा। कामदेव का वाण लगते ही शिवजी की समाधि भंग हो गयी। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला, जिससे कामदेव भस्म हो गया। शिवजी ने उसे 'अनग' कर दिया और उसकी विलाप करती हुई पत्नी रति को विश्वास दिलाया कि तुम्हारा पति द्वापर में श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में जन्म लेगा।

शिव पार्वती विवाह — कामदेव के भस्म हो जाने के बाद सभी देवता शिव के पास गये और पार्वती के साथ विवाह करने की प्रार्थना की उन्होंने देवताओं के प्रस्ताव को मान लिया। हिमालय ने पार्वती के विवाह का लम्बे पत्र ब्रह्मा जी से लिखवा कर भेजा। शिवजी की वागत में सभी देवता गये उनके गण भी गये। देवताओं ने अपने दल को अलग कर लिया। अब शिवजी अपने कुरूप और डरावने गणों सहित व्याहने चले। जैसा दूल्हा वैसी ही बरात बन गयी। हिमालय ने बरात के स्वागत की बहुत अच्छी व्यवस्था की थी। किन्तु शिवजी के दल को देख कर सभी पुरवासी स्त्री पुरुष डर गये, सर्वत्र खलबली मच गयी। मैना को बहुत बुरा लगा। किन्तु पार्वती ने समझाया

त भाग्य में लिखे हुए को कौन मिटा सकता है। ऋषियों ने भी समझाया कि पार्वती जन्म जन्मान्तर में ही शिव की अर्धांगिनी है। हिमालय में बरतियों ने बहुत मत्कार किया। ऋषियों ने शुभ लग्न में पाणिग्रहण नस्कार कराया। ना ने पार्वती को बर्त प्रजार की उत्तम शिक्षाये दी। शिव गिरिजा महि लैलाम पर्वत पर निदान करने लगे। उनके स्वामी वातिकेय नामक एक ऋषि की उरति हुई। उनमें युद्ध में तारक नामक राक्षस को मार कर देवताओं ने दुःख को मिटाया।

नर शरीर ब्यो धारण किया :—याज्ञवल्क्य के द्वारा कहे गये शिवजी के चरित्र को सुनकर भरद्वाज बहुत प्रसन्न हुये। इन प्रकार पहले तो याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को शिव चरित्र सुनाया और बाद में वे श्रीराम क्या कहने लगे। कैलास पर्वत पर पावनी ने शिवजी से प्रश्न किया कि ये राम कौन हैं? तो उन्होंने प्रसन्न होकर राम क्या कहना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि हे देवि! श्रीराम अनादि और अनन्त हैं। पार्वती ने पुनः प्रश्न किया कि यदि वे परमात्मा हैं तो उन्होंने नर शरीर ब्यो धारण किया। तब शिवजी कहने लगे कि जो क्या गरुडजी ने फाकभुशुण्डी से कही थी, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ। जब-जब धर्म की हानि हुई है या होती है तो भगवान् नर शरीर धारण करते हैं और असुरों को मारकर राक्षसों का नाश करते हैं।

असुरों के तीन जन्म —असुरों को मारने की कथा भी विचित्र है। विष्णु भगवान् के यहाँ जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे। उनके सनन्द-नादि ऋषियों के जाप से वे राक्षस बन गये। उन्होंने कश्यप और दिति के यहाँ जन्म लिया। एक का नाम हिरण्यकश्यप और दूसरे का नाम हिरण्यकश्यप था। भगवान् ने तृप्तिह अवतार धारण करके हिरण्यकश्यप को और बराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष को मारा। तीसरे जन्म में उक्त दोनों राक्षसों ने रावण और कुम्भकरण के रूप में जन्म लिया तो श्रीराम ने अवतार लेकर इन दोनों का संहार किया।

जलंधर और वृक्षा .—इसी प्रकार एक क्या इस प्रकार है कि जलंधर नाम का एक भयंकर राक्षस था, जिसकी पत्नी वृक्षा मनी थी, इसलिए उसे 'जलंधर देवता पत्नी नहीं' कहा था यहाँ तक कि शिवजी भी उसे नहीं हरा सके थे। भगवान् ने छल से वृक्षा के पतिव्रत को रण्डित कर दिया। उसे जब

यह जात हुआ तो उसने भगवान को शाप दिया कि तुम स्त्री के लिये वन-वन भटकते फिरोगे। जल्द ही देवताओं में पराम्भ होकर मारा गया। दूसरे जन्म में वह रावण बना। एक अन्य युग में भगवान को नारद जी के शाप के कारण अवतार लेना पड़ा। महर्षि नारद एक बार समाधिमग्न थे। उन्होंने अपने तपोबल में कामदेव को भी जीत लिया था। इस बात का उन्हें अहंकार था। उन्होंने शिवजी में भी कहा जब नारद के अहंकार की बात विष्णु को जात हुई तो उन्होंने अपनी माया से एक सुन्दर नगरी का निर्माण किया और विष्णु मोहिनी रूप को धारण किया। नारदजी उधर में निकल रहे थे, वे उसे देख कर मोहित हो गये और कामवश हो गये।

नारद मोह :-विश्वमोहिनी का स्वयंवर रचा गया। उसमें अनेक राजा आये। नारदजी ने विष्णु से प्रार्थना की कि वे उन्हें बहुत सुन्दर रूप दें। किन्तु सुन्दर रूप देने के स्थान पर उन्हें बानर का रूप दे दिया। फलस्वरूप विश्वमोहिनी ने उनकी ओर देखा भी नहीं। नारदजी को जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो वे बड़े क्रुद्ध हुये। उन्होंने विष्णु को शाप दिया कि तुमने जिस रूप को धारण कर मुझे छला है उसी रूप का (स्त्री का) तुम्हें दुःख हो, और मेरा यही रूप तुम्हारी सहायता करे। जब नारदजी शाप देकर लौट रहे थे तो मार्ग में उन्हें शिवजी मिल गये। उन्होंने जब शाप मुक्ति के लिये प्रार्थना की तो नारद जी से कहा कि तुम दोनों राक्षस बनोगे और नरशरीर धारी भगवान के हाथों से तुम्हारी मोक्ष होगी।

मनु और शतरूपा — शिवजी ने कहा कि हे पार्वती ! 'भगवान की माया प्रबल है, वे अनन्त हैं। उनकी माया के वश में बड़े-बड़े ऋषि मुनी भी हो सकते हैं। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से कहा कि शिव ने पार्वती को भगवान के अवतार का एक और भी कारण बताया है। वह इस प्रकार है कि सृष्टि के कारण स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा एक बार धर्माचरण करते हुये जा रहे थे। उनके उत्तानपाद नामक एक पुत्र हुआ जिनके पुत्र का नाम ध्रुव है, जिसने भगवद्भक्ति से परम पद की प्राप्ति की थी। दूसरे पुत्र प्रिय व्रत थे जिनकी पुत्री का नाम देवदत्ति था। देवदत्ति का विवाह कर्दम ऋषि के साथ हुआ। उनके कपिल नामक पुत्र हुआ जो आगे जाकर कपिल मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। रवायम्भुव मनु अपने पुत्र पर राज्य भार छोड़कर पत्नी सहित वन-

मे चले गये। वहाँ उन्होंने हजारों वर्षों तक तपस्या की। भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये और वर मागने के लिये कहा। मनु और शतरुपा ने उनसे प्रार्थना की कि हमें आप जैसा पुत्र मिले। किन्तु भगवान ने कहा कि मुझ जैसा दूसरा व्यक्ति वहाँ से दू इसालेयें मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा तुम अमरावती में जाकर निवास करो।

प्रताप भानु और अरिभर्दन — श्री राम के अवतार लेने का अन्य कारण बताते हुये याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से कहा कि जो कथा शिवजी ने पार्वती जी ने कही वही मैं तुम्हें कहता हूँ। कौरव देश में मत्स्य केतु नामक एक प्रतापी राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे प्रताप भानु और अरिभर्दन। दोनों भाई बड़े यशस्वी थे, दोनों में परस्पर बहुत प्रेम था। राजा बड़े पुत्र को राज्य देकर वन में चला गया था। प्रताप भानु एक यज्ञन्त्री और प्रतापी धानक था, धर्मरुचि उसका मंत्री था जोकि अत्यधिक चतुर और बुद्धिमान् था, अरिभर्दन उसका वीर भाई था। इन कारण प्रतापभानु एक सम्राट बन गया। वह दानशील तथा प्रजा का सच्चा सेवक था और उसने प्रजा की सुख समृद्धि के लिये भरपूर प्रयत्न किये थे। वह धार्मिक तो ऐसा था कि जो कुछ भी करता था वह भगवान के चरणों में अर्पित कर के करता था।

कपटी मुनि.—एक बार राजाप्रताप भानु शिकार के उद्देश्य ने विध्याचल के घने जंगलों में चला गया। वहाँ वह एक सूअर को देखकर उसके पीछे हो लिया। सूअर भी घनी झाड़ियों में चलागया और वहाँ से एक पहाड़ी की शृङ्गा में चला गया। राजा उसका पीछा करते हुए एक ऐसे आश्रम में पहुँच गया जहाँ उसका एक शत्रु राजा कपट मुनि का देश बना कर रहता था। प्रतापभानु ने उस राजा के राज्य को छीन लिया था। वह राजा बड़ा ही स्वाभिमानी था इस कारण न तो उसने प्रतापभानु से मिलना उचित समझा और न वह धर गया। क्रोध को दवा कर वह यहाँ कपट का देश बना कर रहता था। उसने प्रतापभानु को तुरन्त पहचान लिया और कहा कि यन्तु! अन्न रान हो चुकी है, अँबेरे न रहाँ जाओगे, यहाँ ठहर जाओ। राजा इन आकस्मिक प्राप्त सुखिया के कारण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने भाग्य की सराहना की।

प्रतापभानु को ब्राह्मणों का श्राप :—राजा के पूछने पर कपट मुनि ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मुझे एकतनु कहते हैं, ऋषि के प्रारम्भ में

ही मेरी उत्पत्ति हुई थी, उस समय ने अब तब मे उसी शरीर में हूँ। राजा उस बात ने बहुत प्रभावित हुआ और अपना परिचय देने लगा। परन्तु कपटी मुनी ने कहा कि मैं नर नरता हूँ। तुम प्रतापमानु हो, तुम्हारे पिता का नाम मत्स्यकेतु है। मैं प्रमत्त होकर तुम्हें सरदान देना चाहता हूँ, मायो। नजाने नौ कल्प तक आशुतक राज्य मागा। कपटी मुनि ने कहा कि तुम नरुण ब्राह्मण कुल को अपने वन में तरलो। तुम्हें ब्राह्मण कुल के शाप के अलावा कोई नष्ट नहीं तर सकता। इतने साथ ही वह भी ध्यान रखना कि हमारे इस मित्रता प्रमग गोपनीय रहे। अन्यथा तुम्हारा नाम हो जायगा। राजा ने पूछा कि ब्राह्मण कुल को वन में करने का क्या उपाय है। कपटी मुनि ने कहा कि मेरी बनाई हुई रमों को यदि तुम परानां तो जो भी उसे सायेगा वही तुम्हारे वन में हो जायगा। ध्यान रहे कि मेरा परिचय किसी को भी न मिले। तुम प्रतिदिन लाखों ब्राह्मणों को भोजन कराओ। मैं तुम्हारे पास पुरोहित का रूप बना कर आऊंगा, तुम्हारे पुरोहित को मैं हर आऊंगा। इस प्रकार तुम्हारा उद्देश्य नफल हो जायगा। तुम्हें अभी घोड़े सहित घर पहुँचा दिया जायगा और मैं तुम्हारे पास आज से तीसरे दिन आऊंगा। जब मैं एकान्त में बूला कर तुम से मिलूँ और क्या भुनाऊँ तो मुझे पहचान लेना। तुम थके हुये हो, अब विश्राम करो।

राजा के विश्राम करने पर वहाँ वही सूअर राक्षस बन कर आया। वह कालकेतु नामक राक्षस था और कपटी मुनि का परम मित्र। कपटी मुनि ने उसे चारा वृत्तान्त मुना दिया। राक्षस ने कपटी मुनि को विश्राम दिलाया कि वह प्रतापमानु को सकुल नष्ट करके चौथे दिन तुम्हारे पास आ जायगा। उसने राजा को घोड़े सहित घर पहुँचा दिया और उसके पुरोहित को वह यहाँ ले आया। पुरोहित की बुद्धि में अम उत्पन्न करके उससे जो भोजन बनवाया गया उसमें ब्राह्मणों का मांस भी मिला दिया गया। जब राजा उसे परोसने लगा तो आकाशवाणी हुई की हे ब्राह्मणो ! इस भोजन में ब्राह्मणों का मांस मिला हुआ है, इसलिये इसे न खाना। ब्राह्मण उठ खड़े हुए और उन्होंने राजा को शाप दिया कि तू जाकर परिवार सहित राक्षस हो। एक वर्ष भर में तेरा कुल सहित नाश हो। किन्तु फिर आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मणो ! तुमने विचार करके शाप नहीं दिया। राजा ने जब वहाँ जाकर देखा तो न रसोइया था न सामान। किन्तु ब्राह्मणों का शाप टाले से कैसे टल सकता था ?

कालकेतु ने यह सब सुट करके पुरोहित को उनके घर पहुँचा दिया और तपट मुनि को भाग डाल कह मुनाया। तपट मुनि ने प्रतापमानु के पानुओं को नगठिन करके उसे घेर लिया और गुड ने उनकी भाँटे नहीं मार दिया। इस प्रकार मन्थकेतु का मारा तुल नष्ट हो गया। मान्यन्त ने कहा कि हे भारद्वाज ! वही राजा परिवार नहीं दूने जन्म में रावण बना, उनका छोटा भाई अरिभद्रन कु नवरण बना, मनी धर्मवी विभीषण बना और परिवार के अन्य सदस्य भयकर राक्षस बने। यद्यपि वे पुस्त्य ऋषि के कुल में जन्मे थे फिर भी ग्राहणों के शाप के कारण रावण बन पड़े थे। रावण कु भवरण और विभीषण ने घोर तपस्या करके भगवान् से अलग-अलग घरदान प्राप्त किये थे ? रावण ने भाग था कि वह किसी नर या वाहर से न मारा जाय, कु नवरण ने छ महिन की निद्रा मागी थी और विभीषण ने भगवान् के चरणों में भक्ति मागी थी।

लंका का राक्षस कुल — रावण का विवाह नय नामक राक्षस की पुत्री मन्दोदरी के साथ हुआ था। उसने लंका को राजधानी बनाकर राज्य करना प्रारम्भ किया था। उसने नमस्त पृथ्वी को जीतकर देवताओं तक पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। रावण के पुत्र का नाम मेघनाथ था। वह इतना पराक्रमी था कि उसके भय से देवताओं तक में खल-बली मच जाया करती थी। रावण का भारी आतक छाया हुआ रहता था। यज्ञ, ब्राह्मण, भोजन आदि धार्मिक कर्मकाण्डों में वह और उसके माथी राक्षस बहुत विघ्न डालते रहते थे। रावण एक अद्वितीय वीर था। उसकी तुलना का वीर उसे कहीं भी नहीं मिला था। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण, मरुत आदि देवों को उसने अपने वश में कर लिया था। फिर पृथ्वी पर तो ऐसा कोई जीव नहीं बचा था जो उसके चरणों में प्रणाम न करता हो। सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे।

रावण के राज्य में अत्याचार — रावण के राज्य में अत्याचार और पाप बहुत बढ़ गया था। पृथ्वी भी उसके पाप कर्मों से आतंकित होगयी थी। इसलिये शंकर कहने लगे कि हे उमा ! अत्याचारों में पीड़ित पृथ्वी, उर कर गाय का रूप धारण करके वहाँ पहुँच गयी जहाँ देवता और मुनि छिपे हुये थे। उसने उन सभी में अपना दु ख सुनाया। किन्तु वे कुछ न कर सके। तब सभी मिलकर ब्रह्मा जी के पास गये। विचारे ब्रह्माजी का भी दश न चल सका। उन्होंने पृथ्वी से कहा कि हे पृथ्वी ! धर्म वारण करो और श्री हरि का

स्मरण करो, उनके सिवाय तुम्हारी इस विपत्ति को कोई मिटा नहीं सकता। उस समय सबने मिलकर भगवान् की प्रार्थना की। उनको एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि टरो मत में सूर्य वश में अवतार लूगा। मैंने कश्यप और आदिति को वर दे दिया है कि मैं उनका पुत्र बनूंगा। वे दशरथ और कौशल्या के तप में अयोध्या में विराजमान हैं। मैं पृथ्वी का सारा भार हरे लूंगा। इस वाणी को सुनकर सब को भारी सन्तोष हुआ। पृथ्वी भी बहूत सुखी हुई। भगवान् ने सभी देवताओं से कहा कि तुम पृथ्वी पर जाकर वानरो का तप धारण कर लो और वहाँ भगवान् के चरणों की सेवा करो। ब्रह्मा जी भी अपने लोक में चले गये।

बालकाण्ड

मंगलाचरण

दर्शानामयंसंघाना रानानां छन्दस्तानपि ।

मंगलाना च पतारौ वन्दे वागोविनायकी ॥ १ ॥

शब्दार्थ — पतारौ = करने वाले, वन्दे = प्रणाम करता हूँ, विनायक = गणेशजी । वाणी = सरस्वती ।

व्याख्या — कवि तुलसी दाम रूढ़ने हैं कि जो मरम्यती चणों और अर्थ-समूहों, रनों और छन्दों को बनाने वाली हैं, तथा जो विनायक (गणेश जी) मंगल के देने वाले हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ ।

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वास्तस्त्रिणौ ।

यान्या विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्त्र्यमौश्वरम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ — यान्या = जिन दोनों के, पश्यन्ति = देखने हैं, स्वान्तस्त्र्यम् = अपने में समायें हुए ।

व्याख्या :— मैं श्रद्धा और विश्वास के स्वल्प जिन और पार्वती को प्रणाम करता हूँ जिनके विना सिद्ध लोग अपने हृदय में बसे हुये ईश्वर के दर्शन नहीं कर पाते हैं ।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकरस्त्रिणम् ।

यमाश्रितो हि वञ्चोऽपि चन्द्र सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :— बोधमय = ज्ञान मय, नित्य = नश रहने वाला, वरु = देहा, अपि = भी, वन्द्यते पूजा जाता है ।

व्याख्या — कवि तुलसी दाम जी कहते हैं कि मैं ज्ञानमय और सदा रहने वाले श्रीशंकर रूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ । जिनके आश्रय में रहकर देहा चन्द्रमा भी सर्वत्र द्वारा पूजा जाता है ।

सीतारामगुणग्रामपुष्पारण्यविहारिणी ।

वन्दे विशुद्ध विज्ञानी कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — गुणग्राम = गुणों के समूह, विशुद्ध विज्ञानी = विन्दु ज्ञान से युक्त, कवीश्वर = वाल्मीकि, कपीश्वर = हनुमान ।

ध्यातव्या — जो श्री सीता और राम के गुण समूह स्वी पवित्र वन में विहार करने वाले हैं, अर्थात् सीता और राम के गुणों में सदा अनुरक्त रहते हैं, जो विशुद्ध ज्ञान युक्त हैं, इस प्रकार के कवीश्वर वाल्मीकि तथा कपीश्वर श्री हनुमान को मैं प्रणाम करता हूँ ।

उद्भवत्पितृहरकारिणी पत्नेरहारिणीम् ।

सर्वश्रेयस्करिणी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — उद्भव - उत्पत्ति, पितृहरिणी = पालन, श्रेयस्करिणी = सहा करने वाली, रामवल्लभा = सीता को ।

ध्यातव्या :—जो सीताजी जन नगर की उत्पत्ति, पालन और सहा करने वाली हैं, तथा दुःखों को नष्ट करने वाली और नरूपों बर्त्याओं की वरदान वाली हैं, उन्हें मैं (तुलसीदास) प्रणाम करता हूँ ।

यन्नायावदावर्षान् विरदमरितुं, ब्रह्मादिदेवामुरा

यसत्स्यादमृषेय भाति सपरः स्वजो यथाहेभ्रम ।

यस्याश्चमृषेयमेव हि भयाम्भोये स्तितोर्षापता

वन्देऽहं तमशेषशरणापर रामाश्रममोक्ष हरिम् ॥ ६ ॥

नानापुराणनिगनागम सम्मत पर
 रामायणे विहित पञ्चदशस्तोत्रेषु ।
 स्वान्तं सुताप सुगनी रघुनाम गाना-
 भाषा निवचनतिर्गुणमात्मनोति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ.—निगम = वेद, वाग्वन = शास्त्र, तमन = प्रमाणित, पद् = जो
 निगदित = पवित्र, पञ्चदश = पच्ची, स्वान्तं गुणाय = स्वतन्त्र रूप से लिखे, अति
 मङ्गल = बहुत सुन्दर ।

व्याख्या—जो विद्वान् पुराणा, वेदों और ग्रन्थों द्वारा प्रमाणित है
 तथा जो रामायण (वाल्मीकि) में वर्णित है, अन्यत्र भी उल्लेखित है, इन
 प्रकार की श्रावणचन्द्र जी की रचना को तुलसीदास अपने अन्य ग्रन्थों के तुल्य
 के लिये अत्यन्त मनाहूर भाषा में रचित करते निन्दित करता है ।

सौरवा— जो सुमिरन तिथि होइ, गन नायक फिरवर चदन ।

करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रानि सुन गुन मदन ॥ १ ॥

शब्दार्थ—सुमिरन = स्मरण करने में, तिथी = उल्लेखित, करिदरबदक
 = गजानन, करउ = करें, अनुग्रह = कृपा मोरे = वे ही, बुद्धिरानि = बुद्धि के
 भंडार, सदन = घर ।

भावार्थ :—कवि तुलसीदास सर्व प्रथम सिद्धि दायक उपदेशजी का
 स्मरण करते हुए कहते हैं कि जिन गजानन महाराज का स्मरण करने से सभी
 प्रकार की सिद्धि मिलजाती है, वे बुद्धि के भंडार तथा अच्छे गुणों के घर
 श्री विनायक मुनि पर कृपा करें ।

भूक होइ वाचाल, पगु चढइ गिरिवर गहन,

जासु कृपा सो दयाल, ब्रवउ सकल कलिमल दहन ॥ २ ॥

शब्दार्थ :—भूक = गूगा, वाचाल = अधिक बोलने वाला, पगु = लँगडा,
 गहन = दुर्गम, जासु = जिसकी, ब्रवउ = नष्ट करें, कलिमल = कलिगुण के पाप
 दहन = नष्ट करने वाले ।

भावार्थ :—कवि तुलसी कहते हैं कि जिन प्रभु की दया से गूगा अच्छी
 तरह बोलने की शक्ति और लँगडा दुर्गम पर्वत पर चढ़ने की क्षमता प्राप्त कर
 लेता है, जो कलिगुण के सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाले हैं, वे मुझ पर
 कृपा करें ।

विशेष '—यह सोरठा निम्नांकित श्लोक का अक्षरगत अनुवाद है
 मूक करोति वाचाल, प३ लघयते गिरिम्-
 यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्द माधवम्”

नील सरोरुह स्त्राम, तरुन अरुन वारिज नयन ।

करज सो मम उरधाम, सदा धीर सागर सयन ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :—सरोरुह = कमल, तरुन = ताजा, अरुन = लाल, वारिज =
 कमल, मम = मेरे, उर = हृदय, धाम = निवास, धीर सागर = दूध का समुद्र ।

भावार्थ '—जिन प्रभुना जरीर नील रमन के समान रूप प्राप्त है,
 जिनके नेत्र लाल एवं ताजा मिले कमल जैसे हैं । जो सदा धीर सागर में नयन
 करते हैं, वे मेरे हृदय में निवास करें ।

विशेष —सुतोपमा अकार ।

कुंद इन्दु सम देह, उमा रमन करुणा अयन ।

जाहि बिन पर नेह, करज कृपा उर्दन मयन ॥ ४ ॥

शब्दार्थ —कुन्द - एक पुष्प, इन्दु = चन्द्रमा, रमन समान उमा -
 पार्वती, अयन = घर, जाहि = जिनका, नेह = स्नेह, मर्दन = नष्ट करने वाले,
 मयन = राम देव (मदन) ।

भावार्थ '—जिन शिवजी का शरीर सुन्दर पुष्प और चन्द्रमा के
 समान सुन्दर है, जो पार्वती पति तथा दया के नगर हैं, जिनका राम शीतो
 पर अधिक है, इस प्रकार वे राम देव जो नष्ट करने वाले वे शिव मुझ पर
 कृपा करें ।

चौपाई—बंदे गुरु पद पदुम परागा । सुकचि सुवास सरस-अनुरागा ॥
 अमिअ मूरिमथ चूरन चारु । समन सकल भव रज परिवारु ॥
 सुकृति समुतन विमल विभूती । मजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
 जन मन मजु मुकुर मल हरनी । किए निलक गुन गन वस करनी ॥

शब्दार्थ — अमिअ = अमृत, चारु = सुन्दर, समन = शान्त करने वाली (समन), भवरज = सामारिक रोग, समुतन = शिवजी का शरीर, विभूती = भक्त, मजुल = कोमल, वसूती = जन्म देने वाली, मुकुर = दर्पण ।

भावार्थ — कवि तुलसी दास अपने गुरु के चरण कमल की रज को प्रणाम करते हैं और कहते हैं कि वह रज अच्छी रची उत्पन्न करने वाली, सुगन्धित और प्रेम से पूष है गुरु के चरणों की रज अमृत की जड़ों का चूर्ण है जो कि ससार की समस्त व्याधियों के समूह को नष्ट करने वाला है । वह शत्रु के शरीर पर लगी हुई निर्यल भस्म के समान है, वह कल्याण और मंगल को देने वाली है । गुरु के चरणों की वह रज भक्तों के मन रूपी सुन्दर दर्पण के मूल को दूर करने वाली है और ललाट पर उसका तिलक लगाने से सम्पूर्ण गुणों को वश में करने वाली है ।

अलंकार — 'पद-पदुम' प्रया 'मन मजु मुकुर' में रूपक तथा सर्वत्र अनु प्राण ।

श्री गुरु पद नय मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिये होती ॥
 दलन मोह तम सो सुप्रकास । बडे भाग उर आवइ जासू ॥
 उधरहि विमल विलोचन ही के । मिटाहि दोष दुख भव रजनी के ॥
 सूक्ष्महि राम चरित मनि मानिक । गुप्त प्रकट जयै जो जेहि खानिक ॥

शब्दार्थ — नय = नाज़ून, दिव्य दृष्टि = उज्ज्वल प्रकाश, हिये = हृदय मं, दलन = नष्ट करने वाला, = आवइ = आता है, विलोचन = नेत्र, ही = हृदय रजनी = रात्रि, गुप्त = गुप्त, छिपा हुआ ।

भावार्थ — श्री गुरु के चरणों के नखों का प्रकाश मणियों के प्रकाश के समान है, जिसका स्पर्श करते ही हृदय में दिव्य ज्योति उत्पन्न हो जाती है । उन दिव्य प्रकाश में अज्ञान रूपी अंधेरा नष्ट हो जाता है । जिसके हृदय में वह दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाय उसे बड़ा ही भाग्यशाली मझना चाहिये । उस दिव्य दृष्टि में हृदय के निर्मल नेत्र तुल जात हैं और ससार रूपी रात्रि के सभी

दोप नष्ट हो जाते हैं। इसने राम चरित्र स्पी मणि माणिक जहाँ भी, जिस ज्ञान में छिपे रहते हैं, वे सब प्रकाशित हो जाते हैं।

अलंकार — रूपक

दोहा— पथा तुभजन अजि दूग, सावक मिट सुजान।

कौतुक देत सँल बन, दूतल भूरि निदान ॥ १ ॥

शब्दार्थ :—दृग = नेत्र, कौतुक = तेल, भूर्भ = वृत्त, निदान = खजाना।

भावार्थ — [दूर चरणों की रज का महत्व बताते हुये कवि तुलसी वास करते हैं कि जिस प्रकार चतुर माधक और सिद्ध अच्छे अजन को नेत्रों में लगाकर कौतुक के साथ वन पर्वत और पृथ्वी के भीतर छिपे हुये खजानों को देख लेते हैं [उसी प्रकार गुप्त चरणों की रज से भी सभी प्रकार का अज्ञान दूर हो जाता है।]

गुरु पद रज मूहु मंजुल अजन। नयन अमिअ हग दोप विभजन ॥

तेहि करि विमल विभेक विलोचन। वरनळें रामचरित भव सोचन ॥

शब्दार्थ — मंजुल = कोमल, विभजन = नष्ट करने वाला, तेहि = उसे, वरळ = वर्णन-करता है।

भावार्थ — श्री गुरु के चरणों की रज कोमल और सुन्दर अजन है जो नेत्रों के लिये अमृत के समान है, दोषों को नष्ट करने वाली है। उस रज स्पी अजन से मैं अपने ज्ञान स्पी नेत्रों को स्वच्छ करके मैं ससार के बन्धनों से छुटकारा देने वाले श्री रामचरित का वर्णन करता हूँ।

अलंकार — अनुप्रास एक रूपक।

बन्दे प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित ससय सब हरना ॥

सुजन समाज सकल गुन खानी। फरड प्रनाम सप्रेम सुवानी ॥

साधु चरित सुभ चरित कपासु। निरस विसद गुनमय फल जासु ॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥

शब्दार्थ — महीसुर = ब्राह्मण, हरना = नष्ट करने वाले, सुवानी = अच्छी वाणी, जनित = उत्पन्न, कपासु = कपास, परछिद्र = दूसरों के दोष, दुरावा = छिपाते हैं, बन्दनीय = प्रणाम करने योग्य, जेहि = जिसे।

भावार्थ — सर्व प्रथम मैं मोह से उत्पन्न सदेहों को नष्ट करने वाले ब्राह्मणों के चरणों को प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात् गुणों की खान सत समाज

को प्रेमपूर्वक लच्छी बापी से प्रपाम करता हूँ। सज्जनो का चरित्र कपास के चरित्र के समान शुभ्र है जिसका फल रस हीन, स्वच्छ तथा गुणहीन है। जो स्वयं कष्टो को सहन करता है तथा दूसरो के दोषो को छिपाने वाला है। इसी के कारण इन्हने म्मार ने वन्दनीय यज्ञ प्राप्त किया हैं।

अलंकार :—अनुप्रास, साधु चरित नुभवरित' में लाटानुप्रास, तीसरी पंक्ति में श्लेष।

विशेष — यहाँ साधुओ के चरित्र को कपास के समान बताया है। कपास का फल रस हीन होता है, कपास मज्जै होता है, उसमें गुण, बर्थात् तन्तु होते हैं, वह कष्ट पाकर बर्थात् लई के रूप में ओटा जाकर सभी के लंगो को लम्बा है, सज्जन भी शुभ्र चरित्र वाले और निर्दोष होते हैं परोपकारी होते हैं। यहाँ 'महीसुर' शब्द का प्रयोग करके तुलसी ने समाज में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का वर्णन किया है।

मुद मंगलमय भंत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू ॥

राम भक्ति जहें सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ॥

विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कपा रवि नंदनि बरनी ॥

हरिहर कया विराजनि वेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ॥

घटु बित्वास अवल निज घरना। तीरथराज समाज सुकरभा ॥

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥

यक्षय अलौकिक तीरथराज। वेइ सद्य फल प्रगट प्रनाज ॥

शब्दायं—जंगम = चर, चलने वाला, सुरसरि = गंगा, सरसइ = परम्वती, रविनंदनि = यमुना, वेनी = त्रिवेणी, घटु = अलव्यवट, सद्य = तत्काल।

भावार्थ—शिव तुलसी ने यह समाज को तीर्थ राज प्रयाग के समान बताया हुए लिखा है कि प्रकृतता और मंगल (शुभ) से पूर्ण यह जो सत समाज है वह इन सत्कार में चलना फिन्ता तीर्थराज है। राम भक्ति इसकी गमजारा है, ब्रह्म विचार का प्रचार ही परस्वनी नदी है, करपीथ और निषिध व्यवस्था से पूर्ण यनों को ब्रह्म ही मन्दिग के पापों को हरने वाली यमुना है। विष्णु और शिव की उपा ही शिवजी त्रिवेणी है जो बानन्द और मगल को देने वाली है। अपने वर्म में कटल विन्वास ही सत तीर्थ राज का अक्षय वट है शुभ वर्म ही सत तीर्थ राज का समाज है। वह तीर्थ राज सभी को, सर्वदा, सर्वत्र, सुलभ हैं।

जो व्यक्ति इस तीर्थराज का आदर पूर्वक सेवन करता है अर्थात् सतसग करता है उसे वह सभी कष्टों से मुक्त कर देता । उस अलौकिक तीर्थराज का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तत्काल फल देने वाला है और उसका प्रभाव प्रत्यक्ष फल देने वाला है ।

अलंकार :—अनुप्रास से पुष्ट सग रुरक ।

बो- सुनि समुमहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।

लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥ २ ॥

शब्दार्थ --मज्जहिं = स्नान करते है, लहहिं = पाते है, अछत = विना नष्ट हुये ।

भावार्थ --जो मनुष्य इस सत समाज रुपी तीर्थराज के प्रभाव को सुनते हैं । वे इमे समझ कर इमे अत्यन्त प्रेम के साथ स्नान करते हैं । ऐसे लोग इस शरीर के रहते-रहते ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रुपी चारो फल प्राप्त करते हैं ।

मज्जन फल देखहिं तत्काल । काक हौंहिं पिक वकड मराला ॥

सुनि आचरज करै जनि कोई । सत सगति महिमा नहिं गोई ॥

वालमीक नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ॥

जलचर, थलचर, नभचर नाना । जे जड चेतन जीव जहाना ॥

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥

सो जानव सतसंग प्रभाऊ । लोकहु घेद न आन उपाऊ ॥

शब्दार्थ --तत्काल = उसी समय, काक = कौआ, पिक = कोयल, वकड = बगुला भी, मराला = हंस, जनि = मत, गोई = छिपी हुई, घटजोनी = अगस्त्य, नाना = कई, जहाना = ससार मे, भूति = वैभव, आन = अन्य ।

भावार्थ --इस सत समाज रुपी तीर्थराज मे स्नान करने का फल तत्काल मिलता है । इससे कौआ (दुष्ट) कोयल (सज्जन) और बगुला (मूर्ख, धूर्त) हंस (सरल) बन जाता है । तात्पर्य यह है कि जो सतसग करते हैं उनकी सभी बुराइया दूर हो जाती हैं । वाल्मीकि नारद और अगस्त्य जैसे ऋषियो ने अपने-अपने मुख से अपने जीवन के अनुभवो (सत सग के सुप्रभावो) का वर्णन किया है । इस ससार के जितने भी जड चेतन प्राणी है 'चाहे वे जलचर हो' थलचर हो, या आकाश मे बड़ने वाले पक्षी हो उनमे जो

बलकार — अनुग्राम और प्रभाव प्रदान ।

विशेष-बालपीठि, नारद और ब्रह्मत्त्व की जन्मसंयोगे जगते प्रदत्तो मे देखिये ।
 निनु मत्स्य विवेक न होई । राम कृपा निनु सुलभ न सोई ॥
 सतमग्न बुद्ध नंगल नूला । नाई फल निष्ठि तत्र नाग्रन फला ॥
 सठ सुधारहि मवमंगति पाई । पारत परम बुधातु सुलाई ॥
 विधि दम कुजन कुमगत परही । फनि मन सग निज गुन अनुमरही ॥
 विधि हरि हर षडि कोदिव दानी । बृहत् साधु महिमा सञ्जाती ॥
 सो नो रत्न कहि जात न कैंसे । सत्क बतिस मनि गुन गत जैंसे ॥

शब्दार्थ — शिवं = ज्ञान, मूल्य = जड, सठ = मूल्य (सठ), कुवात =
 लोहा आदि-नामान्य वानुज, फने = सर्प (फणी) अनुमरही = अनुकरण करते हैं,
 नोद्वेद = उचित, जं = वही, मोसन = मुचने, नाक बनिज = साग बेचने वाला ।

भावार्थ — तुलसी दास कहते हैं कि सत्संग के बिना ज्ञान नहीं हो
 सकता और श्री राम की कृपा के बिना वह (मत्स्य) प्राप्त नहीं होता ।
 सत्संगति रसी वृक्ष का मूल प्रसन्नता और शुभ फलनिधि है वस्तुतः फल है
 और तप दानादि साधन उसके पुष्प हैं । वृष्टि भी मत्स्य को पारत रसी प्रकार
 मुचर जगते हैं जैसे पारत का स्पर्श करते ही लोहा आदि वानुज भी सुहावनी
 (सोना) बन जाते हैं । यदि देव सयोग ने कोई सज्जन कुमंगति में पड़ भी
 जाते हैं तो वे सपने की भाँति अपने गुणों का ही अनुकरण करते हैं ।
 आचार्य यह है जैसे माँ के पास रहकर भी माँ विपत्तों में प्रभावित नहीं होती
 वह अपने स्वभावदिग्गुण (प्रकाश) को नहीं छोड़ती उसी प्रकार सज्जन कुष्टों
 के पास रहकर भी उनके अवगुणों को ग्रहण नहीं करते, अपितु कुष्टों को ही
 अपना ज्ञान रूपा प्रकाश देते रहते हैं ।

सज्जनों की महिमा का वर्णन, इत्यादि, विष्णु, महेश, कवि और विद्वान
 की वाणी भी नहीं कर सकती हैं, फिर मुझ जैसे अल्पज्ञ की वाणी में स्वयंके

वर्णन की शक्ति कहाँ मे आ सकती है ! भला सग्यो ब्रेचने वाला सामान्य व्यापारी मणि के गुणो का वर्णन कर सकता है ! कदापि नहीं ।

अलंकार — अनुप्रास, साग रूपक, अर्थान्तर न्यान, उदाहरण आदि ।

बो० — वन्द्यं सन्त समान चित्त, हित अनहित नाह कोई ।

अजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोई ॥ ३ ॥ (क)

सत सरल चित्त जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु ।

वाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु ॥ ३ ॥ (ख)

शब्दार्थ — अजलिगत = हाथ मे रखे हुए, सम = ममान रूप से ।

भावार्थ — तुलसीदास कहते हैं कि मैं उन सज्जनो को प्रणाम करता हूँ जिनका चित्र मव के लिये समान है, न तो किसी मे उनकी शत्रुता होती है न मित्रता । जो हित (भलाई) और अनहित (बुराई) की भी परवाह नहीं करते । अजलि मे रखे हुए पुष्प जिस प्रकार दोनो हाथो को मुग्धियत करते हैं उन्ही प्रकार वे भी शत्रु और मित्र दोनो वा हिन चाहते रहते हैं ।

सत्ता का हृदय सरल होता है, वे ससार की भलाई चाहते रहते हैं उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । वे मेरी बाल प्रार्थना को मुनकर मुझ पर कृपा करें और श्रीराम के चरणो मे प्रेम दें ।

अलंकार — उदाहरण, अनुप्रास और पर्यायोक्ति ।

बहुरि बदि खल गन सतिभाए । जे विनु फाज दाहिनेहुं बाएँ ॥

पर-हित हानि लाभ जिन्ह केरे । उजरे हरष दिपाद बसेरे ॥

हरिहर जस राकेस राहु से । पर अकाज् भट सहसबाहु से ॥

जो पर दोष लखाहि सहसाजी । परहित घृत जिन्ह के मन भाजी ॥

तेज कृसानु रोष महिपेसा । अध अवगुन घन घनी घनेसा ॥

उदय केतु सम हित सयही के । कुंभकरन सम सोवत नीके ॥

शब्दार्थ — बहुरि = फिर, सतिभाए = सच्चे भाव मे, दाहिनेहुं = अनुकूल, बाएँ = प्रतिकूल, जिन्ह केरे = जिन के, राकेन = चन्द्रमा, पर = दूनरे का, कृसानु = अग्नि, सह साखी = हजार आँसो वाल, महिपेसा = यमराज, घनेसा = कुबेर, केत = केतु नामक ग्रह ।

भावार्थ — उनके बाद मे नच्चे भाव मे दुष्ट समूह को चन्दना करता हूँ जो कि अकारण ही हितकारी के भी प्रतिकूल हो जाते हैं । अर्थात् जो उनका

भला करता है उसके भी शत्रु बन जाते हैं। दूसरों की हानि हो जिनका लाभ है, दूसरों के घर उजड़ने से जो प्रसन्न होते हैं और उन्हें बसते देख कर जिन्हें अत्यधिक दुःख होता है। जो विष्णु और शिव के यग तपी चन्द्रमा के लिये राहु के नमान हैं अर्थात् भगवान् की भक्ति के विरोधी हैं और दूसरों की बुराई करने में जो सहस्र बाहु के समान वीर योद्धा हैं। जो दूसरों के दोषों को हवार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हित तपी धी के लिये जिनका मन मक्खी के समान होता है अर्थात् जो दूसरों के बने हुए कार्य को त्रिगाडने में ही आनन्द का अनुभव करते हैं चाहे उन्हें कष्ट ही क्यों न हो।

जो तेज में अग्नि शोध में यमराज, पाप और अवग्रह तपी धन में कुवेर के समान है। केतु के उदय के समान ये सब का हित करने वाले हैं, अर्थात् निरस्त प्रहार केतु कभी किसी का हित नहीं करता उनी प्रकार के भी कभी किसी का हित नहीं करते। ऐसे दुष्ट तो कु भक्षण के नमान (छ महिने तक) सोने ही रहें तो भन्नाई हैं।

अलकार — तपक से पृष्ट उपमा अनुप्राण।

विशेष—सहस्र बाहु और कु भक्षण की अन्तर्कथाओं प्रश्नोत्तर भाग में देखिये।

पर अफाजु रागि तनु परिहरहीं। जिमि हिन उपल छपी दल गरहीं ॥
 बन्द उरल जत सेप सरीया। सहस्र बदन बरनइ पर दोषा ॥
 पुनि इनबड पुरराज समाना। पर अथ नुमइ सहस्र दस फाना ॥
 बहुरि सरु सम विनबड तेहो। सतत सुरानीक हित जेही ॥
 बचन बजु बोहि सदा पियारा। सहस्र नयन पर दोष निहारा ॥

शब्दार्थ.—अफाजु = बुराई लगी = लिये, परिहरहि = त्यागते हैं, हिन उपल = अंगे, मरु = इन्द्र, सुरानीक = अच्छी शगव (सुर + नीक), देवों की सेना (सुर + अनौ), पियारा = प्रिय।

में दुष्टो को राजा वृधु के समान समझकर प्रणाम करता हूँ जो हजार कानो से पराये दोषो या पापो को सुनते है। फिर मैं उन्हें इन्द्र के समान समझकर प्रणाम करता हूँ जिन्हें मदिरा अच्छी लगती है, इन्द्र को देवताओं की सेना अच्छी लगती है।

इन्द्र को वज्र प्रिय है, इन्हे वज्र के समान कठोर शब्द प्रिय लगते हैं, ये हजार नेत्रो से दूसरो के दोषो को देखते है।

अलंकार -- उदाहरण, सभगपद श्लेष, अनुप्रास और लुत्तोपम।

विशेष -- राजा वृधु की कथा प्रश्नोत्तर भाग में देखिये।

दोहा—उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहि खलरोति।

जानि पानि जुग जोरि जन, विनती करइ सप्रोति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :—मीत = मित्र, जुग = दोनो।

भावार्थ :—दुष्ट लीगो का यह स्वभाव होता है कि वे उदासीन, मित्र और शत्रु किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। इसलिये मैं उन्हें अच्छी तरह समझता हूँ और दोनो हाथ जोटकर उसको प्रणाम करता हूँ।

मैं अपनी दिसि कौन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउव भोरा ॥

वायस पालिअहि अति अनुराग। होहि निर मिय कवहुं कि काग ॥

शब्दार्थ .—दिसि = ओर से, निहीरा = प्रार्थना, भोरा = भूल, वायास = कौआ, निरामिय = मास न खाने वाला।

भावार्थ —तुलसीदास कहते हैं कि मैंने तो अपनी ओर से उन्हें सभी प्रकार से विनती की है, कोई बात बाकी नहीं छोड़ी है, किन्तु वे अपनी ओर से दुष्टता करने मे कोई कमी नहीं रखेंगे। कोओ को चाहे, कितने ही प्रेम से पालिये किन्तु वे मासहार को कभी नहीं छोडेगे। दुष्टो का भी ऐसा ही स्वभाव है।

बन्दउ सत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच फुल वरना ॥

बिछरत एक प्रात हरि तेहों। मिलत एक दुख दारन देहों ॥

उपजहि एक मग जग नाहों। जलज जोक जिमि गुन बिलगाहों ॥

सुधा सुरा रूप तापु असाधू। जगद एक जग जलधि अगाधू ॥

भल अनभल निज निज करतूती। सहत सुपस अपलोक बिभूती ॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमल सरि व्याधू ॥

गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नोक तेहि सोई ॥

शब्दार्थ — विद्युरत = अलग होते ही, दावन = कठोर, जलज = कमल, विलगाही = भिन्न हो जाते हैं, जलधि = समुद्र, अपलोक = अपयग, सुरसरि = गंगा, गरल = विष, अनल = अग्नि, कलिमल सरि = कर्मनाश नदी, जिसमें नहाने से सभी सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं, भाव = अच्छा लगता है, सोई = वही ।

भावार्थ — तुलसीदास कहते हैं कि अब मैं सतों और दुष्टों दोनों के चरणों को प्रणाम करता हूँ । यद्यपि ये दोनों ही दुःख देने वाले हैं, किन्तु दोनों के बीच कुछ भेद है । एक (सज्जन) विद्युत्ते ही प्राण हर लेता है, दूसरा (दुष्ट) मिलने पर कठोर दुःख देता है । यद्यपि कमल और जोक दोनों जल से उत्पन्न होते हैं किन्तु दोनों के गुण भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार सत और जल एक साथ इस सन्सार में आते हैं किन्तु अपने स्वभाव के कारण भिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

सज्जन और दुष्ट क्रमशः अमृत और शराव के समान होते हैं । जिस प्रकार सुधा और शराव दोनों एक ही स्थान (समुद्र) से उत्पन्न हुये हैं किन्तु दोनों के स्वभाव में महान् अन्तर है उसी प्रकार सज्जन और दुष्ट में भी अन्तर होता है । जब कि दोनों इनी सन्सार के प्राणी होने हैं ।

सज्जन और दुष्ट अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुन्दर वर्षा और अपयग की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं । सत अमृत, चन्द्रमा और गंगा के समान होते हैं और दुष्ट, विष, अग्नि और कर्मनाश नदी के समान हैं । इनके गुण और अवगुणों को सब जानते हैं, किन्तु जिने जो अच्छा लगता है, वह उसे ग्रहण करता है ।

अनुवाद—अनुप्रास,

मलो मलादहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु ।

सुधा नराहिय अमरता, गरल सराहिय नीचु ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — लहइ = प्राप्त करेगा, नीचु = मृत्यु ।

भावार्थ :—सज्जन मनुष्य नराहिय को ही ग्रहण करता है । किन्तु नीचो नीचता को ही अपनाता है । अमृत को सराहता अमरता में है जब कि विष नराहिय को ही अपनायग मानता है ।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा ।

जल अथ अगुन साधु गुन गाहा । उभय अपार उदधि अबगाहा ॥

तेहि ते कछु गुन दोष बखाने । सप्रह त्याग न विनु पहिचाने ॥

भलेउ पोच सब विधि उपजाए । गनि गुन दोष वेद विलगाए ॥

कहाँहि वेद इतिहास पुराना । विधि प्रपचु गुन अवगुन साना ॥

शब्दार्थ —अथ = पाप, गाहा = ग्राहक उदधि = समुद्र, अवगाहा = अथाह, पोच = नीच ।

भाषार्थ —कवि तुलसी कहते हैं कि द्रुष्टो के पापो और दुर्गुणो तथा साधुओ और सज्जनो के गुणो की गाथाएँ अमर और अथाह समुद्र के समान हैं । इसलिये मैं ने इनके कुछ गुण दोषो का वर्णन किया है, क्योंकि गुण दोषो की पहचान के बिना लोग इनका सप्रह और त्याग नहीं कर सकते । भले और बुरे सभी ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न क्रिदे गये हैं, परन्तु वेदो ने उनके दोषो व गुणो का विवेचन कर उनको अलग-अलग कर दिया है । वेद, इतिहास और पुराण कहते है कि विधाता की यह सृष्टि गुणो और दोषो से सनी हुई है ।

अलंकार —अनुप्रास

दुख सुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति दुजाती ।

दानव देव ऊच अरु नीचू । अमिय सुजीवनू माहुर मीचू ॥

माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रक अवनीसा ॥

कासी भग सुरसरि क्लमनासा । नरु मारव महिदेव गवासा ॥

सरग नरक अनुराग बिरागा । निगमत्तन गुन दोष विभागा ॥

शब्दार्थ .--दानव = राक्षस, अमिय = अमृत, माहुर = विप, लच्छि = सम्पत्ति, अलच्छि = दरिद्रता, रक = गरीब, अवनीसा = राजा, मर = मारवाड, मारव = मालव, महिदेव = ब्राह्मण, गवासा = कसाई ।

भाषार्थ —कवि कहता है कि विधाता की सृष्टि मे दुख-सुख, पाप पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, जाति-दुजाति, दानव-देव, ऊच नीच, अमृत-विप, जीवन-मृत्यु, माया-ब्रह्म जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रक-राजा काशी-भगव, मारवाड-मालवा, ब्राह्मण कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य सब कुछ हैं । किन्तु वेद शास्त्रो ने उनके विभाग कर दिये है ।

दोहा--जड चेतन गुन दोषमय बिस्व कोन्ह फरतार ।

सत-हस गुन गहाँहि पय, परिहरि बारि दिवगर । ६ ॥

शब्दार्थ — करतार = ईश्वर, पय = दूध विकार = दोष ।

भावार्थ — इस जड़ चेतन मय ससार-को गुण दोष मय बनाया है, आशय यह है गुणो के साथ दोषो को भी उत्पन्न किया है । परन्तु सज्जन तपी हस गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं और अव्यग्रुप रपी जल को छोड़ देते हैं ।

शलकार — साग रूपक ।

अर्थ विवेक जब देह विधाता । तब तजि दोष गुनहि मनु राता ॥
 काल सुभाज करम वरिआई । भलेउ प्रकृति बल चुकई भलाई ॥
 सो सुधारि हरिजन जिनि लेहीं । दलि दुख दोष विमल जनु देहीं ।
 खलउ करीह भल पाइ सुसगू । मिटइ न नलिन सुभाज अमगू ॥
 लखि सुवेव जग बचरु देख । वेप प्रताप पूजिआई तेऊ ॥
 उधरहि अन्त न होइ निदाहू । कालनेमि जिनि राबन राहू ॥

शब्दार्थ — राता = अनुरक्त, वरिआई = जबरन, खेऊ = जो, यचक = ज उधरहि = भेद खुलजाने पर ।

भावार्थ — जड़ विधाता हस वा सा विवेक देता है तब मन दोषो को ओढ कर गुणो मे अनुरक्त होता है । काल, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से अच्छे लोग भी माया के षग मे पडकर भलाई करने मे चूक जाते हैं, किन्तु जो भगवान् के भक्त होते हैं, वे उस मूल को सुधार लेते हैं । और दुख-दोषो को मिटाकर निर्मल यग देते हैं । जैसे ही दुष्ट भी अभी अच्छी सगति पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनके क्रूर स्वभाव में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता ।

जो जग-बंधक हैं, वेपधारी ठग हैं उन्हें भी साधु वेप के कारण ससार के लोग पूजते हैं, किन्तु कभी न यभी जब उनकी वास्तविकता खुलती है तब उनका बपट नहीं चल सकता जैसे कि कालनेमि, रावण और राहु का बपट नहीं चला ।

शलकार — उदाहरण, अनुग्राम ।

विशे — कालनेमि और राहु को अन्तर्भाव प्रज्ञोत्तर भाग मे देखिये ।

दिष्ट, वेपे माय मनमानू । जिनि जग जापवन्त हनुमानू ॥

हानि कुसग सुसगति लाहू । लोकहृ वेद विदित सब काहू ॥
 गगन चढइ रज पवन प्रसंगा । कीर्त्तहि मि०इ नीच जल सगा ॥
 सावु असाधु सदन सुक सारी । सुमिरहि रामदेहि गनि गारी ॥
 धूम कुसगति कारिख होई । लिखिय पुरान मजु मसि सोई ॥
 सोई जल अनल अनिल सघाता । होई जलद जग जीवन दाता ॥

शब्दार्थ :— लाहू = लाभ, सबकाहू = सब किसी को, रज = मिट्टी, सदन = घर, सुक = तोता, सारी = मँना, कारिख = कालिमा, मजु = सुन्दर, मसि = स्याही, सघाता = ससर्ग ।

भावार्थ :— कवि तुलसी कहते हैं कि वुरा वेप धारण कर लेने पर भी सज्जन का सदा सम्मान होता है जैसे जाम्बवन्त का रीछ होने पर और हनुमान के वानर होने पर भी ससार में उनका सम्मान हुआ । कुसगति से हानि होती है और सुसगति से लाभ होता है, यह बात लोक और वेद में प्रसिद्ध है और सभी लोग इसे जानते हैं । उदाहरणार्थ मिट्टी हवा के ससर्ग से तो आकाश में चढ जाती है और वही मिट्टी नीचे की ओर बहने वाले जल के ससर्ग में आकर कीचड बन जाती है । साधु की कुटिया में पले तोता और मँना रामनाम जपते हैं और वही वे गिन-गिन कर गलियाँ भी देते हैं ।

वुरी सगति के कारण धुआँ कालिख (कालिमा) कहलाती है और वही सुसग से स्याही बनकर पुराण लिखने के काम आती है, धुआँ ही जल, वायु और अग्नि के सयोग से ससार को जीवन देने वाला वादल बन जाती है ।

अलंकार :— अनुप्रास और उदाहरण ।

बोहा—प्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ, कुजोग, सुजोग ।

होहि कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग ॥ ७ ॥ (फ)

सम प्रकास तम पाख डुह नाम भेद विधि कीन्ह ।

ससि सोपक पोपक समुक्ति, जग जस अपजस दीन्ह ॥ ७ ॥ (ख)

शब्दार्थ :— भेषज = शीपक, पट = वस्त्र, सुलच्छन = चतुर, पाख = पल, सनि = चन्द्रमा ।

भावार्थ '— प्रह, शीपधि, जल, हवा और वस्त्र ये सुसग और कुसग

ने इन बसार में सुघर और दिगड जाते हैं। इस घात को चतुर और विचार
घोले लोग बच्ची तरह जानते हैं।

महिनो के दोनो पक्षो (शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष) में प्रकाश और
बैंगन समान रूप से रहता है। फिर भी विद्यता न इनका नाम भेद कर दिया
है। गर का चन्द्रमा का बदलने वाग और दूसरे को उसका घटाने वाला समझ
कर ममारने एक को यश और दूसरे को अपयश दे दिया है।

अलकार — यथासंय, छैक्रानुग्राम।

दोहा—जः चेतन जग जोष जत, सकल राममय जानि।

बदट सबके पद—कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥ ७ ॥ (ग)

देख दनुज नर नाग राग, प्रेत पितर गधवं।

चन्द्र रितर रजनिघर कृपा करहु अक्ष सर्व ॥ ७ ॥ (घ)

सब प्रकार के जीवों से युक्त इन मसार को निवाराम मय समझकर मैं दोनों हाथों से प्रणाम करता हूँ। कवि तुलसीदास कहते हैं कि मैं इन सभी जीवों का मेजक हूँ, ये मुझ पर वृषा करे। और मेरे साथ छटा कपट का व्यवहार न करे। मुझे अपने बुद्धिबल का भरोसा नहीं है, इसलिये मैं उन मय को प्रार्थना करता हूँ।

मैं श्री रामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करना चाहता हूँ परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीराम का चरित्र समुद्र के समान अगाह है। मुझे कई प्रकार के उपायों में से कोई एक भी उपाय नहीं जानता हूँ, मेरा मन और बुद्धि अममथं हैं किन्तु मनोरथ राजा है।

अलंकार — अनुप्रास

नति अति नीच ऊँचि रचि आछी । चहिय अमिय जग जु रह न छाछी ॥
छमिहँह सज्जन मोरि ढिठाई, सुनिहँह वालवचन मन लाई ॥
जौ बालक कह तोतरि दाता । सुनिहँह भुदित मन पितु अरु माता ॥
हसिहँह फूर कुटिल कुबिचारो । जे पर रूपन भूषनधारी ॥

शब्दार्थ — अमिय = अमृत, आछी = अच्छी, ढिठाई = मूर्खता।

भाषा — तुलसीदास कहते हैं कि मेरी बुद्धि तो अति नीच है किन्तु रचि ऊँची और अच्छी है। इच्छा तो अमृत पाने की है, पर जगत में छछ का प्रवचन भी हो नहीं रहा है। इसलिये अपनी 'असमर्थता' को देखते हुये मैं सज्जनों से निवेदन करता हूँ कि वे मेरी धृष्टता को क्षमा करें और मेरे बाल बचनों को ध्यान से सुनें। यदि कोई बालक तोतले वचन कहता है तो माता-पिता उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं किन्तु जो फूर और कुटिल विचार वाले होते हैं तथा जो सदैव दूसरों के दोषों को ही देखते हैं, उन्हें भूषण के रूप में धारण करते हैं, वे हँसेंगे।

अलंकार — अनुप्रास

निज कथित केहि लाग न नीका । सरस होइ अथवा अति फीका ।
जे पर अनिति सुनत हरषाहीं । ते घर पुँरुप बहुत जग नाहीं ॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढ़ि बढाई जल पाई ॥
सज्जन सङ्गत सिधु सम कोई । देखि पूर विधु बाढ़ि जोई ॥

शब्दार्थ — नीका = अच्छा, भनिति = रचना, सकृत् = कोई, बिरला ।
विधु = चन्द्रमा ।

भावार्थ — तुलसीदासजी कहते हैं कि अपनी कविता चाहे सरस हो या नीरस, किसे अच्छी नहीं लगती है ? किन्तु ऐसी उत्तम प्रकृति के पुरुष सत्तार में बहुत कम हैं जो दूसरों की रचना को सुनकर प्रसन्न होते हैं । समुद्र-के समान गभीर व्यक्ति शायद ही कोई हो जो चन्द्रमा की पूर्णता (दूसरों का उत्कर्ष) देखकर प्रसन्न होते हैं ।

अलंकार — उपमा

दो० भाग छोट अभिलाषु बड़, करछ एक विस्वास ।

पंहिह सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहि उपहास ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — पंहिह = पावेंगे, उपहाम = हँसी ।

भावार्थ — तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरा भाग्य तो छोटा है किन्तु इच्छा बहुत बड़ी है मुझे विश्वास है कि जो सज्जन इसे सुनेंगे वे सुख पावेंगे और दुष्ट उपहास करेंगे ।

खल परिहास होइ हित मोरा । काक कहहि कल कंठ कठोरा ॥

हसहि बक दाबुर चातकही । हसहि मलिन खल विमल वतकहीं ॥

कवित रसिक न राम पद नेहू । तिन्ह कहूँ सुखद हास रस एहू ॥

भाया भनिति भोरि मति मोरी । हसिवे जोग हूँसे नहि खोरी ॥

शब्दार्थ — कलकठ = कोयल, वतकही = वाणी, दादुर = मँढक, एहू = यह, भनिति = रचना, खोरी = दोष ।

भावार्थ — तुलसीदास कहते हैं कि दुष्ट लोगों के हँसने से मेरा भला ही होगा । कोए तो मधुर कठवाली कोयल को कठोर कहते ही हैं । इसी प्रकार बटुले हम को तथा मँढक पपीहे को हँसने करते हैं । दूषित मनवाले भी इसी प्रकार निर्मल वाणी पर हँसते ही हैं । जो लोग न तो कविता के रस को जानते हैं और न जिनका प्रेम श्रीगणेश के चरणों में है उनके लिये मेरी रचना केवल हास्य रस प्रस्तुत करेंगी । यह बात ठीक भी है क्योंकि मेरी यह रचना भाषा में है और बुद्धि भी नीली है वतएव हँसने योग्य रचना पर हसना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, इसमें हँसने वाले का कोई दोष नहीं है ।

अलंकार :—अनुप्रास की छटा देखन याग्य ह ।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी । तिन्हहि कथा सुनि लागहि फीकी ॥
हरिहर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कह्ये मधुर कथा रघुवर की ॥
राम भगति भूषित जिय जानी । सुनहिहि सुजन सराहि सुवानी ॥

शब्दार्थ '—सामुझ = समझ, कुतरकी = कुतर्क करने वाली, सुवानी = अच्छी वाणी ।

भावार्थ —जिन लोगो का न तो प्रभु के चरणो मे प्रेम है और न जो अच्छी समझ वाले हैं, उनको यह कथा फीकी लगेगी । जिनका प्रेम श्रीविष्णु और शंकर के चरणो मे है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करने वाली नहीं है उन्हें भी श्रीराम की यह कथा अच्छी लगेगी । जो मज्जन हैं—वे श्रीगम-भक्ति से भूषित होकर इसकी सराहना करते हुए सुनेगे ।

➤ अलंकार :—वृत्त्यनुप्रास ।

कवि न होउं नहि वचन प्रवीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलकृति नाना । छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुन विविध प्रकारा ॥
कवित विवेक एक नाह मोरे । सत्य कहउ लिखि कागद कोरे ।

शब्दार्थ '—प्रवीनू = चतुर, आखर = अक्षर अलकृति = आकार ।

भावार्थ —कवि तुलसीदास कहते हैं कि मैं न तो कोई कवि हूँ न वात कहने मे ही चतुर हूँ, मैं सब कलाओ और विद्याओ से दून्य हूँ । नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ और अलंकार, अनेक प्रकार की छन्द रचना, भावो और रसो के अपार भेद, तथा कविता के विभिन्न गुण दोष—इतने से मुझे किसी एक भी वात का ज्ञान नहीं है, इस वात को मैं कोरे कागज पर लिखता हूँ, अर्थात् मूर्ख कहता हूँ ।

दोहा—भनिति मोरि सब गुन रहित, विद्व विदित गुन एक ।

तो विचारि सुनहिहि सुनिनि, तिन्ह के दिनल विवेक ॥९॥

शब्दार्थ —भनिति = रचना मोरि = मेरी ।

भावार्थ —तुलसीदास कहते हैं कि मेरी रचना सत्य गुणो मे रहित है । जो निर्मल ज्ञान वाले और अच्छी बुद्धि वाले सज्जन लोग हैं वे इनके को एक ही जग प्रसिद्ध ग्रंथ को देखकर इसे मनेगे ।

एहि मूहं रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
 भगल — भुवन, क्षमगलहारी । जमा सहित बेहि जपत पुरारी ॥
 भनिात विचित्र सुगन्धि कृत जोरणी । राम नाम दिन सोह न थोड ॥
 त्रिधवदनी सब भाति संघारी । सोह न वसन दिना घर नारी ॥
 शब्दार्थ — अतिपावन = बहुत पावन, पुरारी = गुरु, विद्युदनी =
 चन्द्रमुखी ।

भावार्थ — मेरो इन रचना मे श्रीराम का नाम उदार है जो अत्यन्त पवित्र है, वह जोर पुराणो का जो सार है, कल्याण वा घर है, क्षमगलो को हरने वाला है और जिसका भगवान् मकर पार्वती सहित सदा जपते रहते हैं । चाहे कोई कविता जितनी भी सुन्दर हो, कितनी भी अच्छे ढंग द्वारा रची गयी हो, किन्तु उसमें यदि राम का नाम अंकित नहीं है तो उसकी सोमा वैसे ही नहीं होगी जैसा चन्द्रमा के नामान् मुख वाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार से सुलज्जित होकर भी वस्त्र के बिना सोमा नहीं देती ।

अलंकार — लाटानुप्रास और दृष्टान्त ।

सब गुण रहित कृत्रिम कृत वानी । राम नाम जस्त अंकित जानी ॥
 सादर कहाँहु सुनाँहु बुध ताही । मधुकर सरिस सन्त गुणप्राही ॥
 जदपि कवित रस एकद नाही । रामप्रताप प्रगट एहि माहीं ॥
 सोइ भरोसु मेरे मनु बाबा, केहि न सुसग बडप्पनू पावा ॥
 मनु तजई सहज फरआई । अगरे प्रसग सुगन्धि बसाई ॥
 भनिाति भदेस वस्तु भलि वरनी । राम कथा जग भंगल करनी ॥

शब्दार्थ — बुध = विद्वान्, मधुकर = भोरा, बडघनू = बडप्पन, फर-
 आई = कटवाहट, अगरे = अन्दन, भदेस = मदी ।

भावार्थ — जो कविता सब गुणों से रहित है, बुकवि द्वारा रचित है, किन्तु उसमें राम का नाम और यश अंकित है उसे बुद्धिमान लोग कहते हैं और चुनते हैं क्योंकि सन्त जन मेरे के सनात गुणप्राही होने हैं (वे अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देते हैं) यद्यपि मेरी इस रचना मे कविता का एक भी रस नहीं है किन्तु इनमें श्रीराम का प्रताप प्रकट है । मेरे मन में यही एक भरोसा है, भला सुसगति से बडप्पन किमने नहीं पाया ? धुआ स्वभाव से ही कड़ा होता है, किन्तु अगर के सग से उसमें सुगन्धि आ जाती है । मेरी कविता मदी

अवश्य है, किन्तु इसमें जन-कल्याण करने वाली रामकथा रूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है। (इसलिये यह अच्छी है।)

अलंकार :—^{कलियुग पाप}छेकानुप्रास ।

छन्द—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।
 गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की ।^{१८}
 प्रभु सुजस संगति भूमिति भलि होईह सुजन मन भावनी ।
 भव अंग भूति ^{राम}ससान की सुमिरत सुहावनि पावनी ॥
 शब्दार्थ —कूर = टेढ़ी पाथ = जल, भव = शिवजी, भूति = राख,
 पावनी = पवित्र करने वाली ।

भावार्थ —कवि तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजी की कथा मंगल करने वाली तथा कलियुग के पापों को नष्ट करने वाली है। मेरी इस भद्वी कविता रूपी नदी की चाल पवित्र जल वाली नदी (गंगा) की चाल के समान टेढ़ी है, परन्तु श्रीराम के यश के सयोग से यह कविता सुन्दर बनकर उसी प्रकार सज्जनों के मन को अच्छी लगेगी, जिस प्रकार हमसान की अपवित्र राख भी शिवजी के अंग में लगकर सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करने वाली होती है।

विशेष —यह हरिगीति का छन्द है।

दो० प्रिय लागीह अति सर्वाह मम, भनिति राम जस सग ।

दालू विचारू कि करह कोउ, बदिम मलय प्रसंग ॥ १० ॥ (क)

स्याम सुरभि परे बिसद अति, गुनद करहि सब पान ।

गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावाह सुनाह सुजान ॥ १० ॥ (ख)

शब्दार्थ —दालू = लकड़ी, मलय = चन्दन, सुरभि = गाय, बिसद =

उज्वल, ग्राम्य = गवारु ।

भावार्थ —तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी यह रामकथा श्रीराम के यश-वर्णन के कारण सबको अच्छी लगेगी, क्योंकि, मलय पर्वत के सग से प्रत्येक काष्ठ चन्दन बनकर वादनीय बन जाता है। क्या उस काष्ठ का कोई विचार करता है।

यद्यपि गाय काली होती है, फिर भी उसका दूध उज्ज्वल होता है, गुणकारी होता है, इसलिए लोग उसका पान करते हैं। इसी प्रकार भेरी कविता की भाषा गवारू होने पर भी श्री सीतारामजी के यथ वर्णन के प्रभाव से इसे ज्ञानी-जन गाते और सुनते हैं।

अलंकार — अर्थान्तरन्यास ।

मनि मानिक मुकता छवि जँसी । अहि गिरि गज सिर सोहन तँसी ।
नूप किरौट तरनी तनु पाई । लहहि सकल सोभा अधिकाई ॥
तँसेइ सुकवि कवित ब्रुष कहहीं । उपजाहि अनत-अनत छवि लहहीं ।
भगति हेतु विधि भवन बिहाई । सुमिरत सारद आवति धाई ।

शब्दार्थ—अहि = सर्प, किरौट = मुकुट, लहहि = प्राप्त करता है, तँसेइ = वैसेही, अनत = दूसरे स्थान पर मारद = सरस्वती, विधि भवन = ब्रह्मलोक ।

भावार्थ—मणि, माणिक और मोती जैसी शोभा राजा के मुकुट और युवती के शरीर पर प्राप्त करते हैं वैसी शोभा सर्प, पर्वत और हाथी के निर पर नहीं पाते। इसी प्रकार विद्वान लोगो का कथन है कि अच्छे कवियों की रचना एक जगह बनती है और दूसरी जगह शोभा प्राप्त करती है। सरस्वती भक्ति के कारण ब्रह्मलोक को छोड़कर दौड़ आती है।

अलंकार :—यथासत्य ।

रामचरित सर विनु अन्हवाये । सो श्रम जाइ न कोटि उपाये ।
कवि कोविद अस हृदय विचारी । गार्वाह हरिजत कलिमल हारो ।
कीन्हें प्राकृत बन गुन गाना । सिर धनि गिरा रुगत पछिताना ॥
हृदय चिन्नु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं मुजाना ॥
जो बरपइ बर बारि विचारू । होहि कवित मुकुतामनि धारू ॥

शब्दार्थ — श्रम = परिश्रम, कोविद = पंडित, प्राकृत = साधारण, गिरा = सरस्वती ।

भावार्थ — सारदा ब्रह्मलोक से दौड़कर आती है तो उसको घनान का अनुभव होता है। इसको रामचरितरूपी सरोवर में उन्हे स्नान कराये बिना

अन्य करोड़ों उपायो से भी दूर नहीं होती। कवि और पण्डित अपने हृदय में ऐसा विचार करके कलियुग के पापो को नष्ट करने वाले श्रीहरि के यश का ही गान करते हैं। ससारी मनुष्यों का गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है। ज्ञानी लोग कहते हैं कि हृदयरूपी जो समुद्र है जिसमें बुद्धि सीप के रूप में स्थित है और सरस्वती स्वाति नक्षत्र है। यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल की वर्षा हो तो उस सीप से उत्तम कविता रूपी सुन्दर मुक्ता मणि उत्पन्न होती है।

अलंकार :— सागरूपक ।

दो० जुगति बेधि पुनि पोहिअहि, रामचरित वर ताग ।

पहराहि सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥

शब्दार्थ—जुगति = युक्ति, पोहिअहि = पिरोयेगे, वरताग = श्रेष्ठ धागा, पहिराहि = पहिनेंगे ।

भावार्थ—उन कविता रूपी मुक्तामणियों की युक्ति से वेवकर तथा रामनाम रूपी धागे में पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में वड़े प्रेम से धारण करते हैं और शोभित होते हैं ।

अलंकार—रूपक ।

जे जनमे फलिकाल कराला । करतब वायस बेप नराला ॥

घलत कपथ वेद मग छाडे । कपट कलेवर कलिमल भाडे ॥

धंचक भगत कहाइ राम के । किकर फंचन कोइ काम के ।

तिन्ह मंह प्रथम रेख जगमोरी । धीग धरनध्वज धंधक घोरी ॥

जो अपने अवगुन सब फहउ । वाढई कया पार नहि लहउ ॥

साते मै अति अल्प बखाने । थोरे महुं जानिहाहि सयाने ॥

शब्दार्थ—कराला = भयकर, मराला = हंस, कलेवर = शरीर.

धचक = ठग, प्रथमरेख = पहला नाम, धीग = धीगा-मस्ती, धन्वक घोरी = कपट के धन्वो का घोड़ा डोने वाले, वाढाहि = बढेगी ।

भावार्थ—जो इस भयकर कलिकाल में पैदा हुए हैं जिनकी करनी कोई जैसी और बेप हन जैसा है, जो वेद के मार्ग को छोड़कर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपटी हैं और कलियुग के पापो के पात्र हैं (भरे हैं) मद्भाग्यी

हैं, ऐसे लोग अपने आपको राम या भक्त बताते हैं परन्तु वे वस्तुतः ठग हैं। वे लोग स्वर्ण शोध और काम के दास हैं, वे धीगा मन्त्री (उचित, अनुचित सभी प्रकार के कार्य) करने वाले हैं धर्मध्यजी बनकर धोखा देने वाले हैं तथा जो कपट के धैर्यों का बोझ ले जाने वाले हैं, ऐसे लोगों में मेरा नाम सर्वप्रथम है।

तुलसीदास कहते हैं कि यदि मैं अपनी सभी घुराइयों का वर्णन करने लगू तो क्या बहुत बढ जायगी और मैं पार नहीं पाऊंगा। इसलिये मैंने अपने बहुत कम अवगुणों का वर्णन किया है, जो समझदार हैं वे इस अल्प वर्णन में ही समझ जायेंगे।

अलंकार —वृत्त्यनुप्रास ।

समुझि विविध विधि विनती मोरी । कोउ न क्या सुनि बेईह खोरी ॥
एतेहु पर फरिहहि जे असका । मोहि ते अधिक ते जड मति रंका ॥
कवि न होउ नहि चतुर कहावउ । मति अनुरूप राम गुन गावउ ॥
कहै रघुपति के चरित अपारा । कहै मति मोरि निरत ससारा ॥
जेहि मारत गिरि सेरु उडाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई । करत क्या मन अति कदराई ॥

शब्दार्थ—अनुरूप = अनुसार, निरत = तल्लीन, मारत = वायु, तूल = रूई, अमित = अपार, कदराई = हिचकिचाता है।

भावार्थ - तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरी अनेक प्रकार की प्रार्थना को सुन कर भी दोष नहीं देगा। इतने पर भी जो शका करेंगे वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धि के दरिद्र हैं। मैं न तो कवि हूँ न चतुर हूँ, मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार रामग्रुण गाता हूँ। कहा तो श्रीराम का अपार चरित्र और कहा सासारिक विषयों में फसी मेरी बुद्धि? जिस हवा में सुमेरु जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, भला उसके सामने रूई की क्या गिनती है? जब मेरा ध्यान श्री रामचन्द्रजी की असीम प्रभुता की ओर जाता है तो मेरा मन उनकी कथा लिखने में हिचकिचाता है।

अलंकार—निदर्शन।

सारव सेस महेंस विधि, आगम, निगम पुरान ।

मेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरन्तर गान ॥

शब्दार्थ—नेति = उसका अन्त सही है।

भावाय - सरस्वती, शेष, शिव और ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण ये सब 'नेति नेति' कहकर सदा जिनका गुणगान किया करते हैं। (भला ऐसे प्रभु का गुणगान मैं कैसे कर सकता हूँ)

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई । तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥
तहा वेद अस कारन राखा । भजन प्रभाउ भाति बहु भाषा ॥
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परघामा ॥
व्यापक विश्व रूप भगवाना । तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥
सो केवल भगवत हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥

शब्दार्थ—तदपि = फिर भी, भाखा = कहा है, अनीह = इच्छा रहित, प्रनत = भक्त ।

भावाय—प्रभु की ऐसी प्रभुता को सब जानते हैं फिर भी उसे कहे बिना कोई नहीं रहा । इसमें वेद ने यह कारण बताया है कि भजन का प्रभाव कई तरह से कहा गया है । आशय यह है कि भगवान की अपार महिमा का वर्णन यथाशक्ति करना चाहिये । जो प्रभु एक है, इच्छा रहित है, जिसका कोई रूप व नाम नहीं है, जो अजन्मा है, सत चित और आनन्द स्वरूप है । जो परम धाम है और सर्व व्यापक तथा विश्वरूप है उसी भगवान ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है । उसकी यह लीला केवल भक्तों के लिए ही है क्योंकि भगवान परम कृपालु हैं और अपने भक्त पर बहुत कृपा करने वाले हैं ।

अलकार— अनुप्रास

जेहि जन पर ममता अति छोह । जेहि करना करि कोन्ह न कोह ।
गई बहोर गरीव नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।
बुध बरनहि हरि जस अस जानी । करहि पुनीत सुफल निज बानी ॥
तेहि बल में रघुपति गुन गाथा । कहिहुऊ नाइ राम पद माया ॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥

शब्दार्थ—कोह = क्रोध, बहोर = फिर से प्राप्त करने वाले, गरीव नेवाजू = दीन दयालु ।

भावार्थ—जिनकी भक्तों पर बड़ी ममता है और कृपा है और जिन्होंने

कृपा करके फिर किमी पर क्रोध नहीं किया ऐसे प्रभु श्री राम हैं जो गई हुई वस्तु को फिर से लौटा देते हैं जो दीनो का पालन करवे वाले हैं, जो सरल स्वभाव वाले, सर्व शक्तिमान और सबके स्वामी हैं। यह समझकर ही बुद्धिमान लोग भगवान के यश का वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और उत्तम फल देने वाली बनाते हैं। उन्हीं भगवान की कृपा के बल पर मैं श्रीराम के चरणों में सिर झुकाकर श्री रघुपति के गुणों की कथा कहूँगा। मुनियों ने पहले जिस प्रकार श्रीराम का यश गाया है, है भाई। मुझे उसी मार्ग पर चलना सुगम प्रतीत होता है।

अलंकार—अनुप्रास।

अति अपार जे सरित बर, जोनूप सेतु कराहि।

चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु थमु पारहि जाहि ॥

शब्दार्थ—वर = श्रेष्ठ, सरित = नदी, सेतु = पुल, पिपीलिकउ = चींटी भी।

भावार्थ—जो नदिया बहुत अच्छी है किन्तु दुर्गम हैं, जिनके पार जाना सम्भव नहीं है, ऐसी नदियों पर यदि राजा पुल बना देते हैं तो चींटियाँ भी उसे बिना किमी विशेष कठिनाई के पार कर सकती हैं। आशय यह है कि जिस प्रकार पहले के मुनियों ने श्रीराम के यश का वर्णन किया है उसी के सहारे मैं भी उस चरित्र का वर्णन कर सकूँगा।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउ रघुपति कथा सुहाई।

व्यास आदि कवि पु गव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।

चरन कमल बन्दउ तिन्ह केरे। पुरवहु सकल मनोरथ भेरे ॥

कलि के कबिन्ह करउ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुनग्रामा ॥

जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ॥

भए जे अहहि जे होइहि आगे। प्रनवउ सबहि कपट सब ह्यागे ॥

शब्दार्थ—रवि पु गव = कवि श्रेष्ठ, पुरवहु = पूर्ण करें ग्रामा = समूह।

भावार्थ—इस प्रकार मैं मनोबल प्राप्त करके (कि मैं श्रीराम के

चरित्र का वर्णन कर सकता हूँ) श्री रघुपति की सुझावनी कथा को कहूँगा। व्यास आदि जिन श्रेष्ठ कवियों ने बड़े आदर के साथ भगवान के गुणों का वर्णन किया है, मैं उनके चरण कमलों को प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथों को पूरे करें।

मैं कलियुग के भी उन सब कवियों को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने श्री राम के गुण-समूह का वर्णन किया है। जो बड़े बुद्धिमान प्रकृत कवि हैं जिन्होंने भाषा में श्री हरि के चरित्र का ही वर्णन किया है। ऐसे कवि जो मौजूद हैं, हो चुके हैं तथा जो होंगे, उन सब को मैं सभी प्रकार का कपट त्याग कर प्रणाम करता हूँ।

अलंकार :— रूपक

होहु प्रसन्न देहु वरदान । साधु समज भनिति सनमान ॥
 जो प्रबन्ध बूध नाह आदरही । सो श्रम वादि बाल कवि करहीं ॥
 करती भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥
 राम सुकीरति भनिति भदेसा । असमानस अस मोहि अदेसा ॥
 सुम्हरी कृपा सुलभ सोड मारे । सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥

शब्दार्थ :— वादि = व्यर्थ, भूति = ऐश्वर्य, सुरसरि = गंगा, अदेसा = आशंका, सदेह = टाटपटोरे = रेशम के डोरे।

भावार्थ — तुलसी दास प्रार्थना करते हैं कि मुझे प्रसन्न होकर आप सभी प्रकार के कवि वरदान दीजिये कि सज्जनों में मेरी कविता का सम्मान हो। क्योंकि जिस रचना का बुद्धिमान् लोग आदर नहीं करते, मूर्ख कवि उसको रचना का श्रम मूर्ख कवि व्यर्थ ही करते हैं। कविता, कविता और सम्पत्ति बही अच्छी होती है जो गंगा जी के समान सबका हित करने वाली हो। श्री राम की कीर्ति तो बहुत अच्छी है किन्तु मेरी कविता बहुत बुरी है, इन्हीं से मुझे चिन्ता है। परन्तु हे कवियों आपकी कृपा में यह बात भी मेरे चित्त से सुलभ हो सकती है यदि आपकी कृपा हो। जैसे भी टाटपर भी रेशम ली मिलाई अच्छी लगती है।

अलंकार — अनुप्रास

सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहि सुजान,
सहज वयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान ॥ १४ ॥ (क)

भाषार्थ :—सज्जन लोग सरल कविता का ही आदर करते हैं जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन हो। वह इतनी अच्छी हो कि शत्रु भी स्वभाविक वर विरोध को छोड़कर उत्तरी मराहना करने लगे।

सो न होइ विनु विमल मति, मोहि मति बल अति थोर,
करहु कृपा हरि बस कहउं, पुनि पुनि करउं निहोर ॥ १४ ॥ (ख)

भाषार्थ :—ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के नहीं हो सकती और मुझमें बुद्धिबल कम है। इसलिये मैं बार-बार आप लोगों से साग्रह निवेदन करता हूँ कि हे कवियों आप लोग मुझ पर कृपा करें जिससे मैं प्रभु के निर्मल वर का वर्णन कर सकूँ।

कवि कोविद रघुवर चरित, मानस मंजु मराल
बालविनय मुनि सुखि लखि, मो पर होहु कृपाल ॥ १४ ॥ (ग)

भाषार्थ - हे कवियों और विद्वानों आप श्री राम चरित्र रूपी मानसरोवर के सुन्दर हृत्त हैं। आप मुझ बालक की बिनती सुनकर और मेरी अच्छी रचि को देखकर मुझ पर कृपा करें।

अलंकार :— रूपक

सौरठा - बन्दुं मुनिपद कंजु, रामायन बेहि निरमयद
सखर सुकोमल मंजु, दीप रहित दूपन सहित ॥ १४ ॥ (घ)

शब्दार्थ - कंजु = कमल, सखर = खर नामक रासस के सहित, कठोर होने पर भी। दूपन = एक रासस, दीप।

भाषार्थ - कवि कहता है कि मैं उन वाग्मीणि मुनि के चरणों में प्रणाम करना हूँ जिन्होंने रामायण की रचना की जो खर (रासस की ज्या) रहित होने पर भी कठोर नहीं है, प्रभुत कोमल और सुन्दर है तथा जो दूपन (रासस की ज्या) होने पर भी दीप मुक्त नहीं है।

अलंकार :— रूपक से पुष्ट विरोधानामस।

बन्दु चारिउ वेद, भव वारिधि वोहित सरिस,
जिन्हहि न सपनेहु खेद, वरनत रघुबर विसद जसु ॥ १४ ॥ (ड)

शब्दार्थ :- वारिधि = समुद्र, वोहित = जहाज ।

भावार्थ - मैं चारो वेदो को प्रणाम करता हूँ जो कि ससार रूपी समुद्र को पार करने के लिये जहाज के समान हैं । जिन्हें श्री राम के विमल यश का वर्णन करने में स्वप्न में भी खेद नहीं होता ।

अलंकार - रूपक और उपमा ।

बन्दु विधि पद रेनु, भव सागर जेहि कीन्ह जहँ,
सत सुधा ससि घेनु, प्रगटे खल, विष बारुनी ॥ १४ ॥ (घ)

शब्दार्थ = सत = सज्जन, ससि = चन्द्रमा, रेनु = मिट्टी, बारुनी = शराव ।

भावार्थ - मैं ब्रह्मा जी के चरणों की रज को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने इस भव सागर को बनाया है । जिसमें से एक ओर तो सज्जन रूपी अमृत और चन्द्रमा तथा कामधेनु प्रकट हुये हैं तथा दूसरी ओर दुष्ट रूपी विष और मदिरा प्रकट हुये हैं ।

विशेष :- रूपक अलंकार

विवुध विप्र बुध ग्रह चरन, वंदि कहउं कर जोरि ।

होइ प्रसन्न पुरवहु सफल, मजु मनोरथ मोरि ॥ १४ ॥ (छ)

शब्दार्थ - विवुध = देवता बुध = पंडित, पुरवहु = पूर्ण करे ।

भावार्थ ; - देवता, ब्राह्मण और पंडित तथा ग्रहों की चरण बन्दना करके मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप सब मुझ पर प्रसन्न हो तथा मेरे सम्पूर्ण सुन्दर मनोरथों को पूर्ण करे ।

अलंकार :- अनुप्रास ।

पुनि बवउं सादर सुरसरिता । ज गल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका । कहत तुनत एक हर अविवेका ॥
गुर पितु मातु महेस नवानो । प्ररवउं दीनबन्धु दिन दानो ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के । हित निरूपधि सब विधि तुलसी के ॥

शब्दार्थ - जुगल = दोनो, मञ्जन = स्नान, पान = पीना, पुनीत = पवित्र, सियपीके = सीता जी के पति श्रीराम के, निरूपधि = कपट रहित ।

भावाय - इसके बाद मैं सरस्वती जी और गंगा जी की वन्दना करता हूँ । दोनो ही पवित्र और मनोहर चरित्र वाली हैं । गंगाजी में स्नान करने और उसका जल पीने से पाप नष्ट होते हैं और सरस्वती जी कहने तथा सुनने से अज्ञान का नाश करती है । मैं अपने गुरु और माता पिता स्वरूप जो शिव और पार्वती हैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । ये दोनबन्धु तथा नित्य दान करने वाले हैं । ये सीतापति श्री राम के सेवक, सखा और स्वामी हैं तथा तुलसी दास के सभी प्रकार से हित करने वाले हैं ।

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा । साबर मंत्र जाल जिन्हू सिरिजा ॥
अनमिल आखर अरथ न जायू । प्रगट प्रभाउ नहेस प्रतापू ॥
सो जनेस मोहि पर अनुकूल । करिहि कथा मुब मंगल मूल ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । वरनउ रामचरित चित चाऊ ॥

शब्दार्थ - गिरिजा = पार्वती, साबर = सावर, सिरिजा = रत्ना, उमेन = शिव, पसाऊ = प्रसाद ।

भावाय - शिव और पार्वती ने कालयुग को देखकर ससार के हित के लिये सावर मंत्रों को रचना की है । उन मंत्रों के अक्षर बेमेल हैं न उनका कोई अर्थ है न अर्थ ही होता है फिर भी शिव जी के प्रसाद से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है । वे ही उमापति शिव मूक पर कृपा करें, प्रसन्न हो और मेरी इस कथा को श्रवणता और कल्याण का मूल बनावें । इन प्रकार मैं पार्वती और शिव दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर उत्कण्ठा के नाथ श्रीराम के चरित्र का वर्णन करता हूँ ।

श्लोकार :- अनुप्रास

भक्ति भोरि शिव कृपा दिनाती । सति समाज मिलि मनहुं सुराती ॥
जो एहि कथाहि सनेह समेता । कहि हहि सुनिहहि समझि सजेता ॥
होइहहि राम चरण अनुरामी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥

शब्दार्थ :- चिनाती = घोषित होती है, सजेता = ध्यान में ।

भावार्थ :—तुलसी दास जो कहते हैं कि शिव जी की कृपा से मेरी कविता वैसी ही अच्छी लगेगी जैसे चन्द्रमा और तारामो सहित राशि लगती है। जो इस कथा को प्रेम सहित एव सचेत होकर समझवृद्ध के साथ कहे और सुनेंगे वे कलियुग के पापों से रहित तथा सुन्दर कल्याण के भागी बनकर श्री राम के चरणों के प्रेमी बन जायेंगे।

अलंकार —उत्प्रेक्षा

सपनेहुँ साँचेहुँ मोहि पर जो हर गौरि पसाउ ।

तो फुर होउँ जो फ़हेउँ सब, भापा भनिति प्रभाउ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ - पसाउ = (प्रसाद) प्रसन्नता, पुरि = सच ।

भावार्थ - यदि शिव और पार्वती मुझ पर स्वप्न में भी सचमुच प्रसन्न हो तो मैंने इस भाषा कविता का जो प्रभाव कहा है वह सब सत्य हो ।

बँवउँ अवधपुरी अतिपावनि । सरजू सरि कलि फ़लुप नसावनि ॥

प्रनवउँ पुर नर नारि वहोरी । ममता जिन्ह पर प्रनाँह न थोरी ॥

सिय निदक अथ ओध नसाये । लोक विसोक बनाई बसाये ॥

बन्दउँ कौसल्या विसि प्राची । कीरति जासु सकल जग माची ॥

प्रगटेउ जह रघुपति ससि घारु । विस्व सुखद खल कमल तुसारु ॥

बसरय राउ सहित सब रानी । सुकृत सुभंगल मूरति मानो ।

करउँ प्रनाँम करम मन बानी । करहु कृपा सुत सेवक जानी ॥

जिन्हहि विरचि बंड भयउँ विधाता । महिमा अवधि राम पित्तु माता ॥

शब्दार्थ - पावनि = पवित्र; फ़लुप = पाप, वहोरी = फिर, अथ = पाप, ओध = समूह, प्राची = पूर्वं दिग, माची = फँली हुई है, तुसारु (तुपार) = बर्फ ।

भावार्थ - कवि तुलसीदास कहते हैं कि मैं अत्यन्त पवित्र अयोध्या-पुरी को प्रणाम करता हूँ और कलियुग के पापों को नष्ट करने वाली सरयू नदी की बन्दना करता हूँ। पुन मैं अयोध्या पुरी के उन नर नारियों को प्रणाम करता हूँ जिन पर श्री राम की असीम कृपा है। जिन्होंने सीता जी निन्दा करने वाले धोवी के पापों को नष्ट करके इस संसार के सभी कष्टों से उसे मुक्त करके अपने लोक में बसा लिया।

मैं कौशल्या रूपी पूर्वं दिशा को प्रणाम करता हूँ जिसकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है, जहाँ विश्व को सुख देने वाले तथा दुष्ट रूपी कमल समूह के लिये पाले के समान श्री रामचन्द्र जी रूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुये। मैं सभी रातियों सहित राजा दशरथ को मन क्रम और वाणी से प्रणाम करता हूँ जो पुण्यात्मा है और कल्याण की मूर्ति हैं। वे मुझे अपने पुत्र का सेवक जानकर कृपा करें। श्रीराम के माता पिता महिमा की सीमा हैं। जिन्हें रचकर ब्रह्माजी ने भी बढाई प्राप्त की।

अलंकार - अनुप्रास और रूपक

श्लो० वन्दे अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद ।
बिछरत दीनंदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ - भुआल = राजा (भूपाल), परिहरेउ = छोड़ दिया।

भावार्थ - मैं अवध के राजा श्री दशरथ की वन्दना करता हूँ जिनका श्री राम के चरणों में सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनों पर दया करने वाले श्री राम के विछुडते ही अपने प्रिय शरीर को तिनके के नमान त्याग दिया।

अलंकार - उपमा।

प्रनवउ परिजन सहित विदेहू । जाहि राम पद गूढ सनेहू ॥
जीग भोग महू राखेउ गोई । राम विलोकत प्रगटेउ सोई ॥
प्रनवउ प्रथम भरत के घरना । जासु नेम द्रत जाइ न बरना ॥
रामचरन पकज मन जासु । लुबध मधुप इब तजइ न पासु ॥

शब्दार्थ - परिजन = कुटुम्बी, विदेहू = जनक, गोई = छिपाकर
लुबध = लुभाना हुआ (लुब्ध)।

भावार्थ - मैं परिवार सहित राजा जनक को प्रणाम करता हूँ जिनका श्री राम के चरणों पर गुप्त प्रेम था। उन प्रेम को उन्होंने योग और भोग में छिपा रखा था, परन्तु वह श्री राम को देखते ही प्रकट हो गया। नर्व प्रथम मैं श्री भरत के चरणों को प्रणाम करता हूँ जिनके नियम और द्रत का वण नहीं मिला जा सकता तथा जिनका मन श्रीराम के चरणों में शरीर की तरफ मुग्न हो रहा है और उनके पाम से चम्की हटना नहीं चाहता।

अलंकार :- रूपक, उपमा

बन्दे लछिमन पद जल जाता । सीतल सुभग भगत सुख दाता ॥
 रघुपति की रति विमल पताका । वंड समान भयड जस जाका ॥
 सैष सहस्रसीस जग कारन । जो अवतरेड भूमि भय टारन ॥
 सदा सो सानुकूल रह भो पर । कृपा सिधु सौमित्रि गुनाकर ॥
 रिपुसुदन पद कमल नमामी । सर सुशील भरत अनुगामी ॥
 महावीर बिनवड हनुमाना । राम जासु जस आप वखाना ॥

शब्दार्थ :- जलजाता = कमल, मुभग = सुन्दर, पताका = ध्वजा, सहस्रसीस = हजार सिर वाले, सौमित्रि = लक्ष्मण, रिपुसुदन = शत्रुघ्न, नमामी = प्रणाम करता हू ।

भावायं :- मैं श्री लक्ष्मण जी के उन चरण कमलो को प्रणाम करता हू जो सीतल, सुन्दर और भवतो को सुख देने वाले हैं जिनका यश श्री रामचन्द्र जी की कीर्ति रूपी विमल ध्वजा मे दण्ड के समान है । जो हजार सिर वाले और जगत के कारण शोपनाग है जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिये अवतार लिया, वे गुणो की खान, कृपा के समुद्र, सुमित्रा के पुत्र श्री लक्ष्मण जी मुझ पर प्रसन्न रहें ।

अव मैं शत्रुघ्न जी के चरणो को प्रणाम करता हूँ जो वडे वीर सुशील और भरत जी के अनुगामी हैं । तत्पश्चात् मैं महावीर श्री हनुमान जी को प्रणाम करता हूँ जिनके यश का वर्णन श्री रामचन्द्रजी ने अपने मुख से किया है ।

अलंकार :- रूपक

शो० -- प्रनखड पवनबुमार, सल यज्ञ पायक ग्यावखन,
 जासु हृदय आगार, बसहि राम सर चाप धर ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ -- पावक = अग्नि, आगार = भटार

भावायं :- मैं पवन पुत्र श्री हनुमान जी को प्रणाम करता हूँ जो दुष्ट रूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि के समान हैं और ज्ञान के वादल हैं । जिनके हृदय रूपी भयन मे शत्रुघ्न बाण धारण किये रामचन्द्र जी निवास करते हैं ।

अलंकार : रूपक
 कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा ॥
 वन्दे सव के चरन सूहाये। अघम, सररीर राम जिन्ह पाए ॥
 रघुपति चरन उपासक जेतें। खग मृग सुर, नर असुर समेतें ॥
 वन्दे पद सरोज सव केरे। जे विनु काम राम के चरे ॥

शब्दार्थ .—कपिपति = वानर राज सुग्रीव, कीस = वानर, केरे = के।

भावार्थ - वानर राज सुग्रीव, रीछों के राजा जामवन्त निसाचर राजा विभीषण, और अंगद आदि वानर समूह की मैं वन्दना करता हूँ जिन्होंने अघम शरीर में भी श्री राम को प्राप्त कर लिया। पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य और असुर आदि जितने भी श्री राम के चरणों के भक्त हैं, मैं उन सब के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ जो अकारण ही श्री राम के दास हैं।

सुक सनकादि भगवन् मुनि नारद। जे मुनिवर विग्धान विसारद ॥
 प्रनवडे सर्वाह धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥
 जनकसता जग जननि जानकी। अनिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
 ताके जग पद कमल मनावडे। जासु कृपा निरमल मति पावडे ॥
 पुनि मन वचन कर्म रघुनाथक। चरन कमल वन्दे सव लायक ॥
 राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत विपति भंजन सुखदायक ॥

शब्दार्थ .—सुक = शुक्रदेव, धरनि = पृथ्वी, सनकादि = सनक मानदन, सनत्कुमार और सनातन ब्रह्मा के चार मानस पुत्र, धरनि = पृथ्वी राजिव नयन = कमल नेत्र, भजन = नष्ट करने वाले।

भावार्थ :- तुलसी दास जो कहते हैं कि मैं शुक्रदेव, सनकादि, नारद मुनि तथा अन्य जितने भी भक्त और ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं पृथ्वी पर चिह्न भुकाकर उन सब को प्रणाम करता हूँ। हे मुनिश्वरों! आप सब मुझे अपना दास जानकर मुझपर कृपा करो। राजा जनक को पृथ्वी और जगत् की माता करुणानिधान श्री राम की अतीव प्रिया हैं उन सीता जी के चरण कमलों को मैं स्तनना हूँ जिनकी कृपा से मुझे निर्मल बुद्धि प्राप्त हो। इसके बाद मैं सब समर्थ श्री रामचन्द्र जी को मन, वाणी और कर्म में प्रणाम करता हूँ जो रमल

नेत्र, धनुष बाणधारी भक्तों की विपत्ति का विनाश करने वाले और उन्हें सुख देने वाले हैं।

अलंकार :— अनुप्रास और रूपक।

वो० गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न
बन्दे सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥ १८

शब्दार्थ :— बीचि = लहर, खिन्न दुःखी।

भावार्थ :— जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर के समान रहने वाले हैं, कहने में ही भिन्न-भिन्न हैं, वैसे एक ही हैं। उन श्री राम के चरणों को मैं प्रणाम करता हूँ जिन्हें दीन दुःखी भी बहुत प्रिय है।

अलंकार :— दुष्टान्त, लाटानुप्रास।

बन्दे नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु, भानु हिमकर को ॥
बिधि हरि हरमय वेद प्राण सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥
महामत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥
जान आविकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस नाम सम सुनि सिव वानी। जपि जोई पिय संग भवानी ॥
हरथे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को ॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को ॥

शब्दार्थ — कृसानु = अग्नि, हिमकर = चन्द्रमा, अगुन = निर्गुण, हेतु = कारण, गनराऊ = गणेशजी, सहस = हजार, जोई = भोजन करने वैठी, भूषन = गहने, कालकू = विष, अमी = अमृत। *Makavir*

भावार्थ .— कवि तुलसी दास जी कहते हैं कि मैं श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा का हेतु है। वह राम ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप है, वेदों का प्राण, निर्गुण, उपमा रहित और गुणों का निधान है। जिस राम के नाम को शिव सदा जपते रहते हैं और जिनके उपदेश के प्रभाव से काशी में मोक्ष होती है, जिसकी महिमा को गणेशजी भी जानते

हैं और वे इन राम नाम के प्रभाव से ही सर्व प्रथम पूजे जाते हैं। श्रीराम के नाम के प्रभाव को आदि कवि वाल्मीकि भी जानते हैं जो उलटा नाम जपकर पवित्र हो गये। यह एक नाम सहस्र नामों के समान है शिवजी के मुख से यह सुनकर और इस नाम का जप कर के पार्वती शिवजीके साथ भोजन करने बैठे। शिवजी भी पार्वती जी के हृदय में नाम के प्रति ऐसा प्रेम देखकर प्रसन्न होगये, उन्होंने स्त्रियों की आभूषण स्वरूप पार्वती जी को आनूप्य के रत्न में धारण कर लिया अर्थात् उन्होंने पार्वती जी को अपनी अर्धांगिनी बना लिया।

रामनाम के प्रभाव को शिवजी अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि इसी के प्रभाव से वे विष को भी अमृत के समान पी गये।

अलंकार :—अनुप्रास, उल्लेख

विशेष - गणेशजी को प्रथम पूजा की शिवपार्वती के एक साथ भोजन करने की समुद्र मंथन और वाल्मीकि की अन्तर्कथा प्रश्नोत्तर भाग में देखिये।

दो० - बरसा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुवास।

रामनाम बर बरन जुग, सावन भादव मास ॥१६॥

शब्दार्थ - सालि = घान, बरन = अक्षर, जुग = दो।

भावार्थ - श्रीरामचंद्र की भक्ति वर्षा ऋतु है उनके उत्तम सेवक ही घान हैं, कवि तुलसा दास कहते हैं कि राम के नाम के दो सुन्दर अक्षर (रा और म) सावन और भादो के महिने हैं

अलंकार - साग रूपक, अनुप्रास

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन विलोचन जन जिय दोऊ ॥

सुमिरत तुलस सुखद सब काहू। लोक लाहू परलोक निबाहू ॥

बहूत सुनत सुमिरत सुखि नीके। राम लखन समप्रिय तुलसी के ॥

घरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती ॥

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक विसैयि जन भ्राता ॥

भगति सुतिय कल करन विभूयन। जग हित हेतु विमल बिधु पूषन ॥

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम घर वसुधा के ॥

जन मन मजु कज मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ॥

शब्दार्थ — आखर = अक्षर, वरन = वर्ण, विलोचन = नीला, जोऊ = जो, लाहु = लाभ, विलगाती = भिन्न प्रतीत होती है, सधानी = साथी, कल = सुन्दर, करनविभूपन = कानों का गहना, पूपन = सूर्य, कमठ = कछुआ, कज = कमल, जीह = जीभ, हलधर = बलराम ।

भावार्थ :—तुलसीदासजी कहते हैं कि रामनाम के दो अक्षर 'रा' और 'म' मधुर और मीनोहर हैं । ये सज्ज वर्णों के नेत्र हैं और भक्तों के जीवन हैं । ये स्मरण करने में सबके लिये सुलभ हैं । सुख देने वाले हैं और जो इस लोक में काम और परलोक में निर्वाह करते हैं अर्थात् मोक्ष देने वाले हैं । ये कहने, सुनने और स्मरण करने में अच्छे लगते हैं । तुलसीदास को ये अक्षर राम और लक्ष्मण के समान प्रिय हैं, इन वर्णों का वर्णन करने में भिन्नता दीख पड़ती है, किन्तु ये जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही पास रहने वाले हैं, एक रस तथा एकारूप हैं ।

ये दोनो अक्षर नर और नारायण के समान सुन्दर भाई हैं, ये ससार का पालन करने वाले और विशेषरूप से भक्तों की रक्षा करने वाले हैं । ये भक्तों की रक्षा करने वाले हैं और ससार की भलाई करने में सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं । ये सुन्दर मुक्तिरूपी अमृत के स्वाद और वृष्टि के समान हैं, किच्छप और शीषजी के समान पृथ्वी को धारण करने वाले हैं । ये भक्तों के मन लंपी सुन्दर कमल में विहार करने वाले मोरे के समान हैं और जीभ रूपी शीषोदाजी के लिये श्रीकृष्ण और बलराम के समान आनन्द देने वाले हैं ।

दो — एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ ।

तुलसी रघुवर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

भावार्थ :—कवि, तुलसीदासजी कहते हैं कि इन अक्षरों में एक 'र' छत्ररूप में और दूसरा मुकुटमणी के रूप में सब अक्षरों के ऊपर बिराजते हैं ।

अनुगत तरिण नाम अरु नारी । प्रीति परम्पर प्रभु अनुगामी ॥
 नाम रूप द्रुह ईन उपाधी । अकथ अनादि ट्टुनामुक्ति तापी ॥
 को बड छोट फहन अपराधू । मुनि गुन नेदु नमुमर्हि ताधू ॥
 देखअर्हि रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहि नाम विहोना ॥
 रूप वितेप नाम धिनु जानै । फरतल गत न परहि पाँहवानै ॥
 चुमिरिअ नाम रूप धिनु देखै । आवत हृदय ननेह वितेपे ॥
 नाम रूप गति अकथ कहानी । समुझत सुगद न परति धरानी ॥
 अगुन सगुन विद्ध नाम चुतापी । उन्नध प्रगेषक चतुर दुभापी ॥

शब्दार्थ —द्रुह = दो, प्रभु = स्वामी, अनुगामी = नेवरु, उपाधी =
 उपाधि, चुनामुक्ति तापी = शुद्ध स्मित से युक्त बुद्धिमे ही इनका स्वरूप नमस
 मे आता है,

भावार्थ —कवि कहता है कि समझने मे नो नाम और नामो एक से
 ही है, परन्तु दोनो मे परस्पर स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है, अर्थात् जैसे
 सेवक स्वामी के पीछे चलता है वैसे ही नाम के पीछे नामो चलता है । राम
 स्वय अपने नाम का (राम का) अनुकरण करते हैं, नाम लेने ही वे उपस्थित
 हो जाते हैं । नाम और रूप ये ईश्वर की दो उपाधि हैं, ये दोनो अकथ और
 अनादि हैं तथा सुन्दर बुद्धि से ही इनका दिव्य रूप समझ मे आता है । नाम
 और रूप मे कौन बडा है और कौन छोटा है, यह कहना अपरानव है अत गुण
 भेद के अनुसार साधुजन स्वय इत्ते समझ लेंगे । रूप नाम के अधीन देखा जाता
 है, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं होता । बिना नाम को जाने रूप की विशेषता
 कोई मूल्य नहीं रखती, बिना नाम का परिचय हुये कोई भी वस्तु नहीं पहचानी
 जा सकती । किन्तु रूप को बिना देखे भी नाम का स्मरण करने से विशेष प्रेम
 के साथ वह रूप हृदय मे आजाता है ।

इन प्रकार नाम और रूप की गति की कहानी अकथनीय है । वह सम-
 झने मे नुबदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । ईश्वर के
 दोनो रूपों—निगुण और सगुण के बीच मे नाम सुन्दर साक्षी है और नाम ही
 दोनो का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभापिया है ।

विशेष—(1) प्रस्तुत पन्तियो मे तुलसीदास जी ने नाम और रूप दोनों का महत्व स्वीकार करके रूप को नाम के अधीन बताया है ।

(11) अनुप्रास अलंकार ।

मूल—राम नाम मनिदीप घर जीह देहर्षी द्वार ।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥२१॥

भावार्थ —तुलसीदास जी कहते हैं अगर तू भीतर और बाहर उजाला चाहता है तो रामनाम स्त्री मणी-दीपक को (शरीर स्त्री घर के मुख स्त्री) द्वारा की जीभ देहली पर घर (जैसे मणी का प्रकाश रहता है वैसे ही राम-नाम अपने से निर्गुण ब्रह्म के दर्शन होंगे और बाहर सगुण रूप के चारित्र्य दीखेगे ।

विशेष —रूपक अलंकार

नाम जोहं जनि जागहि जोगि । खिरति विरचि प्रपद्य विजोगि ।

ब्रह्म सुखहि अनुभवाह अनूपा । अकय अनामय नाम न रूपा ॥

भावार्थ —इन नाम के जोन मे जपते हुए योगी (तत्त्वज्ञान स्त्री दिन मे) जागते हैं और वैराग्य के द्वारा ब्रह्मा के वन मे दूये इस मसारी-जजाल से अपने को पृथक् रखते हैं और अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जो नाम और रूप से रहित, अनिर्वचनीय और अनामय है ।

विशेष :—असंगति एव अनुप्रास अलंकार ।

जाना चर्हाह गूढ गति जेऊ । नाम जोहं जपि जानहि तेऊ ॥

साधक नाम जपहि लय लाएँ । होहि सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥

शब्दार्थ —लय लाएँ = ली लगाकर । अनिमादिक = अग्निना आदि

बाओ सिद्धियाँ—अग्निमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राबान्य, इन्द्रिय और चशित्त ।

भावार्थ —जो (जिज्ञानु) परमात्मा के गूढ तत्त्व को जानना चाहते हैं वे जोन से नाम जपकर उसे जान लेते हैं । जो साधक (जपति निद्रियों की कामना वाले) ली लगाकर नाम जपने हैं वे अग्निना आदि सिद्धियाँ प्राप्त सिद्ध हो जाते हैं ।

जहाँ नामु जन आरत भारी । मिटाँह कुसंकट हौँहि सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदार ॥

शब्दार्थ — आरत = आतं, दुःखी । सुकृती = पुण्यात्मा । अनघ = पापरहित ।

भावार्थ :— जो आतं (दुःखी) जन नाम जपते हैं उनके बड़े-बड़े भारी संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं । नसार में श्रीरामजी के भक्त चार प्रकार के हैं (अर्थात् ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और अतं) और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं ।

चहूँ चतुर कहूँ नाम अघारा । ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥
चहुँ जग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेषि नहि भान उपाऊ ॥

शब्दार्थ — बिसेषि = विशेष रूप से । जग = जग, काल । श्रुति = वेद

भावार्थ — इन चारों ही चतुर भक्तों को राम नाम का आघार है, पर प्रभु जो इनमें ज्ञानी भक्त ही विशेष रूप से प्रिय हैं । जो तो चारों ही युगों और चारों ही वेदों में नाम का प्रभाव है, पर कलियुग में विशेषकर नाम को छोड़ कर अन्य उपाय नहीं है ।

मूल—सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन ।

नाम सुप्रेम पियूप हृद, तिन्हहुँ किए मन मोन ॥२२॥

शब्दार्थ—पियूप = अमृत । हृद = सरोवर ।

भावार्थ — जो लोग सब प्रकार की कामनाओं से रहित हैं और राम की भक्ति के रस में डूबे हुए हैं, उन्होंने भी नाम के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है अर्थात् वे नाम रूपी मुक्ति का निरन्तर जान्नायक करते रहते हैं ।

विशेष—परम्परित रूप अलकार ।

मूल—अन सगुन दुइ द्रष्ट, नरुपा । अक्य अगाध अनादि अतूपा ॥

भोरे मत बट नामु इह ते । किए जौँह जुग निज वस निज बूते ॥

श्रीहि मुजन जनि जानहि जनकी । बहूँ प्रतीति प्रीति रचि मनकी ॥

एकु दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म त्रिवेकू ॥
 उभय अगम जुग सुगम नाम तैं । फहेउ नामु बड ब्रह्म राम तैं ॥
 व्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनंद रासी ॥
 अस प्रसु हृदयें अछन अबिकारी । सकल जीव जग दीन बुखारी ॥
 नाम नितुपन नान जतन तैं । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तैं ॥४॥

शब्दार्थ—जुग = दोनो को । बूते = बल । प्रीति = वृष्टता, साह्य ।
 दारुगत = काठ के भीतर । अछत = रहने हुए ।

भावार्थ—ब्रह्म के दो स्वरूप हैं—निर्गुण और सगुण । ये दोनो ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं किन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी सम्मति में नाम इन दोनो में बड़ा है जिसने अपने बल से दोनो को अपने वश में कर रखा है ।

जो सृजन है, वे उस बात को मुझ दाब की वृष्टता न समझे । मैं अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ । दोनो ही प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है—निर्गुण ब्रह्म उस अग्नि के समान है जो काठ के भीतर है और दिखाई नहीं देती, और सगुण ब्रह्म उस प्रकट अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दीवती है । (इसी तरह दोनो ब्रह्म तत्त्व एक ही हैं) । दोनो ही ज्ञान में अगम हैं, किन्तु नाम से दोनो ही सुगम हा जाने हैं । इसलिए मैंने नाम को ब्रह्म (निर्गुण) और राम (सगुण) दोनो में बड़ा रखा है । ब्रह्म एक ही, सर्वव्यापक है, अबिनाशी है, सच्चिदानन्द है । ऐसे विचार-रहित प्रसु हृदय में रहते हुए भी हमारे के सब जीव दीन और बुखारी नाम का नरूपण करने पर और यत्न करने से उनका वास्तविक स्वरूप ही प्रकट हो जाता है जैसे रत्न के जानने से उनका मूल्य ।

विशेष — लाटानुग्रान, वृदानुग्रान, उपना, उक्ते, उदाहरण अनुग्रान ।

मूल — निर्गुण में एहि भाति बट, नाम प्रभाउ अगार ।

फहेउ नामु बड राम ते, निज विचार अनसार । २३५

भावार्थ — तुलसीदासजी कहते हैं कि नाम से नाम का प्रभाव बड़ा है और मेरे विचारों के अनुसार नाम निर्गुण नाम में भी बड़ा है । (आगे की पवित्रियों में कारणों का उल्लेख किया गया है) ।

मूल—राम भग्न हित नर तनु धारो । सहि सन्द किए साधु सुधारो ॥
 नामु तप्रेम जपत मनयासा । भगत होहि मुद मंगल यासा ॥
 राम एक तापत तिय तारो । नाम कोटि खल कुमति सुधारो ॥
 रिपि हित राम सुकेतुसुता की । सहि सेन सुत कीन्हि विबाको ॥
 सहि दौघ दुखदाम दुरासा । दलइ नामु जिमि रधि निमि नाम
 नजेड राम आप भव चापु । भव भय भंजन नाम प्रतापु ।
 बइक वन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन मन अमित नाम किए पावन
 निनिचर निकर दले रघुनन्दन । नामु सकल कनि कलुप निकंदन ।

दीहा—सवरी गीघ सुपेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाय ।

नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन नाथ ॥

शब्दार्थ— अन्याना = नहज ही मे, बिना प्रयास के ही । ज्ञान = घर ।
 तापन तिय = अहल्या—गौतम ऋषि की पत्नी जो शाय ने पत्थर की गिला हो
 गई थी और जिन्ने राम के चरन-स्पर्श ने पुनः पूर्व रूप प्राप्त कर लिया था ।
 ऋषि (महा विश्वामित्र ने तापस्य हैं) । सुकेतु सुता = सुकेतु वरु की पुत्री ताड़का
 जो अपने पुत्र सुवाहु' सहित राम ने भारी गई । विवाकी = मनाप । नव
 चाप = शिव-शत्रुष । निचर = समूह । कलुप = पाप । निकदन = नाश करना ।
 सवरी = घदरी एक मीलनी जो राम भक्त थी, राम ने जिनके झूठे बर नाथे
 थे । गीघ = जटायु एक पक्षी (गिद्ध) जिन्ने नीता को हर कर ले जाते हुए
 रावर से नीता को छुडान के लिए बुद्ध किया था । सुगति = मुक्ति । उधारे =
 उद्धार किया । नाथ = ऋषा । विदित = प्रसिद्ध ।

भावार्थ—श्री राम ने भक्तों के हित के लिए नमुष्य शरीर धारण
 किया एक स्वयं अनेक कष्ट नहकर साधुओं को मुक्ती बनाया, किन्तु भक्तगण
 प्रेम के नाथ नाम का जप करते हुए नहज ही मे आनन्द और मंगल के घर
 बन जाने हैं ।

श्री राम ने तो एक तपस्वी की स्त्री (गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या)
 को ही तारा, परन्तु नाम ने करोडो दुष्टों को खंगडी बुद्धि की सुधार दिया ।
 श्री राम ने विश्वामित्र ऋषि के हित के लिए एक राजसी ताड़का को उसकी
 सेना और उनके पुत्र सुवाहु के सहित सम्राट किया, परन्तु नाम अपने भक्तों

के दोष, दुःख और दुराशाओं को इस तरह नष्ट कर देता है जिस तरह सूर्य रात्री को। श्रीराम ने तो स्वयं केवल शिवजी के धनुष को ही तोड़ा, परन्तु उनके नाम का प्रताप ससार के सब प्रकार के भयों का नाश करने वाला है।

श्री राम ने तो केवल भयानक दण्डक वन को ही मुहावना बनाया, परन्तु नाम ने असह्य मनुष्यों के मनो को पवित्र कर दिया। श्री राम ने राक्षसों के समूह को मारा, परन्तु उनका नाम तो कलियुग के सारे पापों की जड़ उखाड़ने वाला है।

श्री राम ने तो श्वरी, जटायु आदि अच्छे सेवकों को ही मुक्ति दी, परन्तु नाम ने अगणित दुष्टों का उद्धार किया। नाम के गुणों की गाथा वेदों में भी प्रकट है।

विशेष—अनुप्रास, सहोक्ति, उदाहरण आदि अलंकार।

मूल—राम सुकठ विभीषण बोऊ । राखे सरन जान सद्गु कोऊ ॥
 नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक वेद वर विरिद विराजे ॥
 राम भालू कपि कटकु बटोरा । सेतु हेतु अमु कीन्ह न योरा ॥
 नामु लेत भव सिंधु सुखाहीं । करहु विचार सुजन मन माहीं ॥
 राम सकुल रज रावनु मारा । सीय सहित निज पुर पगु धारा ॥
 राजा रामु अवध रजधानी । गावत गुन सुर मुनि वर बानी ॥
 सेवक सुमिरत नामु सप्रीती । विनु अम प्रबल मोह दलु जीती ॥
 फिरत सनेहें मगन सुख अपने । नाम प्रसाद सोच नहि सपने ॥

शब्दार्थ --सुकठ = मूर्खत्व · नेवाजे = कृपा की । विरिद = यश ।
 कटुक = सेना । बटोरा = एकत्र की ।

भाषार्थ --इस बात को सब कोई जानते हैं कि राम ने नृपति और विभीषण, दो को ही अपनी शरण में रखा, परन्तु नाम ने अनेक गरीबों पर कृपा की है। नाम का सुन्दर यश लोक और वेद में विशेष रूप से प्रकाशित है।

श्री राम ने तो भालू और बन्दरो की सेना इकट्ठी की और समुद्र पर पुल बंधने के लिए थोड़ा अम नहीं लिया और अर्थात् उन्हें वृहत् अम करना पडा। परन्तु नाम की यह विदोषता है कि नाम लेते ही ससार स्त्री नम्र सूत्र

जाता है क्योंकि उनका नाम मन्तर स्त्री गन्धर्व ने पार कर देता है। हे मञ्जना ! मन में विचार कीजिए कि दोनों ने कौन बड़ा है।

श्री राम ने मन्दुदम्ब रावण को मारा, तदन्तर भीता महित उन्होंने अपने नर-अयोध्या में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अयोध्या उनकी राजधानी बनी, देवता और मृत्ति सुन्दर बाण्णी ने उनके गुण गाते हैं।

जिन्नु जो राम के दाम हैं, वे प्रेम पूर्वक नाम के स्मरण मात्र में दिना परिश्रम मोह की प्रवन नेना को जीत कर प्रेम में मग्न हुए अपने ही मुँह में विचरते हैं। नाम के प्रवाद ने उन्हें स्वप्न में भी चिन्ता नहीं करता।

विशेष -- बद-भैरी और रुक्म उक्कार।

मूल--ब्रह्म राम तें नाम बड, वर दायक वर दानि।

रामचरित नत कोटि महें, लिय महेश जियें जानि ॥२५॥

भाषार्थ--ब्रह्म (निरुग) और राम (गुरु) दोनों में नाम बड़ा है। यह नाम (ब्रह्म आदि) वर देने वालो को भी वर देने वाला है। इन 'राम-नाम' को इन कोटि रामायणों का सार जानकर महादेवजी ने ब्रह्म किया है।

विशेष-- वर शब्द की रानी अर्थ में आवृत्ति होने से लघुत्वान् बलवान्।

मूल :- नाम प्रसाद संभु अविनामी। साजु अमंगल मगल रामी ॥

नुक मनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी ॥

नारद जानेर नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ॥

नामु अपन प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत मिरोमति मे प्रह्लादू ॥

अवे मगनाति लपेर हरि नाउ। पायल अचल अनूपम ठाऊ ॥

सुनिनि पवनसुत पावन नामू। अपने वष करि राखे रामू ॥

अपतु अजानित्तु गजु गनिकाऊ। भए मुकुन हरि नाम प्रसाऊ ॥

दहाँ कहाँ निगि नाम बडाई। रामु न सकाँहि नाम गुन गाई ॥

बोहा - रामु राम को कल्पतरु, कनि कल्याण निवासु।

जो सुभिरत भयो नाँग तें, तुलसी तुलसीदासु ॥ २६ ॥

शब्दार्थ -- नामु = वेग-नूपा। प्रसादू = कृपा। जानानि = गानि के

साथ। ठाऊँ = स्थान। अपतु = प्रतिष्ठाहीन, नीच। मुकुत = मुवत। भाँग ते = भाग के समान निकृष्ट।

भावार्थ — तुलसीदासजी कहते हैं कि नाम की ही कृपा से शिवजी प्रविनाशी है व अमंगल वेश-भूषा धारण किये रहने पर भी वे मंगल ही रागी के हैं। शुक्रदेवजी मनक सनन्दन आदि, सिद्ध लोग, मुनि और योगी एण सब नाम के प्रसाद (प्रभाव) से ही ब्रह्मानन्द को भोगते हैं।

नारदजी ने नाम के प्रताप को जाना है सारे जगत को विष्णु, प्रिय है, विष्णुजी को शिवजी प्रिय हैं और आप दोनों को प्रिय है केवल नाम के अपने से ही भगवान ने ऐसी कृपा की जिससे प्रह्लादजी भक्ति गिरोमणी हो गये।

ध्रुवजी ने (अपनी विमाता के वचनो से दुखी हो कर) अ र्ची ने भगवान का नाम जपा और उसी के प्रताप से अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया इसी तरह हनुमान जी ने पावन नाम का स्मरण कर श्री राम जी को बग मे कर रखा है।

नीच अजामिल, गज और गरुडिका (वेदया) आदि भी इरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं कहा तक नाम की शरीफ (बडाई) कहूँ, स्वयं राम भी नाम के गुणो को नहीं गा सकते।

राम का नाम कलियुग मे कल्प वृक्ष के समान ममस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाला है कल्याण का घर है। कल्याण का एक नाधन है जिनके स्मरण करते य भाँग सा (निकृष्ट) तुलसी दाम भी तुलसी के समान पवित्र हों गये।

विशेष — अनुप्रास, लाटानुप्रास और रूपक अलंकार

टिप्पणियाँ — (i) ध्रुव — राजा उत्तानपाद का नडका, एक बाल अपस्वी जो विष्णु के वरदान से उत्तर दिशा मे अचल तारे के रूप में भेट के स्वर प्रतिष्ठित है।

(ii) अजामिल — एक महापापी जो मरते समय अपने नडके 'नारायण' का नाम लेने से ही सद्वृत्ति पा गया।

(iii) गज — इन्द्र द्युम्न नाम का राजा जो अगस्त्य के शाप मे हाथी होकर ग्रह-गस्त होने पर भगवान को स्मरण कर शाप मुक्त हो गया।

(iv) शणिका — एक वेदया जो अपने तोते से राम राम बुलाया करती थी जिससे भगवान ने उन पर अनुग्रह कर उत्तका उद्धार कर दिया ।

(५) प्रह्लाद :—प्रह्लाद राजा हिम्पदशिषु का लडका था वह विष्णु का परम भक्त था विष्णु भगवान ने नृसिंह रूप में अवतार लेकर हिम्पदशिषु का नाम किया और भक्त प्रह्लाद की रक्षा की ।

मूल—घहुंजुग तीनि काल तिहुं लोका । भए नाम जपि जीव वितोका ॥
 वेद पुरान सत मत एह । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
 ध्यानु प्रथम जुग मल बिधि दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूर्ण ॥
 कलि केवल मल मूल मलीना । पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
 नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
 राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता ॥
 नहि कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
 कालनेमि कलि कपट निधानू । नाम सुमनि समरय हनुमानू ॥

शब्दार्थ — मुख = यज्ञ । परितोषत = प्रसन्न होते हैं । मीना = मछली ।
 समन = नाश करना । अभिमत = मनोवाञ्छित फल । सुमति = बुद्धिमान ।

केवल कलियुग में ही नहीं चारों युगों, तीनों कालों और तीनों लोकों में नाम को जप कर शोकरहित हुए हैं । यही मत वेद पुराण और सतों का है, श्री राम में प्रेम होना सब पुण्यों का फल है ।

पहले अर्थात् मत्स्युग में ध्यान से दूसरे अर्थात् त्रेतायुग में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से भगवान प्रमन्न होते थे, परन्तु कलियुग में जो केवल पाप की जट और मलिन है, मनुष्य का मन पापी रूपी समुन्द्र में मछली बना हुआ है जो कभी पाप में मुक्त नहीं होता ।

ऐसे भयंकर कलिकाल में तो भगवान् का नाम ही कल्पवृक्ष है जो मन्य करके ही मन्मथ के सब जजालों को नाश कर देने वाला है । कलियुग में यह नामनाम मनोवाञ्छित फल देने वाला है, परलोक में परम हितकारी और दस लोक में माता-पिता के समान पालन और रक्षण करने वाला है ।

कलियुग में न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है, केवल राम-

नाम ही एक आधार है। कपट की खान कलिरूपी कालनेभि (राक्षस) को मारने के लिए केवल राम-नाम स्वी हनुमान ही चतुर और समर्थ हैं (कलि का प्रभाव केवल राम-नाम से ही नष्ट हो सकता है)।

विशेष — अनुप्रास और रूपक

मूल— राम नाम नरकेशरी, कनककशिपु कलिकाल ।

जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल ॥ २७ ॥

शब्दार्थ — नरकेशरी = तृसिंह । कनककशिपु = हिरण्यकशिपु ।
मुरसाल = देवताओं का शत्रु ।

भावार्थ — राम का नाम तृसिंह रूप है और कलियुग हिरण्यकशिपु है और नाम का जप करने वाले जन प्रह्लाद के समान है, यह राम नाम देवताओं के शत्रु कलि रूपी दैत्य को मार कर भक्त जन की रक्षा करेगा ।

विशेष — रूपक में पुष्ट उदाहरण अलंकार (जैसे तृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार कर प्रह्लाद की रक्षा की, वैसे ही नाम कलिरूपी शत्रु का नाश कर भक्त जन की रक्षा करता है) ।

मूल — भायें कुभायें अनख आलस हूँ नाम जपत भगल दिसि दसहूँ ॥

सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जाछु कृपा नहि कृपा अघाती ॥

राम सुस्वामि कुसेवकु भोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥

लोकाहुँ बेद सुसाहिब रीती । विनय सुनत पहिघानत प्रीती ॥

गनी गरीब ग्राम नर नागर । पबित मूढ़ मलीन उजागर ॥

शब्दार्थ — भायें = भाव, प्रेम । अनख = श्लेष । अघाती = तृप्त होती ।
पोसो = पालन करो । (गनी = अमीर ।

भावार्थ — जिन राम के नाम को प्रेम (भक्ति) से या बुरे भाव से श्लेष से या आलस्य से जपते ही दशो दिशाओं में मनुष्य का कल्याण होता है, वसी राम-नाम का स्मरण करके और श्री रघुनाथ जी को प्रणाम कर में उनके गुणों का वर्णन करता हूँ ।

वे भगवान मेरी विगड़ी सब तरह से सुधार लेने, क्योंकि उनकी

वृषा, वृषा करने में कभी मनुष्य नहीं होता। श्री राम ने उत्तम स्वामी और मेरे जैसा बुरा नेत्रक। (दोनों में बहुत अन्तर है) पर हे दयानिधान ! अपनी ओर देव कर मेरा पालन कीजिए ।

लोक और वेद में भी अच्छे स्वामी की वही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय युक्त ही प्रेम् को पहचान लेता है। धनी-निर्धन, ग्राम वासी-नगर निवासी, रक्षित मूल्य, मलिन और यशस्वी ।

मूल - मुक्ति कुम्भ निज मनि अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर नागी ॥
 मामु मुजान मुमोल नृपाला । ईम अत्त भव परम कृपाला ॥
 मुनि मनमानहि सबहि सुधानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
 यह प्राह्यन महिपाल मुभाऊ । जान मिरोमनि कोसअलराऊ ॥
 रोह्यन राम ननेह निमोते । धो जग मद मलिनमति मोते ॥

शब्दार्थ — मनु = दरान्न । भनिति = ज्ञान, वाणी । नति = दिनप
 प्राह्य - मन्त्र । निमोते = मन्त्रे, विग्रह ।

साहिव सीतानाय सो, सेवक तुलसीदास ॥ २८ ॥ (ख)

शब्दार्थ — उपल = पत्थर । जल जान = जलयान, जहाज । सचिव = मन्त्री । सुमति = बुद्धिमान । उपहास = निन्दा ।

भावार्थ — (लेकिन मुझे विदवास है कि) वे दयालु श्री राम मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि को अव्यय रखेंगे, जिन्होंने पत्थरों को जहाज और वन्दर-भालुओं को बुद्धिमान मन्त्री बना लिया ।

मुझे सब लोग श्रीराम जी का सेवक कहते हैं और मैं कहलाता भी हूँ । श्री सीतानायजी से स्वामी और तुलसीदास जैसा सेवक । कितना अन्तर है, पर हम उपहास को कृपालु श्री राम सहते हैं ।

मूल — अति बड़ि मोरि दिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहुं नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनै । सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनै ॥
सुनि अवलोकि मुचित चख चाही । भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
अहत नसाइ होइ हिये मीकी । रोहत राम जानि जन जी की ॥
रहति न प्रभु चित चक किए की । करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहि अघ वषेल व्याव जिमि वाली । फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतति विभोवण केरी । अपनैहुं सो न राम हिये हेरी ॥
तो भरतहि भेंटत सनमाने । राजसभां रघुवीर बखाने ॥

शब्दार्थ — खोरी = दोष । चख = चक्षु । नसाइ = बुरी । सय = सी । सुकठ = सुग्रीव । हेरि = देखे ।

भावार्थ — तुलसीदासजी कहते हैं कि यह मेरी बड़ी भारी घुंटा और दोष है कि मैं अपने को राम का सेवक कहता हूँ, किन्तु मेरे पाप ऐसे हैं कि जिन्हें सुन कर नरक भी नाक सिकोड़ लेता है (अर्थात् मुझे नरक में भी ठौर नहीं) । यह बात समझकर मैं स्वयं अपने ही इस कल्पित डर-से डर रहा हूँ, किन्तु दयालु राम ने तो स्वप्न में भी इस पर ध्यान नहीं दिया ।

यह सुन और देख कर जब प्रभु ने अपने विमल हृदय में विषय ग्रहणित से देखा तब उन्होंने मेरी भक्ति व बुद्धि की तारीफ की, कहते हैं वह चाहते बुरी हो, परन्तु हृदय में अच्छापन होना चाहिये क्योंकि राम तो अपने भक्तों के हृदय की भक्ति को देख कर रीझते हैं ।

प्रभु के चित्त में (उपने भक्तों से हुयी) चूक याद नहीं रहती पर भक्तों के सुहृदय (अच्छाई) को वे सैकड़ों बार याद करते हैं। जिस पाप के कारण श्रीराम ने वाली को व्याध के समान (छिपकर) मारा था, वही कुचाल (पाप) सुग्रीव ने भी चली।

यही करतूत विभीषण ने की, पर श्रीराम न स्वप्न में भी उसका मन में विचार नहीं किया। उलटे भरत जी से मिलते समय श्री रघुनाथजी ने उनका सम्मान किया और राजसभा में भी उनके गुणों का बखान किया।

विशेष —अनुप्रास अलंकार।

मूल — प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सोलनिधान ॥ २९ ॥ (क)
राम निकार्ई रावरी, है सब ही को नीक।
जौ यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥ २९ ॥ (ख)
एहि विधि निज गुन दोष कहि, सबहि बहुरी सिरु नाइ।
वरनउ रघुवर विसद जसु सुनि कलि कलुप नसाइ ॥ २९ ॥ (ग)

शब्दार्थ —निकार्ई = अच्छाई, भलाई। रावरी = आपकी। कलुप = पाप।

भाषार्थ —राम तो पेठ के नीचे और बन्दर डालियो पर, उन बन्दरों को भी राम ने (ऊँच-नीच का विचार छोड़) अपने समान बना लिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि राम के समान सुन्दर स्वभाव वाला स्वामी कहीं भी नहीं है।

हे राम ! आपकी अच्छाई सबका भला करने वाली है। यदि यह बात सत्य है तो तुलसीदास का भी अवश्यमेव भला होगा।

इस प्रकार अपने गुरु-दोषों को कह कर और सबको पुन सिर झुका कर मैं श्रीराम का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसको मुनकर कलयुग के पाप नष्ट हो जाते हैं।

विशेष —अनुप्रास अलंकार।

मूल - जागवलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई ॥

कहिहठे सोई सवाद बखानी । सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी ॥

धंभु कोन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥

सोइ सिव कागभुसु डिहि दोन्हा । राम भगत अधिकारी चीन्हा ॥

तेहि सन जागवलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥

ते श्रोता वक्ता समसीला । समदरसो जानहि हरिलीला ॥

जानहि तोनि काल निज ग्याना । करतल गत आमलक समगना ॥

ओरउ जे हरि भगत सुजाना । कहहि सुनिहि समुक्षाहि विधि नाना ॥

शब्दार्थ — जागवलिक = याज्ञवल्क्य ऋषि । उमहि = पार्वती को । चिन्हा = पहचान कर । समनीला = समानशील या वृद्धि वाले । आमलक = आँवला ।

भावार्थ -- याज्ञवल्क्यजी ने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भारद्वाजजी को सुनायी थी, उनी मवाद को मैं विस्तार-पूर्वक कहूँगा, नभी सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उमे चुने ।

यह मुन्दर चरित्र महादेवजी ने बनाया और फिर कृपा करके पार्वतीजी को सुनाया । वही चरित्र शिवजी ने काकभुशुण्डिजी को रामभक्त और अधिकारी पहचान कर दिया ।

उन (काकभुशुण्डी) से फिर याज्ञवल्क्य मुनि ने पाया और फिर उन्होंने भरद्वाजजी का गाकर सुनाया । वे दोनों श्रोता और वक्ता समान षीलवाले, समदर्शी तथा भगवान् की लीलाओं के ज्ञाता हैं ।

वे अपने ज्ञान से तीनों कालों को हथेली पर रखे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं । और भी जो सुजान हरिभक्त हैं वे इस चरित्र को भीति भीति से कहते, सुनते और समझते हैं ।

विशेष—‘सुनहुँ सकल सज्जन सुखमानी’ में वृत्त्यानुप्रास अलंकार ।

मूला—मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सुकरखेत ।

समुक्षी नहि तसि बालपन, तव अति रहेऊँ अचेत ॥३०॥ (क)

श्रोता वक्ता ग्याननिधि, कथा राम के गूढ ।

किमि समुक्षो मैं जीव जड, कलि मल प्रसित विमूढ ॥३०॥ (ख)

शब्दार्थ—गुर = गुरु । सन = से । गूढ = रहस्य से भरी । विमूढ = महामूर्ख ।

भाषार्थ—फिर वही क्या मने अपने गुरु से झूकर खेत में नुती, परन्तु बालकपन-के कारण मैं उसे अच्छी इतरह न समझ सका। फिर, समझ में आती भी तो कैसे? क्योंकि राम की कथा गूढ़ है, वह तभी सभी समझ में आ सकती है जब वन्ता-और-श्रोता दोनों ही ज्ञान के समुन्द्र हो अर्थात् पूर्ण ज्ञानी हो। मैं भला कलकृष्ण के पापों से भना हुआ, महानूठा, जड़ जीव मला-उत्सकी कैसे समझ सकता हूँ।

मूल—तवपि कही गुर वाराह वारा । समझि परि कछु भलि अनुसारा ।
भाषाबद्ध करवि मैं सोई । मोर मन प्रबोध जेहि होई ॥
जस कछु बुद्धि विवेक बल मेरे । तस कहिहउ हिये हरि के प्रेरे ॥
निज सदेह मोह भ्रम हरनी । करउ कया भव सरिता तरनी ॥
बुध विश्राम सकल जन रजनि । राम कया कलि कलुष विनजनि ॥
राम कया कलि पन्तग भरनी । पुलि विवेक पावक कहूँ भरनी ॥
शब्दाथ—तरनी = नौका । रजनि = प्रसन्न करने वाली । पन्तग = प्रीति ।

भरनी = मोरनी, छछु दर, एक पक्षी, नाप उतारने का एक मन्त्र । भरनी = एक प्रकार की लकड़ी । बुद्ध = बुद्धिमान ।

भाषार्थ—तो भी गुरुजी ने जब बार-बार मुझे क्या कही, तब बुद्धि के अनुसार मेरी समझ में कुछ-कुछ आई। मैं अब उसी कथा की भाषा में रचना करूँगा, जिनमें मेरे मन में ज्ञान का उदय हो (अथवा जिनसे मुझे आत्म-मनोप हो)

जितनी मेरी बुद्धि है और जितना मुझमें विवेक-बल है, मैं हृदय में हरि की प्रेरणा में उसी के अनुसार कहूँगा। मैं जिस कथा की रचना करता हूँ, वह मेरे सदेह, अज्ञान और भ्रम को हरने वाली है तथा जो सगर रूपी नदी को पार करने के लिये नौका है।

राम-कथा बुद्धिमानों को विश्राम देने वाली और सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली है, वह कलकृष्ण के पापों को नाश करने वाली है। राम-कथा कलकृष्ण तथा नाप के लिए भरनी (मोरनी या एक पक्षी) है और विवेक रूपी अग्नि का प्रादुर्भाव करने के लिए वह अशनी है।

विशेष—(i) अनुप्रास और रूपक अलंकार।

(ii) भरनी एक प्रकार का पक्षी है। वह अपने पत्नी को

सिकोड़ कर गोलमोल हो साप के सामने सेट जाता है। साप जब उसे निगल जाता है, तब वह पेट में अपने पख फँला कर उसे खीर डालता है, जिससे साँप मर जाता है।

(iii) अरणी एक प्रकार की लकड़ी या काठ का एक यंत्र जिससे प्राचीन काल में यज्ञ के लिए अग्नि उत्पन्न की जाती थी।

मूल—रामकथा कलि कामद गई। सुचन सजीवनि मूरि सुहाई ॥

सोइ बसुघातल सुधा तरगिनि । भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनी ॥
 असुर सैन सम नरक निकदिनी । साधु विबुधु कुल हित गिरिनदिनी ॥
 सत समाज पयोधि रमा सी । विस्व भार भर अचल छमा सी ॥
 जम गन मुँह मसि जग जमुना सी । जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ॥
 रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी । तुलसीदास हित हिय हलसी सी ॥
 सिव प्रिय भेकल संल सुता सी । सकल सिद्धि सुख सपति रासी ॥
 सबगुन सुरगन अंब अदिति सी । रघुवर भगति प्रेम परमिति सी ॥

दोहा—राम-कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित धार ॥

तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुवीर बिहार ॥३१॥

शब्दार्थ—कामद गई = कामधेनु गौ। मूरि = जड़ी। सुहाई = सुन्दर। तरगिनि = नदी। भेक = भेदक। भुअंगिनि = सर्पिणी। विबुधु = देवता। गिरिनदिनि = पार्वती। पयोधि = क्षीर-सागर। रमा = लक्ष्मी। छमा = पृथ्वी। पावनि = पवित्र। हलसी = तुलसीदासजी की माता। भेकल-सले-सुना = नर्मदा नदी। अदिति = देवताओं की माता। परमिति = सीमा। सुभग = सुन्दर।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि राम-कथा कलिपुत्र में कामधेनु गौ के समान सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है और सज्जनों के लिए वह सुन्दर सजीवनी जड़ी है। पृथ्वी पर यही अमृत की नदी है, यह सब प्रकार के भय का नाश करने वाली और भ्रम रूपी भेदक को भक्षण करने के लिए सर्पिणी है।

यह असुरों की सेना के समान नरक का नाश करनेवाली, साधु रूपी। देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती है, सत-समाज रूपी क्षीर-सागर के लिए यह लक्ष्मी है और सम्पूर्ण विश्व का भार उठाने में यह अचल पृथ्वी के समान है।

यमदूतों के समूह के मुख पर कालिव लगाने के लिए (यमदूतों का मुख काला करने के लिए) यह सत्कार मे यमुना के समान है और जग-जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए यह काशी के समान है । यह श्रीराम जी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदान को हुलसी को तरह उसका हृदय से हित करने वालो है ।

यह राम-कथा शिवजी को नर्मदा के समान प्रिय है, यह सब सिद्धियों को देने वाली तथा सम्पूर्ण-सम्पत्ति की राशि है । सद्गुण रूपी देवताओं को उत्पन्न करने वाली अद्विती है, यह राम की भक्ति और प्रेम की परम सीमा-सी है ।

तुलसीदासजी कहते हैं कि राम-कथा मदाकिनी नदी है, सुन्दर, निर्मल चित्त, चित्रकूट है और सुन्दर स्नेह वन है जहा सीता और राम विहार करते हैं ।

विशेष—उपमा और रूपक अलंकार । राम-कथा का अनेक रूपों में उल्लेख करने के कारण उल्लेख अलंकार । सुन्दर पद-मैत्री ।

मूल--राम चरित चिन्तामनि चारु । सत सुमति सिय सुभग सिंगारु ॥
जग भंगल गुनग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥
सदगुर ग्यान विराग जोग के । विबुध बंद भव भीम रोग के ॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के । धीब सकल व्रत धरम नेम के ॥
सुमन थाप संताप सोक के । प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति विचार के । कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥
काम कोह कलिमल करिगन के । केहरि सावक जन मन वन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद धन दारिद दवारि के ॥

शब्दार्थ—जग-भंगल = संसार का कल्याण करने वाले । गुण-ग्राम = गुण-समूह । दानि = देने वाले । विबुध बंद = देवताओं के बंध (अश्वनी कुमार) । कुंभज = अगस्त्य मुनि । कोह = शोध । करिगन = हाथियों का समूह । सावक = शायक, बच्चे । पुरारि = शिवजी । कामद = कामना पूर्ण करने वाले । दवारि = दावानल, वन में अपने-आप लग जाने वाली आग ।

भावार्थ—यह रामचरित्र सुन्दर चिन्तामणि रत्न है और सती की सुन्दर मति रूपी कामिनी का सुन्दर शृंगार है । श्रीराम के गुणों के समूह जगत् का

कल्याण करने वाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधाम के देने वाले हैं। ये ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सदगुरु हैं और ससार रूपी भयकर रोग नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य अश्वनीकुमार के समान हैं, ये सीता-राम के प्रेम के (मक्ति के) उत्पन्न करने वाले मात-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमों के बीज हैं।

ये पाप, सन्ताप और शोक का नाश करने वाले तथा इस लोक और परलोक के प्रिय पालक हैं। ये विचार रूपी राजा के धूरवीर मंत्री हैं तथा लोभ रूपी ममुद्र को सोखने के लिए ये अगस्त्य मुनि हैं।

भक्तों के मन रूपी घन में विचरने वाले काम, श्लोघ आदि कलियुग के पाप रूपी हाथियों को मारने के लिए ये (राम के गुरु) सिंह के बच्चे हैं। ये महादेवजी के परम पूज्य और प्रियतम अतिथि हैं और दरिद्रता रूपी दावानल को बुझाने के लिए ये कामना पूर्ण करने वाले मेघ हैं।

विशेष--अनुप्रास, लाटानुप्रास (परलोक लोक में) रूपक और उल्लेख।
 मन्त्र—मन्त्र महामनि विषय व्याल के। सेतक कठिन कुअंक भाल के ॥
 हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलहर से ॥
 अभिमत दानि देवतर वर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ॥
 सुकवि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से ॥
 सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से ॥
 सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरग माल से ॥

शब्दार्थ--व्याल = सर्प। कुअक = बुरी रेखा। दिनकर कर = सूर्य की किरण। सालि = धान। अभिमत = मनोवाञ्छित। देवतर = कल्पवृक्ष। उडगन = तारे। भूरि = महान्। निरुपधि = छल रहित। मानस = मान-सरोवर। मराल = हंस। तरग = लहर। वर = श्रेष्ठ।

भावार्थ--ये (राम के गुरु) विषय रूपी सर्प का विष उतारने के लिए मन्त्र और महामणि हैं, ये भाग्य-के बुरे लेखों को मिटा देने वाले हैं, ये अज्ञान रूपी अधकार को हरने के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं और सेवक रूपी धान के पालन करने के लिए ये मेघ के समान हैं। मनोवाञ्छित फल देने के लिए ये श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने पर ये भगवान् विष्णु और महादेव की तरह सुलभ और सुखद हैं। सुकवि रूपी शरद ऋतु के मन

रूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए ये तारागण के समान हैं और राम-भक्तों के लिए तो ये जीवन-धन ही हैं। ये महान् भोगों के समान सम्पूर्ण पुण्यों के फल हैं ये ससार का निष्कपट (यथार्थ) हित करने में साधु-संतों के समान हैं, सेवकों के मन तपी मानसरोवर के लिए ये हृस के समान हैं और पवित्र करने के लिए ये गंगा की तरंगों की माला के तुल्य हैं।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, रूपक और उल्लेख अलंकार। 'दिनकर कर' में यमक।

मूल—कूपय कुतरक कुचाक्षि कलि, कपट दंभ पापंड।

दहन राम गुन ग्राम निर्मि इंधन अनल प्रचंड ॥३२॥ (क)

रामचरित राकेस कर सरिस सुख सब काहु।

सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषि बड़ लाहु ॥३२॥ (ख)

शब्दार्थ—अनल = अग्नि। राकेस कर = चन्द्रमा की किरणें। सरिस = समान। लाहु = लाभ। राकेस = पूर्णिमा का चन्द्रमा।

भावार्थ—श्रीराम के गुणों के समूह कलियुग के नमस्त कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, अस्मिमान एवम् आडम्बर को जला डालने के लिए वैसे ही हैं जैसे ई धन के लिए प्रचण्ड अग्नि (अर्थात् जैसे प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला में सब कुछ जलकर राख हो जाता है उनी प्रकार श्रीरामचरित्र के कहने-सुनने से हृदय की समस्त वुराइया नष्ट हो जाती हैं।

पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान रामचरित्र मनों को सुख देने वाला है, परन्तु सज्जनत्पी कुमुदिनी और चकोर के चित्त के लिए तो विशेष हितकारी और महान् लाभदायक है।

विशेष—प्रथम दोहे में वृत्त्यनुप्रास और उदाहरण, तथा द्वितीय दोहे में छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल—कोन्हि प्रश्न जेहि भाति भवानी। जेहि बिधि सकर कहा बखानी ॥

सो सब हेतु कहव मं गाई। कया-प्रबन्ध विचित्र बनाई ॥

जेहि यह कया सुनी नहि होई। जनि आचरजू करं सुनि सोई ॥

कया अलौकिक सुनि जे ग्यानी। नहि अचरजू करहि अस जानी ॥

राम कया कं मिति जग नाहीं। अति प्रतीति तिन्ह के मन साहीं ॥

नाना भाँति राम अवतारा । रामायण मत कोटि अपारा ॥
 कल्पभेद हरिचरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
 करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सावर रति मानी ॥

शब्दार्थ—मिति = सीमा, पार प्रतीति = विश्वास । कल्प भेद = ब्रह्मा
 का एक दिन कल्प कहलाता है । रति = प्रेम ।

भावार्थ—जिस प्रकार पार्वती ने शिवजी से प्रश्न किया और जिस प्रकार शिवजी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया, मैं उन सब बातों का विचित्र कथा की रचना करके वर्णन करूँगा । जिनने यह कथा पढ़े कभी न सुनी हो, उसे इस कथा को सुन कर आश्चर्य न करना चाहिए । जो ज्ञानी इस अलौकिक कथा को सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नहीं करते कि ससार में रामकथा की कोई सीमा नहीं है, उनके मन में ऐसा विश्वास है । राम का अवतार अनेक प्रकार से (अनेक रूपों में) हुआ है और रामायण भी नौ करोड़ ही नहीं, अगणित हैं । कल्प के भेद से श्री हरि के सुन्दर चरित्र को मुनि लोगो ने अनेक प्रकार से गाया है । इस प्रकार मन में निश्चय कर श्रीराम के चरित्र में किसी प्रकार का सशय नहीं करना चाहिए और राम-कथा को आदर पूर्वक प्रेम से सुनना चाहिए ।

मूल—राम अनन्त अनन्त गुण, अमित कथा विस्तार ।

सुनि आचरजु न मानिहहि, जिन्ह कैं विमल विचार ॥३३॥

विशेष—भावार्थ सरल है । 'अनन्त अनन्त' में लाटानुप्राण अलंकार ।

मूल—एहि विधि सब संसय करि दूरी । सिर धरि गुर पद पंकज घूरी ॥

पुनि सबही घिनवउं कर जोरी । फरत कथा जेहि लाग न खोरी ॥

सावर सिवहि नाइ अब माथा । धरनउं विसव राम गुन गाया ॥

संबत सोरह सैं इकतीसा । करउंकथा हरिपद धरि सोसा ॥

नौभी भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहि । तीरथ सकल तथा चरि आवहि ॥

असुर नाग खग नर मुनि देवा । आइ करहि रघुनाथरु सेवा ॥

जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना । करहिं राम कल कीरति गाना ॥

दोहा—मज्जाहिं सज्जन वृंद बहु, पावन सरजू नौर ।

जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरोर ॥३४॥

शब्दार्थ--भौमवार = मंगलवार । मधुमाता = चंद्रभान । श्रुति = वेद । मज्जहि = स्नान करते हैं ।

भावार्थ--तुलसीदास जी कहते हैं कि इस प्रकार सब सदेहो को दूर करके और गुरु महाराज की चरण-रज को सिर पर धारण करके तथा पुनः एक बार हाथ जोड़ कर मैं सबकी विनती करता हूँ, जिससे इन राम कथा के रचने में कोई दोष न आवे ।

अब मैं आदर-पूर्वक गिवजी को सिर झुका कर श्रीराम के गुणों की निर्मल कथा कहता हूँ । श्री हरि के चरणों पर सिर रख कर मैं इस कथा का आरम्भ सवत् १६३१ में करता हूँ ।

जिस दिन ज्योध्या में यह चरित्र प्रकाशित हुआ, उस दिन चंद्र मास की नवमी तिथि थी और मंगलवार था । वेद कहते हैं कि जिस दिन श्रीराम का जन्म होता है, उन दिन सारे तीर्थ बहा जा जाते हैं ।

अनुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देव स्व (ज्योध्या में) आकर राम की सेवा करते हैं । सज्जन राम का जन्म-महोत्सव मनाते हैं और उनकी सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं ।

उस दिन सज्जन-वृन्द सरयू नदी के पवित्र जल में स्नान करते हैं और सुन्दर श्याम-शरीर भगवान् राम को हृदय में धारण कर, उनके ध्यान कर उनके नाम का जप करते हैं ।

विशेष--अनुप्रास रूपक अलंकार ।

मूल--दरस परस मज्जन अरु पाना । हरइ पाप कहूँ वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अनि । कहि न सकइ सारवा विमल मति ॥
राम धामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त विदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा । अवघ तजै तनु नहि संसारा ॥
सब विधि पुरी मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ॥
विमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहि काम मद दंभा ॥
रामचरित मानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ॥
मन करि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जो एहि सर परई ॥

शब्दार्थ--पाना = जल पीना । रामधामदा = राम के परम धाम को

देने वाली। खानि = प्रकार (अडज, उद्भिज आदि)। करि = हाथी। अनल वन,
= दावानल। एहि = इस। सर सरोवर। मानस = सरोवर।

भावार्थ —सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापो को
हरता है — यह वेद-पुराण कहते हैं। यह नदी बही ही पवित्र है और इसकी
अहिमा अनन्त है, जिसे निर्मल बुद्धिवाली सरस्वतीजी भी नहीं कह सकती।

(सरयू के तीर पर) श्रीराम के परमघाम (बैकुंठ) को देने वाली
सुन्दर अयोध्यापुरी है, जो सब लोको में प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है।
ससार में चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, उनमें से जो कोई भी
अयोध्याजी में शरीर छोड़ते हैं, वे फिर ससार में नहीं आते अर्थात् मुक्त हो
जाते हैं।

सब प्रकार से इस अयोध्यापुरी को मनोहर, सब सिद्धियों की देने
वाली और मंगलों की खान समझकर मैंने वहाँ इस पवित्र कथा का आरम्भ
किया, जिसके सुनने से काम, अहंकार और अभिमान नष्ट हो जाते हैं।

इसका नाम रामचरित मानस है। इसके सुनने से कानों को शान्ति
मिलती है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल में जल रहा है, वह यदि इस
रामचरितरूपी सरोवर में आ पड़े तो मुखी हो जाय (अर्थात् जैसे वन में हाथी
दावानल की तपन से व्याकुल होकर सरोवर में जा पड़ता है और मुखी होता
है उसी प्रकार शरीर में मन विषयो की दावाग्नि से व्याकुल हो रहा है, वह
तभी सुखी होगा जब रामचरित्र सुनकर इसमें तन्मय हो जाये)।

विशेष :—‘मानस’ शब्द यहाँ श्लिष्ट है, इसके दो अर्थ हैं — (1) राम-
चरित मानस (काव्य) और (2) मान सरोवर (झील) यहाँ कवि ने ‘मानस’
शब्द का प्रयोग दोनों ही अर्थों में किया है। ‘मन करि सर परई’ में
रूपक अलंकार।

मूल — रामचरित मानस मुनि भावन। विरचेउ संभु सुहावन पावन ॥

त्रिविष बोष बुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥

रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥

तातें रामचरित मानस बर। धरेउ नाम द्विये हेरि हरषि हर ॥

कहउ कथा सोइ सुखद सुहाई। सावर सुनहु सुजन मन लाई ॥

दोहा—जस मानस जेहि विधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु ।

अब सोइ कहउ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

शब्दार्थ—मुनि-भावन = मुनियो को अच्छा लगने वाला । विरचेउ = रचा । दावन = नाश करने वाला । कुलि = मव । मानस = मन । वर = सुन्दर । हेरि = देख कर । हर = महेग । जस = जिस प्रकार । वृषकेतु = महेग, महादेव ।

भावार्थ — इस सुहावने और पवित्र रामचरित की शिवजी ने रचना की है । यह मुनियो को अच्छा लगने वाला, तीनों प्रकार के दोष दुःख और दरिद्रता का दमन करने वाला तथा कलियुग की कुचाली और सब पापों का नाश करने वाला है ।

महादेवजी ने इने बनाकर अपने ही मानस (मन) में रख लिया था और सुअवसर पाकर पार्वतीजी से कहा । इसी से शिवजी ने इसको अपने हृदय में देखकर और प्रसन्न होकर सुन्दर नाम 'रामचरित मानस' रखा । मैं उसी सुखदायी और सुहावनी कथा को कहता हूँ । हे सज्जनो ! आप मन लगाकर आदरपूर्वक उसे सुनिये ।

यह रामचरित मानस जैसा है एव जिस प्रकार यह बना है और जिस कारण इसका सत्सार में प्रचार हुआ है, अब मैं उसी प्रसंग को गिब-पार्वती का स्मरण करके कहता हूँ ।

विशेष — (1) त्रिदोष — वात, पित्त और कफ से उत्पन्न रोग या दोष ।

(II) त्रिविध दुःख — दैहिक, दैविक और भौतिक—त्रिस्ताप ।

(III) वृत्यनुप्रास अलंकार—'दोष दुःख दारिद्र्य दावन', 'कलि कुचालि कुलि क्लृप' और 'हियँ हेरि हमयि हर' में ।

मूल — सनु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी ॥

करइ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित मुनि लेह सुधारी ॥

सुमति नूनि थल हृदय अगाधू । वेद पुरान उदधि धन साधू ॥

बरपाहि राम सुजस बर वारी । मधुर मनोहर मंगलकारी ॥
 लीला सगुन जो कर्हाहि बखानी । सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ॥
 प्रेम भगति जो बरनि न जाई । सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥
 सो जल सुकृत सालि हित होई । राम भगत जन जीवन सोई ॥
 मेघा महि गत सो जल पावन । सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
 भरेउ सुमानस सुथल यिराना । सुखद सीत रचि चारु चिराना ॥

शब्दार्थ—डुलसी = विकसित हुई । अगाधू = गहराई । वारी = जल ।
 सुकृति = सत्कर्म । सालि - धान । मेघामहि = बुद्धि रूपी पृथ्वी । सकिलि =
 सिमिट कर । श्रवन मग = कान रूपी मार्ग । सुमानस = अच्छा हृदय । यिराना
 = स्थिर हो गया । चिराना = पुराना ।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि शिवजी की कृपा से उनके हृदय
 मे सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास रामचरित मानस का
 कवि हुआ । अपनी बुद्धि के अनुसार तो मैंने इसे मनोहर ही बनाया है, किन्तु
 कही इसमे, यदि भूल चूक रह गई हो तो सज्जन सुन्दर चित्त से इसे सुनकर
 सुधार लें ।

सुन्दर बुद्धि मूर्ति है, हृदय उसमे गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं
 और साधु-सत मेघ हैं । ये साधु-सत रूपी बादल श्रीराम के सुयशरूपी सुन्दर,
 मधुर, मनोहर और, मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं । सगुण-लीला का
 विस्तार से वर्णन करना ही उस जल की निर्मलता है जो मल का नाश करने
 वाली है और प्रेमा भक्ति ही, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, इस जल
 की मधुरता और सुसीतलता है ।

वह (राम-सुयशरूपी जल) सत्कर्म रूपी धान के लिये हितकारी है और
 श्रीराम के भक्तों का तो जीवन ही है । वह पवित्र जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर
 गिरा और सिमटकर सुहावने श्रवण मार्ग से चला और हृदयरूपी श्रेष्ठ स्थान
 मे भर कर वही स्थिर हो गया । वही पुगना होकर सुन्दर, सुखद, सीतल और
 रचिकर हुआ ।

विशेष - साग रूपक अलंकार । वह भक्ति जो प्रेम-भाव से की जाती
 है, प्रेम भक्ति कहलाती है, इसे वैष्णव-भक्ति कहते हैं ।

मूल—सुखि सुन्दर सबाव वर विरचे बुद्धि विचारि ।
तेइ ऐहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥३६॥

शब्दार्थ—सुभग = सुन्दर । ऐहि = इस ।

भावार्थ . - बुद्धि के विचार से जो अति सुन्दर और उत्तम चार संवाद (शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास तथा सन्तो) के रचे गये हैं, वही इन पवित्र और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं ।

विशेष - (i) अनुप्रास और रूपक अलंकार ।

(ii) रामचरित मानस में चार मवाद हैं—(i) काकभुशुण्डि-मूढ,
(ii) शिव-पार्वती, (iii) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और (iv) तुलसीदास और सत ।

मूल—सप्त प्रबंध सुभग सोपाना । ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा । वरनव सोइ वर बारि अगाधा ॥
राम सोय जस सलिल सुधा सम । जपमा वीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चार वीपाई । जुगुति मजू मनि सोप सुहाई ॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरग कमल कुल सोहा ॥
अरय अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुवासा ॥
सुकुन पुज मजुल अति माला । ग्यान विराग विचार मराला ॥
धनि अक्षरेव कथित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहुभांती ॥

शब्दार्थ — प्रबन्ध = काव्य । सोपान = सीढ़ी । माना = प्रसन्न हो जाना । अगुन = गुणातीत । जस = यश । वीचि = लहर । पुरइनि = कमलिनी । सघन = सूत्र फँसी हुई । जुगुति = युक्तिया । कुल = समूह । पराग = पुष्प-रज । मकरन्द = पुष्प-रस । सुवासा = भुगन्ध । पुज = समूह । मजुल = सुन्दर । अलि-माला = मोरों की पंक्ति । मराला = हंस । अक्षरेव = उक्ति की वक्रता व्यंग्य ।

भावार्थ — सात काण्ड ही इस मानस सरोवर की सुन्दर सीढियाँ हैं, जिनको जान के नेत्रों में देखते ही मन हरा-भरा हो जाता है । श्रीरामजी की निर्गुरा (गुणातीत) और निर्बाध (असीम) महिमा का जो वर्णन किया जायगा, वहाँ इस सुन्दर जल की अयाह गहराई है ।

श्रीसोताराम का यश ही अमृत के समान जल है और (इसमें दी गयी)

उपमाये ही तरंगो का मनोहर विलास है। सुन्दर चौपाइयाँ ही धनी फैली हुयी कमल की वेलें हैं और कविता की युक्तियाँ सुन्दर मोती उत्पन्न करने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं।

सत्कर्मों के समूह सुन्दर भौरो की पक्तियाँ हैं, ज्ञान, वैराग्य और विचार हस हैं। कविता की ध्वनि, बक्रोक्ति, गुण और जाति ही भाँति-भाँति की रग-विरगी मनोहर मछलियाँ हैं।

सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे ही बहुत से रगो के कमलो का समूह हैं। अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव और उत्तम भाषा ही (क्रमशः) पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) और सुगन्ध हैं।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल—अरथ घरम कामादिक चारी। कहव ज्ञान विद्यान विचारो ॥
नव रस जप तप योग विरागा। ते सब जलचर चार तडागा ॥
सुकुती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जलबिहग समाना ॥
सतमभो चहुँ दिति अवैराई। श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई ॥
भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया दम लता विताना ॥
सम जम नियम फूल फल श्याना। हरि पद रति रस वेद बखाना ॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन विहगा ॥

दोहा—पुलक वाटिका बाग वन सुख सुविहग विहास।

माली सुमन सनेह जल सौचत लोचन चार। ३७॥

शब्दार्थ—चारी = चार। तडागा = तालाब, सरोवर। जलविहग = जल-पक्षी। अवैराई = अमराई। (आम की बगीचियाँ)। दम = इन्द्रिय-निग्रह। विताना = मडप। सम = शम (मनोनिग्रह)। जम = यम (सयम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह)। नियम = शौच, सतोप, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान)। विहगा = पक्षी। पुलक = रोमाच। सुमन = सुन्दर मन। लोचन = नेत्र। चार = सुन्दर।

भावार्थ—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारो ज्ञान-विज्ञान का विचार पूर्वक कथन काव्य के नौ रस जप योग और वैराग्य—ये सब इस सरोवर के सुन्दर जल चर हैं।

श्रीराम के नाम और गुणों का गान करने वाले पुण्यात्मा सन्त विचित्र

जलपक्षियों के समान है। सन्तों की समा ही चारों ओर आमों की बगीचियाँ हैं और श्रद्धा वसन्त ऋतु के समान कही गई है।

अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया तथा दम लताओं के मण्डप है। श्रम, यज्ञ, नियम ही उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और भगवान के चरणों में प्रेम ही उसका (ज्ञान रूपी फल का) सुन्दर रस है ऐसा वेदों ने कहा है। इसमें और भी जो प्रसंगों की ब्याँ हैं वे ही तोते, कोकिल और रग-विरगें पक्षी हैं।

इस कथा के सुनने से जो रोमाञ्च होता है वही वाटिका, बाग और वन है जो सुख होता है वह सुन्दर पक्षियों का विहार है। निर्मल मन ही गुली है जो प्रेम रूप जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा उनको सींचता है।

विशेष—अलंकार अनुप्रास और रूपक।

मूल—जे गाबहि यह चरित सभारे । तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥
 सदा सुनिह सादर नर नारी । तेइ सुरवर मानस अधिकारी ॥
 अति खल जे बिषई बग कागा । एहिसर निकट न जाहि अभागा ॥
 सबक भेक सेवार समाना । इहा न विषय कथा रस नाना ॥
 तेहि कारन आवत हिये हारे । कामी काक बलाक विचारे ॥
 आवत एहिसर अति कठिनाई । राम कृपा बिनु आइ न जाई ॥
 कठिन कुसग कुपंथ कराला । तिन्ह के वचन बाध हरि ब्याला ॥
 गूह कारज नाना जंजाला । ते अति दुर्गम सैल बिमाला ॥
 वन बहु विषम मोह मच माना । नदी कुतक भयंकर नाना ॥

शब्दार्थ—सभारे—सावधानी से। तेइ—वे ही। सुरवर—देवताओं में उत्तम। बग—वगुले। सबक—घोषे। भेक—मेढक। बलाक—वगुले। हरि—सिंह। ब्याला—साँप।

भाषार्थ—जो इस चरित्र (रामचरित मानस) को सावधानी से गाते हैं, वे ही इस सरोवर के चतुर रखवाले हैं, और जो स्त्री-पुरुष सदा आदर के साथ इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर सरोवर के अधिकारी उत्तम देवता हैं। जो अत्यन्त दुष्ट और विषयी जीव हैं, वे अभागे वगुले और कौए हैं जो इसके समीप नहीं जाते। (कारण यह है कि) इस मानस-सरोवर में घोषे, मेढक और सेवार के समान विष-रस की नाना कथाएँ नहीं हैं। इसलिए कामीजन रूपी

बेचारे कीए और बगुले अपने खाद्य पदार्थ के अभाव के कारण यहा आते हुए हृदय में हार मानते हैं अर्थात् यहा आते हिचकते हैं । इस सरोवर तक आने में कठिनाइया भी बहुत हैं, बिना राम की कृपा के कोई यहाँ आ भी नहीं सकता । इस सरोवर तक पहुँचने में घोर कुसग ही भयकर मार्ग है और कुसगियो के वचन ही बाध, सिंह और साप हैं (जिनका मार्ग में सदा डर बना रहता है) । घर-गृहस्थी के काम-धन्धे और भाति-भाति के जजाल ही अत्यन्त दुर्गम विशाल पर्वत हैं जो मार्ग में विघ्न उपस्थित करते हैं । मोह, मद और मान ही बहुत बड़े-बड़े वीहड बन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही मार्ग को रोकने वाली भयानक नदिया हैं ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार । (मानस-सरोवर तक पहुँचने के मार्ग में क्या-क्या कठिनाइया आती हैं, इसका क्या ही सुन्दर रूपक बाधा गया है ।)

मूल—जे श्रद्धा सबल रहित, नहिं सतन्ह कर साथ ।

तिन्ह कहें मानस अगम अति, जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥

शब्दार्थ — संवल = मार्गव्यय, राह खर्च ।

भावार्थ — जिन पथिकों के पास रास्ते के लिए श्रद्धा रूपी व्यय नहीं है और न सतो का साथ ही है और जिनको रघुनाथजी प्रिय नहीं है, उनके लिए यह मानस अत्यन्त ही अगम है । तात्पर्य यह है कि बिना श्रद्धा, सत्संग और राम-कृपा के कोई इसे नहीं पा सकता ।

विशेष— श्रद्धा सबल' में रूपक अलंकार ।

मूल—जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहिं नहिं जुडाई होई ॥
जडता जाड विषम उर लागा । गएहुं न मज्जन पाव अभागा ॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना । फिरि आवइ समेत अभिमाना ॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा । सर निंदा करि ताहि बुझावा ॥
सकउ विघ्न व्यापहिं नहिं तेही । राम सुकृपा विलोकहिं जेही ।
सोइ साबर सर मज्जनु करई । महा घोर त्रयताप न जरई ।

शब्दार्थ — जुडाई होई = जुड़ी (शीत-ज्वर) आ जाती है । जडता जाड = मूर्खता रूपी जाडा । बुझावा = समझाता है ।

भावार्थ - यदि कोई व्यक्ति कष्ट उठाकर उन नरोवर तक पहुँच भी जाता है, तो उसे वहाँ पहुँचते ही नौद रूपी शीत-ज्वर आ जाता है। उसे हृदय में सूखता या अज्ञान रूपी बड़ा जाटा लगने लगता है, जिन्से वह अभागा वहाँ जाकर भी उनमें स्नान नहीं कर पाता। उससे न तो सरोवर में स्नान ही किया जाता है और न उमका जल ही पिया जाता है और अभिमान में भर वह वहाँ से लौट आता है। फिर यदि कोई उससे पूछने आता है (कि वहाँ वहाँ के क्या हाल-वाल है) तो वह अपने दुर्भाग्य की बात न कहकर सरोवर की निन्दा करके उसे ममज्ञाता है। किन्तु ये सारे विघ्न उस व्यक्ति को, जिने रघुनाथजी कृपा की दृष्टि से देखते हैं, नहीं मगाते। वही आदर-पूर्वक इन नरोवर में स्नान करता है और वह भयकर त्रिताप से नहीं जलता।

विशेष—त्रयताप (दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट)। 'नौद-जूडाई' और 'जड़ता-जाड' में रूपक, 'मोई सादर सर' में वृत्यनुप्रास अल्कार।

मूल - ते नर यह सर तज्जाँह न काऊ । जिन्ह के राम चरन भल भाऊ ॥
 जो नहाइ वह एहि सर भाई । तो सतसंग करउ मन लाई ॥
 अस मानस मानस चख चाही । भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही ॥
 भयड हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥
 चली सुभग कविता सरिता तो । राम विमल जस जल भरिता तो ॥
 सरजू नाम सुमंगल मूला । लोक वेद मत मंजुल कूला ॥
 नवी पुनीत सुमानस नंदिनी । कलिमल तून तर मूल निकदिनी ॥
 दोहा - श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल ।

संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल ॥३९॥

शब्दार्थ—मल = सुन्दर। भाऊ = भाव, प्रेम। मानस चत्र = हृदय के नेत्र। चाही = देखकर। अवगाही = गोता लगा कर। प्रमोद = आनन्द। भरिता = भरी हुई। कूला = किनारे। सुमानस-नदिनी = मानस-सरोवर की कन्या। निकन्दिनी = नाश करने वाली, सखाड फँकने वाली।

भावार्थ—जिनकी श्रीराम के चरणों में सुन्दर प्रीति है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोड़ते। हे भाई! जो इस सरोवर में स्नान करना चाही तो मन लगाकर सत्संग करो।

ऐसे (रामचरित रूपी) मानसरोवर को हृदय के नेत्रों से देखकर

और इसमें स्नान करने से मुझ कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदय में आनन्द और उत्साह बढा तथा प्रेम और प्रमोद का प्रवाह उमड पडा ।

उससे वह सुन्दर कवितारूपी सरिता वह निकली जिसमें श्रीराम का विमल यशरूपी जल भरा है । इसका नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण सुन्दर मगलो की जड है । लोक और वेद का मत इसके दो सुन्दर किनारे है । यह पवित्र सरयू नदी मान सरोवर की कन्या है और कलियुग के पापरूपी तृणो और वृक्षो को जड से उखाडने वाली है ।

तीनो—आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी श्रोताओ के समाज ही इस नदी के दोनो किनारो पर बसे हुए पुर ग्राम और नगर है तथा समस्त सुन्दर मगलो की जड सन्तो की सभा ही अमुपम अयोध्या है ।

विशेष—‘मानस मानस’ मे यमक तथा अन्यत्र सर्वत्र रूपक अलंकार ।

मूल—रामभगति सुरसरितहि जाई । मिली सुकीरति सरजू सुहाई ॥
सानुज राम समर जसु पावन । मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥
जुग बिच भगति देवघुनि धारा । सोहति सहित सुविरति विचारा ॥
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी । राम सरूप सिंधु समुहानी ॥
मानस मूल मिली सुरसरिही । सुनत सुजन मन पावन करिही ॥
बिच बिच कथा विविध विभागा । जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥
उमा महेश विवाह बराती । ते जलचर अगनित बहु भांती ॥
रघुवर जनम अनंद बघाई । भँवर तरंग मनोहरताई ॥

दोहा—बालचरित बहु बन्धु के, बनज विपुल बहुरग ॥

नृप रानी परिजन सङ्कत, मधुकर वारि बिहंग ॥४०॥

शब्दार्थ—सानुज = छोटे भाई लक्ष्मण सहित । देवघुनि = गगाजी । तिमुहानी = त्रिमुखी होकर । समुहानी = सामने की तरफ । तीर = तट, आन-पास । बनज = कमल । वारि-बिहंग = जल-पक्षी ।

भावार्थ—जिनके मनमें रामचन्द्रजी के चरणों में सच्ची भक्ति है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोडते । हे भाई ! जो इन सरोवर में स्नान करना चाहे, वह मन लगा कर सतों का सत्सग करे ।

ऐसे मानस-सरोवर को हृदय के नेत्रों से देखकर और उचने गोता लगा

कर कवि की बुद्धि निर्मल हो गई, हृदय में आनन्द और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनन्द का प्रवाह उमड़ आया।

उत्तमे से मनोहर कविता रूपी नदी वह निकली जिसमें राम का निर्मल यश रूपी जल भरा है, उसका नाम सरयू है जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की जड़ है, लोकमत और वेद मत इसके दो सुन्दर किनारे हैं। यह सुन्दर मानस-सरोवर की कन्या अर्थात् सरयू नदी बड़ी पवित्र है और कलियुग के पाप रूपी तिनको और बृक्षों को जड़ से उखाड़ कर फेंकने वाली है।

चारो भाइयों की जो बाल-स्त्रीलाएँ हैं, वे ही इसमें खिले हुए रंग-विरंगे अनेक कमल हैं। राजा, रानी तथा उनके कुटुम्बियों के सत्कर्म ही अमर और जल-रक्षी हैं।

विशेष—साग रूपक तो चल ही रहा है। अनुप्राण की भी अच्छी बहार है। 'जनु सरि वागा' में उत्प्रेक्षा। तीर तीर' में यमक।

मूल—सौय स्वयंवर क्या सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई ॥
नदी नाव पट्ट प्रसन्न अनेका। केवट कुसल उत्तर सविवेका ॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पयिक समान सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी ॥
सानुज राम विवाह उछाहू। सो सुभ सुखद सब काहू ॥
कहत सुनत हरपाहँ पुलकाहौं। ते सुकृती मन मुदित नहाहौं ॥
राम तिलक हित मंगल साना। परब जोग जनु जुरे समाजा ॥
काई कुमति केकई कैरी। परी जासु फल विपति घनेरी ॥

दोहा—समन अमित उत्तपात सब, भरत चरित जपनाग।

कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बग काग।

शब्दार्थ—पट्ट = विचारपूर्ण। अनुकथन = पीछे की चर्चा। भृगुनाथ रिसानी = परशुरामजी का क्रोध। सुबद्ध = सुन्दर बधे हुए। सुकृति = पुण्यात्मा। परब जोग = पर्व के समय। समन = धात करने वाला। जप जाग = जग रूपी यश। जलमल = बीचड़। बग = दगुले।

भावार्थ—सौदा-स्वयंवर की जो सुन्दर क्या है, वही इस नदी में नुहावनी छवि छा रही है। अनेको विचारपूर्ण सुन्दर प्रसन्न ही इस नदी की नौकायें हैं और उनके विवेक-सहित उत्तर ही चतुर केवट हैं।

इस कथा को सुनने के पश्चात् जो परस्पर विचार-विनिमय होता है, वही इस नदी के किनारे यात्रियों का समाज है। परशुरामजी का श्लेष इस नदी की भयकर धार है और श्रीराम के श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बँधे हुए घाट हैं।

छोटे भाइयो-सहित श्रीराम के विवाह का उत्साह ही इस कथा-नदी की कल्याणकारिणी वाढ है, जो सभी को सुख देने वाली है। इस कथा के कहने-सुनने से जो प्रसन्न और पुलकित होते हैं वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं। जो प्रसन्नमन से इसषे नहाते हैं।

श्रीराम के राजतिलक के लिये जो मगल-साज सजाया गया, वही मानो पर्व के अवसर पर इकट्ठे हुए यात्रियों का समूह है। कँकेयी की कुबुद्धि ही काई है, जिसके फलस्वरूप (रघुकुल पर) बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी।

रामानुज भरतजी के चरित्र ही सब अनगिनत उत्पातो को शान्त करमे वाले जप और यज्ञ है। कलिदुग के पापो और खलो के अवशुणो के जो वर्णन हैं वे ही जल का मल, बगुले और कौए हैं।

विशेष - साम रूपक अलंकार चल ही रहा है, साथ ही उत्प्रेक्षा भी अनुप्रास भी अपनी छटा दिखा रहे हैं।

मूल - कौरति सरित छहूँ रितु रुरी। समय सुहावनि पावनि भूरी ॥
हिम हिमसंलसुता सिव व्याहूँ। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहूँ ॥
वरनव राम विवाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू ॥
श्रीषम दुसह राम वन गवनू। पथकथा खर आतप पवनू ॥
बरसा घोर निसाचर रारी। सुरकूल सालि सुमंगलकारी ॥
राम राज सुख विनय बडाई। विसव सुखद सोइ सरद सुहाई ॥
सतो सिरौमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अन्नपम पाथा ॥
भरत सुभाउ सुशीलताई। सदा एकरस वरनि न जाई ॥

दोहा - अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हाम।

भायप भलि चहु वन्यु की जल माघरी सुबास ॥४२॥

शब्दार्थ :-रुरी = सुन्दर। भूरि = अत्यन्त। हिम - हेमन्त ऋतु।

हिम सैलसुता = पार्वती । रितुराजू = वसन्त । खर आतप = कडी धूप ।
पवनू = लू । रारी = बुद्ध । सालि = घान । पाथा = जल । भायप = भाईपन ।

भाषार्थ - भगवान् की कीर्तिरूपी यह नदी छहो ऋतुओ में सुन्दर रहती है । समी समय यह परम सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है । इसमें वर्णित शिव-पार्वती का विवाह ही हेमन्त ऋतु है और श्रीराम के जन्म का उत्सव सुखद शिशिर ऋतु है ।

श्रीराम के विवाह-समाज का वर्णन ही आनन्द-मगल से भरी वसन्त ऋतु है । श्रीराम का वनगमन ही असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कडी धूप और लू है ।

- - भयकर राक्षसों से लडाई वर्षा ऋतु है, जो देवकुलत्पी घान का मुन्दर कन्याण करने वाली है । श्रीराम के राज्यकाल का जो सुख, विनय और बटाई है वह! निर्मल मुजद, सुहावनी गरद् ऋतु है ।

मती-शिरोमणि मोता के गुणो की कथा ही इन अनुपम जल का निर्मल गुण वर्णन स्वच्छता है । भरतजो न स्वभाव ही जल की जीतलता है, जो नवा एवनों रहती है और जिनका वर्णन नही हो सकता ।

चांगे मादगो का बापन मे प्रीति ने बोलना, देखना, मिलना और हँसना—यह मुन्दर भाईपना ही इन जल की मधुरता और मृगन्ध है ।

मूल - आरति धिनघ दीनता मोरी । लघुता ललित सुवारि न योरी ॥
वदमुत सलिल सुनत गुनकारी । आस पिआस मनोमल हारी ॥
राम सुभे महि पोपत पानी । हरत सरल कलि वलुप गलानी ॥
भव अन्न तोपक तोपक तोया । ममन दुरित बुख दारिद तोया ॥
काम कोट मव मोह नसाधन । विमल त्रिवेक विराग जरावन ॥
सादर मञ्जन पान किए तें । मिट्ठीहें राप परिताप हिए तें ॥
त्रिन्ह एहि वारि न मानस घोए । से कायर कलिनाल त्रिगोए ॥
तृपिन निर्गिन २धि फर भव धारी । फिरिहेंहि मृग जिमि जीय दुसारी ॥

शब्दार्थ - आरति = दृश्य । सुवारि = उत्तम जल । हारी = दूर करना है । पोपत = पृष्ट करना है । वलुप = पाप । तोपक = मत्पृष्ट करना है । दुग्नि = नार । कोट = श्रेय । मानस = मन, दृश्य । त्रिगोद = त्रिआटे गये,

ठगे गये । रवि कर भव वारी = सूर्य की किरणों से उत्पन्न जल अर्थात् चमकती बालू रेत ।

भावार्थ - मेरी आर्त वाणी, विनय और दीनता ही इस दोपरहित सुन्दर निर्मल जल की हलकाई (हलकापन) है । यह जल बड़ा ही अद्भुत है जो (रामचरित के) सुनते ही गुण करता है और आशा रूपी प्यास को तथा मन के मूल को दूर कर देता है ।

यह जल श्रीराम के प्रति सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है और कलियुग के समस्त पापों तथा मन की ग्लानि को दूर करता है । यह ससार के आवा-गमन की थकावट को सोखने वाला, सन्तोष को भी मतोष देने वाला तथा पाप, ताप, दरिद्रता और दोषों को नष्ट करने वाला है ।

यह जल काम श्लोघ, अभिमान और मोह का नाशक तथा निर्मल विवेक और वंराग्य का बढाने वाला है । इसमें आदरपूर्वक न्मान करने से तथा इसका पान करने से हृदय के पाप और परिताप मिट जाते हैं ।

जिन्होंने इस जल से अपने हृदय को नहीं धोया, उन कायरो को कलियुग ने नष्ट कर दिया । वे जीव उसी तरह दुःखी हो भटकते फिरते जैसे प्यासे मृग सूर्य की किरणों से (भ्रमवश) रेतों में जल देख भटकते फिरते हैं ।

विशेष :- अनुप्रास, रूपक, उपमा अलंकार ।

दोहा - सति अनुहारि सुवारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ ।

सुमिरि भवानी सकरहि, कह कवि कया सुहाइ ॥४३(क)॥

अव रघुपति पव पंकरुह, हिये धरि पाइ प्रसाद ।

कहूँ जंगल मुनिवर्यं कर, मिलन सुभग संवाद ॥४३(ख)॥

शब्दार्थ - भवानी = पार्वती । पंकरुह = कमल । जुगल = दोनों ।

गनि = विचार कर ।

भावार्थ - तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इस उत्तम जल के गुण-समूह पर विचार करके तथा इसमें अपने मन को न्मान करा कर तथा पार्वती और शंकर का स्मरण करके कया का वारम्भ करता हूँ । मैं अब श्रीरामचन्द्र जी के चरण-कमलों को हृदय में धारण कर

और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियो (यज्ञावल्क्य और भरद्वाज) के मिलन का सुन्दर सवाद वर्णन करता हूँ ।

मूल — भरद्वाज मुनि वसति प्रयागा । तिहृहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निवाना । परमारथ पथ परम सुजाना ॥
माघ मकरगत रवि जब होई । तीरथपतिहि आव सब कोई ॥
देव दनुज किनर नर श्रेनी । सादर मज्जहि सकल त्रिवेनी ॥
पूजहि नाथव पद जलजाता । परसि अख्य बटु हरपाहि गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन । परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥
तहाँ होइ मुनि रिपय समाजा । जाहि जे मज्जन तीरथ राजा ॥
मज्जहि प्रात समेत उछाहा । कर्हि परसपर हरि गुन गाहा ॥

दोहा—ब्रह्म निरूपन धरम विधि, बरनहि तब विभाग ।

कर्हि भगति भगवत कै, संजुत ग्यान विराग ॥४४॥

शब्दार्थ — मकरगत = मकर राशि पर । श्रेणी = समूह । जलजात = कमल । परसि = स्पर्श करके । संजुत = युक्त ।

भावार्थ — भरद्वाज मुनि प्रयाग में रहते हैं, उनका श्रीराम के चरणों में बहुत अधिक प्रेम है । वे तपस्वी निगृहीतचित्त, जितेन्द्रिय, दया-निधान और परमार्थ के पथ (कार्य) में बड़े ही चतुर हैं ।

माघ-माह में जब सूर्य मकरराशि पर होता है तब सब लोग तीर्थरंज प्रयाग में आते हैं । देवताओं, दानवों, किन्नरों और मनुष्यों के समूह सब श्रद्धापूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं ।

विशेष — राशियाँ बारह हैं । उनमें से प्रत्येक राशि पर सूर्य एक-एक माह रहता है । राशियों के नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन ।

भावार्थ — (भक्तजन) श्री वेणीमाधवजी के चरणकमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट या न्यग्रं कर उनके शरीर पुलकित होते हैं । वहाँ भरद्वाज मुनि ना आश्रम दहृत हैं पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन जो सुनाने वाञ्छा है ।

भावार्थ — वहाँ (भरद्वाज मुनि के आश्रम में) उन ऋषियों और

मुनियों का जमाव होता है जो तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने जाते हैं। वे सब प्रातः काल उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान् के गुणों की कथाएँ कहते हैं।

वे ब्रह्म का विचार, धर्म के विधान और तत्त्वों के भेद का वर्णन करते हैं तथा ज्ञान और वैराग्य से युक्त भगवान् की भक्ति का बखान करते हैं।

मूल—एहि प्रकार भरि माघ नहाही । पुनि सब निज निज आश्रम जाही ॥
 प्रति सबत अति होइ अनन्दा । मकर मज्जि गवर्नाहं मुनिवृन्दा ॥
 एक वार भरि मकर नहाए । सब मुनीस आश्रमन्ह सिंघाए ॥
 जागवलिक मुनि परम विवेकी । भरद्वाज राखे पद टेकी ॥
 सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बंठारे ॥
 करि पूजा मुनि मुजसु बखानी । बोले अति पुनीत मुडु बानी ॥
 नाथ एक ससउ बड मोरे । करगत वेदतत्व सबु तोरे ॥
 कहत सो मोहि लागत भय लाजा । जौ न कहउ बड होइ अकाजा ॥
 बोहा - सत कहहि असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव ।
 होइ न विमल विवेक उर गुर सन किए दुराव ॥४५॥

शब्दार्थ — मज्जि = स्नान करके, जागवलिक = याज्ञवल्क्य । पद टेकी = चरण पकड़ कर । दुराव = छिपाव ।

भावार्थ, - इस प्रकार माघ के महीने भर स्नान करने हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमों को लौट जाते हैं। प्रतिवर्ष वहाँ इसी तरह बड़ा आनन्द होता है और मुनिगण मकर नहाकर चले जाते हैं।

भावार्थ — एक वार मकर भर नहाकर सब मुनीश्वर तो अपने-अपने आश्रमों को लौट गये परन्तु भरद्वाज जी ने परमजानी याज्ञवल्क्य मुनि को चरण पकड़कर ठहरा लिया। (सानुरोघ रोक लिया)।

आदरपूर्वक उनके चरणकमल घोड़े और उनको बड़े ही पवित्र आसन पर बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्यजी के सुन्दर यश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र (निष्कपट) कोमलवाणी से बोले कि —

हे नाथ ! मुझे एक बड़ा भारी सदेह है, वेदों का तत्व सब आपकी मुट्ठी में है (अर्थात् कोई ऐसी बात नहीं जो आपमें छिपी हो, इसी कारण

आप मेरे सन्देह का निवारण कर सकते हैं। पर उस सन्देह को कहते हुए मुझे भय और लाज आती है। भय इसलिए कि वही आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है और लाज इसलिए कि इतनी अवस्था होने पर भी, अब तक ज्ञान नहीं हुआ और जो नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है (क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ)।

हे स्वामी ! सतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता।

विशेष—अनुप्रास और रूपक।

मूल—अस विचारि प्रगट्टे निज मोह । हरहु नाय करि जन पर छोह ॥
 राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा ॥
 संतत जपत संभु अविनासी । सिख भगवान ग्यान गुन रासी ॥
 आकर चारि जीव जग अहही । कातो मरत परम पव लहही ॥
 सोपि राम महिमा मुनिराया । सिख उपदेशु करत करि दाया ॥
 रामु कवन प्रभु पूछउ तोही । कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
 एक राम अवयेस कुमारा । तिन्हु कर चरित विदित संसारा ॥
 नारि विरह बुलु लहेउ अपारा । भयउ रोपु रन रावनु मारा ॥

दोहा—प्रभु सोह राम कि अपर कोउ, चाहि जपत त्रिपरारि ।

सत्यधाम सर्वंग्य सुम्ह, कहहु विवेकु विचारि ॥४६॥

शब्दार्थ—मोह = अज्ञान । छोह = प्रेम । आकर = प्रकार, जाति के । अहही = हैं । पन्म पद = मुक्ति । मोपि = वह भी । अपर = अन्य दूसरा ।

भावार्थ—ऐना मोच कर में अपना अज्ञान आपके सामने प्रकट करता हूँ । हे नाथ ! वेद पर हृषा करके इनके इस अज्ञान को दूर करिए । सत लो, पुराण और उपनिषद सब राम-नाम का अमित प्रभाव बतलाते हैं । भगवान् सिख जो भिवन् (संयोग स्वस्व), ज्ञान और गुण को राशि हैं, अविनाशी हैं, निन्तर राम नाम का जप करने रहते हैं । मनास में चार प्रकार के राव हैं, कागों में पन्म पर ममी जो मुक्ति प्राप्त हाती है । हे मुनिराज ! क्या का भी राम-नाम जो ही महिमा है, क्योंकि कागों में मरने वाले जीव को सिखी दया करते राम-नाम का ही उपदेश करते हैं । इसलिए हे प्रभो ! अब

मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं ? हे कृपा निधान ! मुझे समझा कर कहिए। एक राम तो अवध नरेश दशरथ के पुत्र है, जिनका चरित्र सारा ससार जानता है, जिन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर उन्होंने युद्ध में रावण को मार डाला। हे प्रभो ! यह वही राम हैं या कोई और दूसरे, जिनको शिवजी जपते हैं। आप सत्यधाम और सर्वज्ञ हैं, अतः विचार कर बतलाइए।

विशेष—चार प्रकार के जीव बृहज्, उद्दिभज्, जरायुज् और स्वेदज्।

मूल - जैसे मिट्टे में भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ विस्तारी ॥
जागवलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई ॥
राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रसन्न मनहुँ अति मूढा ॥
तातसुनहु सादर मनु लाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई ॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा सति किरन समाना। सत चकोर करहि जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तव कहा बखानी ॥

दोहा—कहउँ सो मति अनुहारी अब, उमा सभु संवाद।

भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि विषाद ॥४७॥

शब्दार्थ—गूढा = रहस्य-पूर्ण। महिषेसु = महिषासुर। कराला = भयकर। हेतु = कारण।

भावार्थ—हे स्वामी ! जिससे मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप उसी कथा को विस्तरपूर्वक कहिये। यह सुनकर याज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले कि श्रीराम की प्रभुता को तुम जानते हो।

(हे भरद्वाज !) तुम मन, कर्म और वाणी से श्रीराम के भक्त हो। तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया हूँ कि तुम श्रीराम के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो, इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो तुम बड़े ही अज्ञानी हो।

विशेष,—उत्प्रेक्षा अलंकार।

हे तात ! तुम मन लगाकर आदरपूर्वक सुनो। मैं श्रीराम जी की सुन्दर कथा कहता हूँ। बड़ा भारी अज्ञान विशाल (दैत्य) महिषासुर है और श्रीराम की कथा (उसका नाश कर देने वाली) भयकर कालीजी है।

विशेष — रूपक अलंकार ।

श्रीगणेश की ज्या चन्द्रमा की (शीतल) किरणों के समान है, जिसका सतहगी चनेर निरन्तर फल करते रहते हैं। ऐसा ही अन्वैह पार्वती ने किया था, तब गिबजी ने विचार ने उच्छा उत्तर दिया था ।

विशेष — उपमा एवं रूपक अलंकार ।

व्याख्या — टीका गिब-पार्वती के उवाच को अब मैं अपनी वृद्धि के अनुसार कहता हूँ । वह उवाच जिस समय और जिस हेतु ने हुआ, उसे ही मुनि मुनो, इन्से तुम्हारा विषय निट जानेगा ।

मूल — एक बार ब्रह्मा जुग माहीं । संतु गए कुंभंज रिपि पाहीं ॥
 मग मनी जगजननि भवानी । पुने रिपि अखिलेस्वर जानी ॥
 राम-रुपा मुनिवर्ज बलानी । मुनो महेन परम सुखुनामी ॥
 रिपि पूछी हरिनगति कुहाई । कही संतु अधिकारी पाई ॥
 कहन मुन्न रघुपति गुन गाया । कष्ट दिन तहाँ रहे गिरिनाया ॥
 मुनि सन विद्वान्गि त्रिपुरारी । चले भवन संग दच्छकुमारी ॥
 तेहि अवसर भंजन महिभारा । हरि रघुवंस लीन्हु अवतारा ॥
 पिना दचन तजि राज उदासी । बंडक बन बिचरत अविनामी ॥

दांहा—हृदय विचारत जान हर, केहि विधि बरसनु होइ ।

गुन हय अवतरेछ प्रभु, गएँ जान नहु कोइ ॥४८॥ (क)

सोटा—मंकर उर अति छोमु मतौ न जानहि नरमु मोइ ।

मुनसो बरनन लोमु नन उर लोचन लालची । ४८॥ (ख)

शब्दार्थ — कुंभंज = षट् से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि । पाहीं = प्राप्त ।
 अखिलेस्वर = सारे उचार के स्वामी ईश्वर । गिरिनाया = गिबजी । त्रिपुरारी
 = त्रिपुर राक्षस के नारने वाले शिव । दच्छकुमारी = दक्ष की पुत्री तकी ।
 छोमु = अन्वैही । मरम = मेद ।

भावार्थ — एक बार ब्रह्मा युग में शंकर कास्त्य ऋषि के पास गये,
 उनके प्राण जान् को माता, भवानी सीताजी भी थी । ऋषि ने सम्पूर्ण जान्
 के ईश्वर जानकर उन्का पूजन किया ।

दुन्दिर कास्त्यजी ने रामरुपा का वर्णन किया जिसे मुनकर
 महादेवजी ने परम मुख माना । फिर ऋषि ने गिबजी से सुन्दर हरि नाम

के विषय में पूछा और शिवजी ने उनको अधिकारी पाकर (जानकर) भक्ति का निरूपण किया ।

इस प्रकार श्रीरघुनाथजी के गुणों की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनों तक शिवजी वहाँ रहे । फिर मुनि से विदा माँगकर शिवजी दक्षकुमारी पार्वतीजी के साथ घर (कैलाश) को चले ।

उन्हीं दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिये भगवान् ने रघु के वंश में अवतार लिया और पिता के वचन से राज छोड़, अविनाशी भगवान् श्रीराम तपस्वी-वेश में दण्डक वन में विचर रहे थे ।

इधर शिवजी हृदय में विचारते जा रहे थे कि भगवान् के दर्शन मुझे किस प्रकार हो । प्रभु ने गुप्तरूप से अवतार लिया है; सम्मुख जाने से यह भेद सब लोग जान जायेंगे ।

शकरजी के हृदय में इस बात को लेकर बड़ी खलबली उत्पन्न हो गयी, परन्तु सतीजी इस भेद को नहीं जानती थीं । तुलसीदासजी कहते हैं कि दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे पर मन में (भेद झुलने का) भय था ।

मूल-रात्रि मरन मनुज कर जाचा । प्रभु विधि वचनु कौन्ह चह साँचा ॥

जौं नहि जाउं रहइ पछतावा । करत विचार न वनत बनावा ॥

एहि विधि भए सोचवस ईसा । तेही समय जाइ दससीसा ॥

लौन्ह नीच मारीचहि सँगा । भयउ तुरत सोइ कपटकुरगा ॥

करि छलु मूढ हरी बँदेही । प्रभु प्रभाउ तस विदित न तेही ॥

मृग बधि बधु सहित हरि आए । आश्रमु देखि नयन जल छाए ॥

विरह बिकल नर इच रघुराई । खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥

कबहूँ जोग बियोग न जाकें । देखा प्रगट विरह डुखु ताकें ॥

दोहा—अति विचित्र रघुपति चरित, जानहि परम सुजान ।

जे मतिमंद बिमोह बस, हृदयें घरहि कछु आन ॥४६॥

शब्दार्थ—जाचा = मागा । बनावा = युक्ति, उपाय । कुरगा = मृग । ही = सीता । बिपिन = वन ।

भाषा — रात्रि ने अपना मरना मनुष्य के हाथ से माग रखा था और भगवान् ब्रह्मा के वचनों को सत्य करना चाहते हैं (इनी हेतु नर-त्प धारण किया है) । जो प्रभु के दर्शन के लिए नहीं जाता हूँ तो बड़ा पछतावा

रह जायेगा (और जाने का अवसर नहीं) । इस प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी उक्ति ठीक नहीं बैठती थी ।

इस प्रकार शिवजी चिन्तामग्न हो गये । उस नमय रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ लिया जो छल से उसी समय हिरण बन गया ।

भावार्थ.—तब मूर्ख रावण ने छल करके सीताजी को हर लिया । उसे श्रीराम के वास्तविक प्रताप का कुछ भी ज्ञान नहीं था । हिरण को मार कर श्रीराम भाई लक्ष्मण सहित आश्रम में और उन्ने सूना देखकर उन कें तैयों में जल भर आया ।

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी मनुष्य के समान विरह से व्याकुल हो गये और दोनों भाई बन में सीताजी को ढूँढते हुए फिरने लगे । जिनके कमी सयोग और वियोग नहीं है, उन (भवान श्रीराम) का विरह-दुःख प्रकट देखने में आया ।

भावार्थ—श्री रघुनाथजी का चरित्र विचित्र है । उसे बड़े बड़े ज्ञानी ही जानते हैं, पर जो भवदुःखि हैं वे अज्ञान के वश हृदय में कृच्छ और ही समझते हैं (अर्थात् उन्हें सबमृच दृष्टीसुखी समझ लेते हैं) ।

विशेष—अतुप्राप्त, उपमा और विरोधाभास अलंकार ।

मूल—सभु समय तेहि रामहि देखा । उपजा हिये अति हरपु विशेषा ॥
 भरि लोचन छवि सिधु निहारी । कुसमय जानि न कौन्हि चिन्हारी ॥
 जय सच्चिदानन्द जग पावन । अस कहि धलेउ मनोज नसाधन ॥
 चले जात सिध सती समेता । पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
 सती सो दसा सभु कं देखी । उर उपजा सवेहु विसेखी ॥
 संकर जगतवद्य जगदोसा । सुर नर मुनि सध नाबत सीसा ॥
 तिन्ह नृप सुतहि कौन्ह परनामा । कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥
 भए मगन छवि तासु विलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दोहा—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अनेद ।

सो कि देह बरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥५०॥

शब्दार्थ—दिवि-निधु = शोभा के समुद्र (श्रीराम) । चिन्हारी = परिचय । मनोजनमावन = कामदेव को नष्ट करने वाले (शिव) । तासु = उसकी । विरज = माया रहित । अज = अजन्मा । अकल = अगोचर । अनीह = इच्छा रहित ।

भावाय—उसी समय शिवजी ने श्रीराम के दर्शन किये जिससे उनके हृदय में बड़ा ही आनन्द उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र श्रीराम को शिवजी ने नेत्र भरकर देखा, परन्तु कुसमय जानकर उनसे परिचय नहीं किया।

हे सच्चिदानन्द, हे जगत् के पवित्र करने वाले, आपकी जय हो, इस प्रकार कह कर कामदेव के नाशक शिवजी चल पड़े। कृपानिधान शिवजी बार बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती के संग चले जा रहे थे।

सतीजी ने जब शंकर की यह दशा देखी तो उनके मन में बड़ा सदेह उत्पन्न हो गया। (वे मन ही मन सोचने लगी कि) ससार के वदनीय तथा जगत के स्वामी शिवजी को तो सुर, नर, मुनि सब सिर नवाते हैं।

उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानन्द परब्रह्म कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अब तक प्रीति उनके हृदय में रोकी नहीं सकती।

भावाय—जो ब्रह्म सबमें व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, चेष्टारहित और अखण्ड है और जिसको वेद भी नहीं जानते, वह क्या देह धारण करने मनुष्य हो सकता है ?

मूल :—विष्णु जो सुर हित नरतनु धारी । सोउ सर्वंग्य जथा त्रिपुरारी ॥

खोजइ सो कि अग्य इव नारी । ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥

संभुगिरा पुनि मृषा न होई । सिव सर्वंग्य जान सबु कोई ॥

अस संसय मन भयउ अपारा । होइ न हृदयें प्रबोध प्रचारा ॥

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी । हर अतरजामी सब जानी ॥

सुनहि सती तव नारि सुभाऊ । ससय अस न धरिअ उर काऊ ॥

जासु कथा कुम्भज रिधि गाई । भगति जासु में मुनिहि सुनाई ॥

सोइ मम इण्डदेव रघुबीरा । सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥

शब्दार्थ—अग्य = अज्ञानी । असुरारि = असुरों के शत्रु । मृषा = झूठ ।

प्रबोध प्राचारा = ज्ञान का प्रादुर्भाव ।

भावाय—देवताओं के हित के लिए भगवान विष्णु ने मनुष्य का शरीर धारण किया है वे भी शिवजी की भाँति ही सर्वज्ञ हैं। नो क्या वे भी लक्ष्मी के स्वामी, ज्ञान के धाम और अमृतों के शत्रु विष्णु अज्ञानी की तरह नारी को ढूँढते फिरते हैं ?

फिर शिवजी के वचन भी असत्य नहीं हो सकते क्योंकि नव जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार सती के मन में अपान् मन्देह उठ खड़ा हुआ और हृदय में किसी भाँति ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं हुआ।

यद्यपि पावंतीजी ने प्रकट में कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी नव जान गए। वे बोले हैं सती। मुनी, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये।

भाचार्य,—जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिन की भक्ति में मुनि को सुनायी, वे वही मेरे इष्टदेव श्रीराम हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सर्वदा किया करते हैं।

विशेष—अनुप्रास और उपमा अलंकार।

मूल—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन नेहि ध्यावहीं।

कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कौरति गावहीं ॥

सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकायपति माया धनी ॥

अवतरेउ अपने भगत हित निजतत्र नित रघुकुलमनी ॥

शब्दार्थ—सतत = निरन्तर। आगम = शास्त्र। भुवन-निकायपति = समस्त भुवनो (लोकों) के पति। निजतत्र = स्वतन्त्र।

भाचार्य—जानी, मुनि, योगी और सिद्ध गुढ़ हृदय से जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र जिनकी कीर्ति को नेति नेति कह कर गाते हैं उन्हीं सब (चराचर) व्यापक, परब्रह्म समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र भगवान् श्रीराम ने अपने भक्तों के हित के लिए रघुकुल के मणिरूप में अवतार लिया है।

विशेष—हरिगीतिका छन्द। अनुप्रास अलंकार।

सोरठा—लाग न डर उपदेशु, जदपि कहेउ सिबे वार बहु।

बोले बिहंसि महेसु, हरिमाया बलु जानि जिये ॥ ५१ ॥

भाचार्य—यद्यपि शिवजी ने सती को बार-बार समझाया, तथापि सती के मन पर उनके उपदेश का कोई प्रभाव न पड़ा। तत्र मन ही मन महादेवजी भगवान् को माया को बलवती जान कर हँस कर कहने लगे।

मूल—जौ तुम्हरे मन बति सदेह। तौ किन जाइ परोछा लेह ॥

तब लगि बैठ अहउ बटछाहीं। जब लगी तुम्ह ऐहह मोहि पाहीं ॥

जैसे जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु विवेक विचारो ॥
 चलीं सती सिव आयसु पाई । करहि विचार करीं का भाई ॥
 इहां सभु अस मन अनुमाना । दच्छसुता कहें नहि कल्याना ॥
 मोरेहु कहें न संसय जाहीं । विधि विपरीत भलाई नाहीं ॥
 होइहि सोइ जो राम रचि राखा । को करि तकं वढावै साखा ॥
 अस कहि लगे जपन हरिनामा । गईं सती जहें प्रभु सुखधामा ॥

दोहा—पुनि पुनि हृदयें विचार करि, घरि सीता का रूप ।

आगें होइ बलि पथ तेहि, जेहि आवत नररूप ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—बट = बड़ का पेड़ । ऐहहु = आओगी । पाही = पास । आयसु = आज्ञा । साखा वढावै = विस्तार करे ।

भावार्थ—जो तुम्हारे मन मे बहुत सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती ? जब तक तुम मेरे पाम लौटकर आओगी तब तक मैं इसी बड़ की छाया मे बैठा रहूँगा ।

जिस भाति तुम्हारा यह भारी मोह और भ्रम दूर हो, वही यत्न तुम विवेक से सोच-समझकर करो । शिवजी की आज्ञा पाकर सती चली और विचार करने लगी कि हे भाई ! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ) ।

यहाँ शिवजी ने मन मे यह अनुमान किया कि अब दक्षकन्या सती का कल्याण नहीं है (इनके पीछे प्रभु का माया लगी है सो बिना दण्ड दिये इन्हें नहीं छोड़ेगी) । जब मेरे समझाने से भी सन्देह दूर नहीं हुआ, तब मालूम होता है—प्रारब्ध ही उल्टा है और कुछ भलाई नहीं दीखती ।

होगा वही, जो कुछ श्रीराम ने रच रक्खा है । फिर तकं करके बात मे बात (शाखा) काँन निकाल । ऐम्ग कहकर शिवजी तो राम नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयी जहाँ सुख के घाम प्रभु श्रीराम (विराजमान) थे ।

बार-बार हृदय मे विचारकर और सीताजी का रूप धारण करके सती उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं जिमसे मनुष्यों के राजा श्रीराम आ रहे थे ।

विशेष—‘पुनि पुनि’ मे पुनरक्ति-प्रकाश अलंकार ।

मूल—लछिमन दीप्त उमाकृत वेषा । चकित भए भ्रन हृदयें विसेषा ॥

कहि न सकत कछु अति गभीरा । प्रसु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥

सती कपट जानेउ सुरन्वामी । सबदरती सय अंतरजामी ॥
 सुनिरत जाहि मिटइ अग्याना । जोइ सुरवग्य रानु भग्याना ॥
 सती कीन्ह चह तहेंहें डुराहू । देखऊ नारि सुभाय प्रनाऊ ॥
 निज माया बलु हृदयें बलानी । सोले विहँनि रानु मृदु बानी ॥
 जोरि पानि प्रनु कीन्ह प्रनामू । पिता समेन लीन्ह निज नामू ॥
 कहैउ बहोरि कहां वृषकेतू । विपिन अकेलि फिरहु केहि हेंतू ॥

बोहा—राम बचन मृदु गूँठ सुनि, उपजा अति नकोचू ॥

सती समीत महेत पहि, चली हृदयें बड सोचू ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—मतिधीरा = धीर बुद्धि । सुर स्वामी = रामचन्द्रजी । तहेंहें
 = वहा भी (सर्वज्ञ भगवान् के नामने भी) डुराउ = छिपाव । पानि = हाथ ।
 बहोरि = फिर । वृषकेतू = महादेव । पहि = पाम ।

भावार्थ—लक्ष्मणजी नती को (सीता के) बनावटी भेद में देखकर
 चकित हो गये और उनके हृदय में बडा भ्रम हो गया । वे कुछ कह नहीं सके
 और बहुत गम्भीर हो गये क्योंकि धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रनु ध्यागम को
 जानते थे ।

देवताओं के स्वामी श्रीराम ने सती के कपट को जान लिया क्योंकि वे
 सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय को जानने वाले हैं । जिनके स्मरणमात्र
 से अज्ञान का नाश हो जाता है, वे ही सर्वज्ञ भगवान् श्रीराम हैं ।

पर सतीजी वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान् के सामने) भी छिपाव करना
 चाहती है, स्त्री के स्वभाव का प्रभाव तो देखो ! अपना माया के बल को हृदय
 में स्मरण कर श्रीराम हँसकर कोमल बाणी से बोले—

पहले प्रनु ने हाथ जोडकर सती को प्रणाम किया और पिना-सहित
 अपना नाम बताया । फिर कहा कि वृषकेतु महादेवजी कहाँ है ? आप यहाँ
 बन में अकेली कित्तिए फिर रही हैं ?

श्रीराम के कोमल और गूँठ बचन सुनकर सती को बडा सकोच हुआ
 और वे डरती हुई (चुपचाप) महादेवजी के पास चली, पर उनके हृदय में
 बडा सोच था ।

विशेष —इन पक्तियों में स्त्री-सुलभ दुर्बलता का सुन्दर परिचय दिया
 गया है ।

मूल— मैं संकर कर कहा न माना । निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतर अत्र देहव काहा । उर उपजा अति वारुन बाहा ॥
जाना राम सती दुख पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सती दीख फौतुकु मग जाता । आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा । सहित वन्धु सिय सुन्दर बेपा ॥
जहें चितवाह प्रभु आसीना । सेवाह सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
देखे सिव विधि विन्दु अनेका । अमित प्रभाउ एक ते एका ॥
बदत चरन करत प्रभु सेवा । विविध बेप देखे सब देवा ॥

दोहा— सती विधात्री इन्दिरा, देखी अमित अनूप ।

जेहि जेहि बेप अजावि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

शब्दार्थ — आना = आरोप किया । दाहा = जलन । श्री = लक्ष्मी, सीता । चितवा = देखा । विधात्री = ब्रह्माणी । इन्दिरा = लक्ष्मी । अजादि = ब्रह्मा आदि ।

भाषार्थ --- मैंने शिवजी का कहना नहीं माना और अपना अज्ञान श्रीराम पर प्रकट किया । अब जाकर उनको क्या उत्तर दूँगी ? यो नोचते-सोचते सतीजी के हृदय में अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गयी ।

श्रीराम ने जान लिया कि सती को दुःख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके दिखाया । सतीजी ने मार्ग में जाते हुए एक वीतुक देखा कि श्रीराम सीताजी और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं ।

फिर पीछे फिरकर देखा तो वहा भी प्रभु श्रीराम को भाई और सीता-सहित सुन्दर बेप में देखा । वे जिवर देखती हैं । उधर ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और मुचतुर सिद्ध-मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं ।

सतीजी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बदकर असोम प्रभाव वाले थे । वे भगवान् के चरणों की वन्दना और सेवा कर रहे थे । इसके अतिरिक्त सती ने सभी देवताओं को नाना भाति के बेप में देखा ।

(फिर सतीजी ने) असुर्य अनुपम रूपों में सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मीजी को देखा । जिस-जिस रूप में ब्रह्मादि देवता थे उसी रूप के अनुसार वे (उनकी शक्तियाँ) भी थीं ।

विशेष—यमक और अनुप्रास अलाकार ।

मूल—देख जहाँ तहाँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
 जीव चराचर जो संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
 पूर्जाह प्रभुहि देव बहु वेषा । राम रूप दूसर नहीं देखा ॥
 अवलोकै रघुपति बहुतेरे । सीता सहित न वेष घनेरे ॥
 सोइ रघुवर सोइ लछिमनु सीता । देखि सती अति भई सभोता ॥
 हृदयें कंय तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूँदि बँठी भग माही ॥
 बहुरि बिलोकै नयन उधारी । कछु न दोख तहँ दच्छकुमारी ॥
 पुनि पुनि नाइ राम पव सीसा । चलीं तहां जहँ रहे गिरीसा ॥

दोहा—गईं समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात ।

लीन्हि परीक्षा कवन विधि, कहहु सत्य सब बात ॥५५॥

शब्दार्थ—गिरीसा = महादेव । सुधि = खबर ।

भावार्थ—सतीजी ने जहाँ-जहाँ जितने रामचन्द्रजी देखे वहाँ उतने ही सब देवता अपनी अपनी शक्तियों सहित देखे । संसार में जो चर और अचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकार के सब देखे ।

देवता अनेक वेप धारण करके प्रभु श्रीराम की पूजा कर रहे थे, परं रामजी का दूसरा रूप नहीं देखा (अर्थात् श्रीराम उसी एक रूप में थे जबकि देवता लोग भक्ति-भक्ति के वेप बनाकर भगवान् की पूजा कर रहे थे) सीता-सहित श्रीराम बहुत से देवे, परन्तु उनके वेप अनेक नहीं थे ।

(सब जगह) वे ही राम, वे ही लक्ष्मण और वे ही सतीजी-सीताजी ऐसा देवकर बहुत ही डर गयी । उनका हृदय काँपने लगा, शरीर की कुछ सुष न रही । वे आँख बन्द करके रात्ने में बैठ गयी ।

फिर जब आँखें खोलकर देखा तो वहा दक्षकुमारी सती को कुछ भी दिखायी नहीं दिया । तब वे बार-बार श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर वहा चली, जहा निवजी थे ।

जब सतीजी शिवजी के पास पहुँची तो उन्हें हीँसकर सती की कुमल पूछी और वृत्ति नि तुमने श्रीराम की परीक्षा किस प्रकार ली, सारी बात सच-सच कहो ।

विदोष—अनुप्रास अलाकार ।

मूल—सती समुद्रि रघुवीर प्रभाऊ । भय वस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
 कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं । कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाई ॥
 जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई । मोरें मन प्रतीति अति सोई ॥
 तब सकर देखेउ धरि ध्याना । सती जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥
 बहुरि राममायहि सिव नावा । प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा ॥
 हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदयं विचारन भंभु सुजाना ॥
 सती कीन्ह सीता कर देपा । सिव उर भयउ विषाव विसेपा ॥
 जौं अब करउं सती स न प्रीती । मिटइ भगति पयु होइ अनीती ॥

दोहा — परम पुनीत न जाइ तजि, किए प्रेम बढ पापु ।

प्रगटि न कहत महेशु कछु, हृदयें अविक सतापु ॥५६॥

शब्दार्थ—नाई = तरह । भावी = हीनहार ।

भावार्थ—श्रीराम के प्रभाव को समझकर सती ने डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा कि, हे स्वामी ! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहा जा कर मैंने) आपकी ही तरह (भगवान् श्रीराम को) प्रणाम किया ।

आपने जो कहा वह असत्य नहीं हो सकता, मेरे मन में ऐसा पूर्ण विश्वास है । यह सुनकर शिवजी ने ध्यान धरकर देखा और सतीजी ने जो चरित्र किया था सो सब जान लिया ।

फिर उन्होंने श्रीराम की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुह से भी झूठ कहलवा दिया । सुजान शिवजी हृदय में विचार करने लगे कि हरि-इच्छा (अर्थात् भगवान की इच्छा से ही यह सब कुछ होता है) रूपी भावी बड़ी बलवान है (अर्थात् जो कुछ होना होता है वह हो कर ही रहता है) ।

सती ने सीता का वेप धारण किया, इस कारण शिवजी ने हृदय में बड़ा दुःख पाया । (वे विचार करने लगे कि) जो अब सती से मैं प्रेम करता हूँ तो भक्ति का मार्ग ही मिटा जाता है और बड़ा अन्याय होता है ।

सती परम पवित्र हैं इसीलिये इन्हें छोटते भी नहीं बनता और प्रेम करने से बड़ा पाप होता है । शिवजी ने प्रकट में (वाणी से) कुछ भी नहीं कहा परन्तु उनके हृदय में बड़ा सताप हुआ ।

विशेष—अनुप्राण अलगा ।

मूल—तब मकर प्रभु पद मिय नावा । सुमिरत राम हृदय अत्त आवा ।
 एहि तन सतिहि भेट मोहि नार्ही । सिव सषत्पु गोन्ह बन माहीं ॥
 अस बिचाहि सख मतियोरा । चले भयन सुमिरत रघुयोरा ।
 चलत गगन भे गिरा सुहाई । जय महेस भलि भगति दृढाई ॥
 अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना । रामगत ममरय भगवाना ।
 सुनि नभगिरा सतो उर सोचा । पूछा निवहि समेत लकोचा ॥
 कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला । सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ।
 जदपि सती पूछा बहु भानी । तदपि न कहेउ त्रिपुर जारतो ॥
 दोहा—सतो हृदय अनुमान किय सब जानेउ सर्वग्य ।

कीन्ह फपटु मं समु सन, नारि सहज जड अन्य ॥५७॥ (क)

सोरठा—जलु पय सरिस विकाइ, देखहु प्रीति कि रोति भली ।

विलग होइ रसु जाइ, कपट लटाई परत पुनि ॥५७॥ (ख)

शब्दार्थ—सकल्प = दृष्ट विचार । गिरा = चारी । पन = प्रण, प्रतिज्ञा
 आना = अन्य, दूसरा । त्रिपुर-आगती = त्रिपुर राक्षस के शत्रु (शिवजी) ।
 पय = दूध । रस = स्वाद, आनन्द, प्रेम ।

भावार्थ—तब शिवजी ने प्रभु श्रीराम के चरणों में सिर नवाया और
 श्रीरामजी का स्मरण करते ही उनके मन में यह आया कि इस देह से मेरी
 (पति-पत्नी रूप में) सती से भेंट नहीं हो सकती । शिवजी ने अपने मन में यही
 सकल्प कर लिया ।

स्थिरमति शिवजी ऐसा विचारकर श्रीराम का स्मरण करते हुए अपने
 घर कैलाश को चले । चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुयी कि हे शकर,
 आपकी जय हो । आपने भक्ति को खूब दृढ़ किया ।

ऐसा प्रण आपको छोड़कर और दूसरा कौन कर सकता है ? भगवन् !
 आप श्रीराम के भक्त और नमर्थ हैं । इस आकाशवाणी को सुनकर सतीजी
 के मन में चिन्ता हुयी और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा—

हे दयालु ! आपने कौनसा प्रण किया है, तो कहिए ? हे प्रभु ! आप
 सत्य के धाम और दीनों पर दया करने वाले हैं । यद्यपि सतीजी ने अनेक
 प्रकार से पूछा तो भी त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ नहीं कहा ।

सतीजी ने (शिवजी से कोई उत्तर न पाकर) अपने हृदय में अनुमान लगाया कि प्रभु सर्वज्ञ हैं और उन्होंने (जो कुछ मैंने किया था) सब जान लिया है। मैंने शिवजी से कपट किया (यह कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि) स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञान होती है।

प्रीति की इस सुन्दर रीति को तो देखिये कि जल भी (दूध के समान भाव विकता है, परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है।

विशेष—अनुप्रास और 'कपट-खटाई' में रूपक अलंकार।

मूल - हृदयें सोचु समुद्रत निज करनी । चिन्ता अभित जाइ नहिं बरनी ।
 कृपा सिधु सिध परम अगाथा । प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥
 सकर रल अवलोकि भवानी । प्रभु मोहि तजेउ हृदयें अकुलानी ।
 निज अघ समुद्रि न फछु कहि जाई । तपइ अवा इव उर अधिकाई ॥
 सतिरि ससोच जानि वृषकेतू । कहीं कथा सुन्दर सुख हेतु ।
 बरना पथ विविध इतिहासा । विस्वनाथ पहुँचे कंलासा ॥
 तहें पुनि सभु ममुसि पन आपन । बंठे बट तर करि कमलासन ।
 सकर सहज सरपु मम्हारा । लागि समाधि अखण्ड अपारा ॥
 दोहा-सती बसहिं कंलास तव, अधिक् सोचु मन मांहि ।
 मरनु न कोऊ ज्ञान कछु, जुग सम दिवस सिराहि ॥५८॥

शब्दार्थ--अवा = कुम्हार का भावा जिसमें वर्तन पकने हैं। वृषकेतू = शंकर। निररि = बीनते हैं।

भावार्थ - अपनी ही करनी समझकर सती को हृदय में बहुत दुःख हुआ। उनके मन में सती की अधिक् चिन्ता है कि उनका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। (वे अपने मन में सोचने लगी कि) शिवजी कृपा के परम अघाह ममुद्र हैं। जिन में उन्होंने प्रकट में मुझसे मेरा अग्रराध नहीं कहा।

शिवजी का मन देखकर पार्वतीजी हृदय में बहुत व्याकुल हो उठीं कि स्वामी ने मेरा त्याग न किया है। अपना ही पाप समझकर कुछ कहने नहीं बगता, परन्तु तब भी तब ही-भीतर, कुम्हार के जैसे वे मनान अखण्ड चलने लगा।

सती को सोच में जानकर वृषभेत्तु शिवजी ने उन्हें मुक्त देने के लिए सुन्दर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार इतिहास कहते हुए सत्तार के स्वामी शिवजी कैलाश में जा पहुँचे।

वहाँ फिर शिवजी अपना प्रण वाद करके वट के पेड़ के नीचे कमलासन लगाकर बैठ गये। शंकरजी ने अपना न्वाभाविक रूप सँभाला जिससे उनकी लक्ष्मण और अपार समाधि लग गयी।

तब सतीजी कैलाश में रहने लगी पर उनके मन में बड़ा भारी दुःख था इस रहस्य के विषय में (कि शिवजी ने सती को त्याग दिया है) कोई भी कुछ नहीं जानता था। (शिवजी के इस व्यवहार के कारण) सती के दिन युग के समान बीत रहे थे।

विशेष—दूतरी चाँपाई में उपमा, 'संकर' 'सन्हारा' में वृत्त्यनुप्रास बलकार।

मूल—नित नव सोच सती सर भारा। कव जँहउँ दुख सागर पारा।
 मैं जो कौन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिवचनु मृषा करि जाना ॥
 सो फलु मोहि विधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कौन्हा।
 अब विधि अस वृद्धिअ नहीं तोही। संकर विमुक जिआवसि मोही ॥
 फहो न जाइ कछु हृदय गलानो। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी।
 जो प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन ब्रह्म जसु गावा ॥
 तो मैं बिनय करच कर जोरी। छूटच बेगि देह यह मोरी।
 जो मोरें तिव चरन सनेहू। नन अम वचन सत्य बनु एहू ॥

दोहा—तो सबदरसी सुनिश्च प्रभु, करच सो बेगि उपाइ।

होइ मरनु जोहि बिनाहँ श्रम, दुसह विपत्ति विहाइ ॥५९॥

शब्दार्थ—जँहउँ = जाऊँगी। जिआवसि = जोवित रख रहा है।
 आरति = दुःख। बिहाइ = दूर हो जाय, छूट जाय।

भाषार्थ—नित्य नया सोच होने से सती का हृदय भारी हो गया।
 (वे सोचने लगीं कि) मैं इस दुःख-मनुष्य के पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्रीराम का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूट जाना—

उठो का फल विधाता ने मुझे दिया और जो उचित था वही किया।

हे विधाता । अब तुझे ऐसा नहीं चाहिये कि शिवजी के विमुख होने पर भी मुझे जिला (जीवित रख) रहा है ।

सती के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती । बुद्धिमती सतीजी ने मन में श्रीराम का स्मरण कर कहा । जो भगवान् दीनों पर दया करने वाले कहते हैं और दूख के हरने वाले कहें वेदों ने जिनकी प्रशंसा की है -

उनसे मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाय । शिवजी के चरणों में मेरा प्रेम है और मन, कर्म तथा वचन से मेरा यह प्रण सच्चा है—

तो हे सर्वदर्शी प्रभु । सुनिये और शीघ्र वही उपाय कीजिये, जिनमें अनायस मेरा मरण हो और मेरी यह (पति-परित्यागिणी) असह्य विपत्ति दूर हो जाय ।

मूल - एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी । अकथनीय दारुण दुख भारी ।
 वीतै तवत सहस सतासी । तजि समाधि सभु अविनासी ॥
 राम नाम निव सुमिरन लागे । जानेऊ सती जगतपति जागे ।
 जाइ सभु पद - बन्दनु कीन्हा । सनमुख सत्तर आमनु रोन्हा ॥
 लगे कहन हरि कया रसाला । दच्छ प्रजेस भए तेहि काला ।
 देखा विधि विचारि सब लायक । दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक ॥
 बड अधिकार दच्छ जब पावा । अति अभिमानु हूबयें तब आवा ।
 नाहि कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥
 दोहा - दच्छ लिए मुनि बोलि सब, करन लगे बड जाग ।

नेवते साबर सकल सुर, जे पावत मल भाग ॥६०॥

भावार्थ--दक्षराज की कन्या सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखिन थी । उनको इतना दारुण और भारी दुःख था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । (इस प्रकार) सतासी हजार वर्ष वीत जाने पर अविनाशी शिवजी ने अपनी समाधि खोली ।

शिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे । जब सतीजी ने जाना कि जगत् के स्वामी शिवजी जग गये हैं तो उन्होंने जाकर शिवजी के चरणों में प्रणाम लिया । शिवजी ने उनको बँटने के लिए अपने सामने (सीता का वेप घरने के कारण वाई और नहीं बँटाया) ।

और वे (शिवजी) भगवान् की रस्मय ल्या कहुने लगे । जिन नमय
दक्षराज प्रजापति हुए, ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य देव-नमस्कार दक्ष को
प्रजापतिको का नामक बना दिया ।

जब दक्ष ने इनका ब्रह्मा बचिहार पाया तो उनके मन ने बहुत अधिक
घमण्ड हो गया । (शिवजी ने कहा कि) ममार मे ऐना कोई भी पक्ष नहीं हुआ,
जिनको प्रभुता पाकर अनिमान न हुआ हो ।

दक्ष ने नव मुनियो को बुला लिया और वे बडा गज करते लगे । जो
देवता दक्ष का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदरसहित निम्नित्त किया ।

विशेष—अनुप्राण बलकार ।

मूल—स्मिन् नाग सिद्ध गंधर्वा । वधुन्ह समेत चले सुर सर्वा ।
विष्णु विरंचि महेसु विहाई । चले नकल सुर जान बनाई ॥
नती बिलोके ध्योम विमाना । जात चले सुन्दर विधि नाना ।
सुर सुन्दरी करीह कल गाना । सनत श्रवन छूटहि मुनि ध्याना ॥
पूछेव तव निव कहैउ बखानी । पिता जग्य सुनि कछु हरपानी ।
जौ महेंपु मोहि आयसु देहीं । कछु दिन जाइ रहैं निस एहीं ॥
पति परिस्थाप हृदय दुखु भारी । कहइ न निज अपराध बिचारो ।
बोली सती मनोहर बानी । भय संकोच प्रेम रस सानी ॥

बोहा—पिता भवन दरजव परम, जौ प्रभु आयसु होइ ।

ती मे जाऊँ कृपायतन, सावर देवन सोइ ॥६१॥

शब्दार्थ—सुर जान = सुरापान, विमान । विहाइ = छोड़कर । वधुन्ह
मित्रियाँ । कल = नदुःख । एहीं निम्न = इन्हीं बहाने ।

भावार्थ—स्मिन्, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी
निम्नोन्नि चले । ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी को छोड़कर सभी देवता
अपना-अपना विमान नजान चले ।

सनीजी ने देवता वि जानम ने भाँति-भाँति के सुन्दर विमान चले जा
रहे हैं । देवमुनियों मद्दुर गान गा रही हैं, जिनके कान मे पडते ही मुनियो
के ध्यान छूट जाते हैं ।

जब सनी ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा तब

शिवजी ने सब हाल कहा । पिता के यज्ञ की बात सुनकर वे कुछ प्रसन्न हुयीं और सोचने लगी कि यदि महादेवजी मुझे आज्ञा दें तो कुछ दिन इसी वहाने पीहर जाकर रहूँ ।

उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा दुःख है पर अपना अपराध समझकर कुछ कहती नहीं है । (अन्त में कुछ सोचकर) मतीजी मय, सकोच और प्रेमरस में सनी हुयी मनोहर बाणी से कहने लगी कि—

हे कृपानाथ ! मेरे पिता के यहाँ बहुत बड़ा उत्सव है । स्वामी की आज्ञा हो तो मैं आदरसहित उसे देखने जाऊँ ।

मूल — कहेहु नोक मोरेहुँ मन भावा । यह अनुचित नहीं नेत्रत पठावा ।
 दच्छ सकल निज मुता बोलाई । हमरे वयर तुम्हूँ बिसराई ॥
 ब्रह्मसभा हम सन दुख माना । तेहिँ तें अजहुँ फरहिँ अपमाना ।
 जो बिनु बोलेँ जाहुँ भवानी । रहइ न सीखु सनेहुँ न फानी ॥
 जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ विनु बोलेहुँ न सदेहा ।
 तदपि विरोध मान जहूँ कोई । जहा गएँ कल्यानु न होई ॥
 भाति अनेक सभु समझावा । भावी वस न ग्यानु जर आवा ।
 कह प्रभु जाहुँ जो बिनाँह बोलाएँ । नहिँ भल वात हमारे भाए ॥
 बोहा—कहिँ देखा हर जतन बहूँ, रहइ न दच्छकुमारि ।

दिए मुरय गन सग सब विदा कीन्हूँ त्रिपुरारि ॥६२॥

शब्दार्थ—नीक = अच्छा । नेवत = न्योता, निमन्त्रण । पठावा = भेजा । सन = से । बोले = बुलाये । वानी = मान मर्यादा । गुर = गुरु । गेहा = घर । भाएँ = समझ में ।

भावार्थ—शिवजी ने कहा—तुमने मेरे मन को भाने वाली मुन्दर वात कही, पर (तुम्हारे पिता) दक्षराज ने न्योता नहीं भेजा, यह अनुचित है । दक्ष ने अपनी सब बेटियों को बुलवाया है, पर हमारे नाथ वर हौने के कारण उन्होंने तुमको भी बुला दिया ।

एक दार ब्रह्मार्जी की सभा में उन्होंने (उठकर उठाने आदर न करने से) बुरा माना था, उसी में वे अन्न भी हमारा अपमान करने हैं । हे भवानी ! जो तुम बिना बुलाये जाओगी तो शोच, स्नेह और मानमर्यादा कुछ भी नहीं रहेगा ।

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के परम पिता बुनाये भी जाना चाहिये, इनमें मन्दह नहा है तो भी जहाँ काय विरोध मानता हों, वहाँ जान से भला नही होगी।

शिवजी न अतक प्रवान में ममताया, पर हीनहान के कारण मती के हृदय में बोध नहीं हुआ। शिवजी ने कहा कि जो बिना बुलाये जाओगी तो हमारी नमस्स में अच्छी दान नहीं होगी।

शिवजी ने वृत्त तरह में रहकर देव दिया, पर मती नहीं करी, तब त्रिपुराणि शिवजी ने अपने मुख्य गणों का साथ देकर उनको विदा कर दिया।

मूल—पिता भयन जब गई स्वामी। दच्छ त्रास काहुँ न समजानी।
सादर भलेहि मिलि एक माता। भगिनी नितो बहूत मुत्तुकाता ॥
दच्छ न दछ पूछी कुसलाता। मतिहि दिलीक जरे सब गाता।
सती जाइ देतेउ तय जाया। फलहुँ न दीज तनु कर भागा ॥
तद चित चतेउ जो मंकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समझि उर देहेऊ।
पाछिल बुझु न हृदये अम व्यापा। जस यह भयउ महा परिताया ॥
यद्यपि जग दाखन दुज ताना। सब ते कठिन जाति अवमाना।
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। उहु विधि जननी सोन्ह प्रबोध ॥

दोहा—सिख अपमानु न जाइ सहि, हृदये न होइ प्रबोध।

सकल समहि हठि हृदकि तव, बोली बचन शोष ॥६३॥

शब्दार्थ—जान = दर। भगिनी = बहनें। जागा = यज्ञ। परितारा = दुःख। अवमाना = अपमान, निरादर। हृदकि = टाँट कर।

भावार्थ—जब भयानी पिता के घर पहुँची तब दशरथ के डर से किसी ने उनका सम्मान नहीं किया। केवल एक माता भले ही आदर ने मिली। बहनें बहुत मुन्कराती हुयी मिलीं।

दख ने वृद्ध राजी-नुओ नहीं पूछी, वरन् सती को देखकर उनके मारे अग उल उठे। जब मती ने आकर वज्र दैत्रा तो वहाँ कहीं भी शिवजी का भाग दितायी नहीं दिया।

तब जो शिवजी ने कहा था, वह उनकी नमस्स में आया। स्वामी का

अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। पिछला (पतिपारत्याग का) दुःख भी उनके हृदय में इतना अधिक नहीं ध्याया था, जितना महान् दुःख इस समय (पति-अपमान के कारण) हुआ।

विशेष—मनोवैज्ञानिक दृष्टि में भी यह उचित ही है कि स्त्री को पति के द्वारा अपमानित होने पर भी उतना दुःख नहीं होता, जितना अन्य या अपनों के द्वारा पति का अपमान देखकर होता है।

यद्यपि जगत् में भाँति-भाँति के कारण दुःख हैं, परन्तु जाति-अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सती को बड़ा भारी क्रोध हो आया। माता ने उन्हें अनेक प्रकार में समझाया।

परन्तु उनसे शिवजी का अपमान नहीं सहा गया, इसी से उनके हृदय में (माता के काफी समझाने पर भी) ज्ञान तनिक भी नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक टाँटकर क्रोध-भरे वचन बोली—

विशेष—अनुप्रास बलकार।

मूत्रं—सूनहु सभासद सफल मुनिदा । कही सुनी जिन्ह संकर निदा ।
सो फल तुरत लहव सब काहूँ । भली भाँति पठिताव पिताहूँ ॥
सत, सभु श्रीपति अपवादा । सुनिअ जहाँ तह बसि मरजादा ।
काटिअ तासु जीभ जो बसाई । श्वन सूदि न त चलिअ पराई ॥
जगदातमा महेशु पुरारी । जगत जनक सब के हितकारी ।
पिता भवंमति निदत तेही । दच्छ सुफ संभव यह देही ॥
तजिहउ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू ।
अस कहि जोग अग्नि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

दोहा—सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस ।

जग्य विधस विलोकि भृगु, रच्छा कीन्ह मुनीस ॥६४॥

शब्दार्थ — लहव = पाओगे। बसाई = बस चले तो। पराई = भाग जाय। सुक्र = वीर्य। सभव = उत्पन्न। चन्द्रमौलि = चन्द्रमा की ललाट पर धारण करने वाले। वृषकेतू = महादेव। मख = यज्ञ। खीस = त्रिभुज, नष्ट भृगु = एक गोश्र-प्रवर्तक ऋषि जो ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं।

भावार्थ—हे सभासदों और मुनिदवरो! मुनो, जिन्होंने शिवजी की

निन्दा कही या चुनौती है, उन सबको उसका फल तुरन्त ही मिलेगा और पिताजी भी भली-भाँति पछतायेंगे।

जहाँ मत, शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् की निन्दा सुनी जाय, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो निन्दा करने वाले को जोन काट दे, नहीं तो कान मूँद कर वहाँ से भाग जाय।

त्रिपुरामुर को मारने वाले भगवान् शिवजी सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, वे जपन् के पिता और सबका हित करने वाले हैं। नेग मन्द-बुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है। मेरा यह शरीर दस के ही वीर्य में उत्पन्न है।

इसलिये चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले शिवजी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को शीघ्र त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती ने योगनि में अपना शरीर भस्म कर दिया, इसके सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

ननी का मरना सुनकर जब शिवजी के गण यज्ञ का नाश करने लगे तब यज्ञ का दिग्बन् देखकर मुनिवर भृगुजी ने उनकी रक्षा की।

विशेष—अनुष्ठान अलकार।

मूल—समाचार जब सकर पाए। बोरभद्र करि कोप पठाए।
जग्य विधम जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह विधियत फलु दीन्हा ॥
मं जगन विदित दच्छ गति सोई। जसि कछु समु विमुल कं होई।
यहु इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं सक्षेप बखानी ॥
सती भरत हरि सन बर मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा।
तेहि कारन हिमगिरि गूह जाई। जनमी पारबती तनु पाई ॥
जस ते उमा मूल गूह जाई। सकल सिद्धि सपति तहं छाई।
जह तह मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित दाम हिम-भूधर दीन्हें ॥

दोहा—मदा सुमन फल महिन मव द्रुम नय नाना जानि।

प्राटी नन्दन रीत पर मनि आषन दट्ट भोनि ॥६५॥

शब्दार्थ—दोहा—दोहा नन्दन = धीरभद्र, शिवजी की पत्नी ने उत्पन्न हुए धीर।
प्रिदितन = यज्ञचित। दट्ट = धरदान। हिम भूधर = हिमाचल। नय = नये-
नये। आषन = पान।

भावार्थ—शिवजी ने जब सब समाचार पाये तब क्रोध करके उन्होंने वीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विव्वस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल (दण्ड) दिया।

दक्ष की वही जगत्-प्रसिद्ध दशा हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा जगत् जानता है, इसीलिये मैंने इसका संक्षेप में वर्णन किया है।

सती ने मरते समय भगवान् श्रीराम से यह वर माँगा कि जन्म-जन्म में (अर्थात् प्रत्येक जन्म में) मेरा शिवजी के चरणों में प्रेम बना रहे। इसी कारण उन्होंने पार्वती का शरीर पाकर हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया।

जब से उमा हिमाचल के घर जन्मी, तब से वहाँ सब निद्रियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयीं। मुनियो ने जहाँ-तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमालय ने उन्हें (अपने आश्रम बनाने के लिए) उचित स्थान प्रदान किये।

उस समय नये-नये अनेक प्रकार के सब वृक्ष सदा फल-फूलों से लदे रहने लगे और सुन्दर पर्वत पर बहुत तरह की मणियों की खान हो गई।

विशेष—अनुप्रास, 'मै जग होई' में उदाहरण अलंकार।

मूल—सरिता सब पुनित जलु वहहीं । लग मृग मधुप सुखी सब रहहीं ।
 सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा । गिरि पर सकल छरहिँ अनुरागा ॥
 सोह संल गिरिजा गृह भाए । जिमि जनु राम भगति के पाएँ ।
 नित नूतन मगल गृह तासू । ब्रह्मादिक गावहिँ जसु जासू ॥
 नारद समाचार सब पाए । कौतुहो गिरि नेह सिधाए ।
 संलराज बट आदर फोन्हा । पद पखारि वर आसनु दीन्हा ॥
 नारि सहित मुनि सिग नावा । चरन सलिल रवु भवनु जिवावा ।
 निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना । सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥

दोहा—प्रिकाल्प्य सर्वग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि ।

कारु सुता के दोष गुन मुनिवर हृदय विचारि ॥६६॥

शब्दार्थ—पुनीत = पवित्र । ग्य = पदी । मृग = पशु । मधु = शर्करा । सुखी = शान्त । जनु = भवत । जलु = यज्ञ । सिधाए = पधारि । वर = श्रेष्ठ । दीन् = बुलाकर ।

भावायं—सभी नदियों में निर्मल जल बहने लगा। पशु, पक्षी और शमर नव मुन्नी रहने लगे। नव जीवों ने अपना स्वाभाविक वैर छोड़ दिया और पर्वत पर नमी प्रेम महित रहने लगे।

घर में पार्वतीजी के आ जाने से पर्वत ऐसा सुन्दर लगने लगा जैसे मनुष्य राम की भक्ति को पाकर लगता है। उस (पर्वतराज) के घर नये-नये मंगल होने लगे, जिसका इत्यादि देवता यश गाते हैं।

जब नान्दजी ने ये सब समाचार सुने तो वे ऋषिक में ही (महाराज) हिमालय के घर पधारे। पर्वतराज ने उनका बड़ा आदर किया और चरण धोकर बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया।

पर्वतराज हिमालय ने स्त्री-सहित मुनि के चरणों में चिर नवाया और उनके चरणोदक को नारे घर में छिड़कवाया। पर्वतराज ने (मुनि के आगमन पर) अपने माँभाग्य का बहुत (प्रकार से) वर्णन किया और पृथ्वी को बूझकर मुनि के चरणों में डाल दिया।

हे मुनिवर! आप त्रिकाल (भूत, भविष्य एवम् वर्तमान) के ज्ञाता और तज्ज्ञ हैं, आपकी नवद्वेष पृथ्वी है। इसलिये आप हृदय में विचारकर पृथ्वी के शुण्द्रोप कहिये।

विशेष—अनुभास और उदाहरण अलंकार।

मूल—एहं नुनि दिहसि गूढ मृदु वानी। सुता सुन्हारि सकल गुन वानी।
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उभा अंबिका भवानी ॥
नव लच्छन सपन्न कुमारी। होइहि सतत पियहि पिमारी।
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पेंहहि पितु माता ॥
होइहि पूज्य सकल जग माहो। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही।
एहि कर नाम सुमिरि संसारा। श्रिय चिह्निहि पतिव्रत असिधारा ॥
सैल सुलच्छन सुता सुन्हारी। मुनहु जे अब श्रवण दुई चारी।
अगुन अमान मासु पितु होना। उदासीन सब ससय छोना ॥
दोहा—जोगी जटिल अकाम भव, नगन अमगल वेध।

अतः स्थायी एहि कहें मिलिहि, परी हस्त अमि रेख ॥६७॥

शब्दार्थ—निहसि = हनकर। गूढ = रहस्य युक्त। सपन्न = युक्त।
श्रिय = श्रेय। अहिवाता = नौनाय। जसु = यश। पेंहहि = पावेगे।

त्रिय = स्त्रिया । सुलच्छन्न = सुलक्षणी । ससय छोना - नययहीन । अयाम मन - निष्काम हृदय ।

भावार्थ—नारद मुनि ने हसकर गूढ अभिप्राय को तोगल वाणी से कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणों की गान है । यह मुन्दर, म्भभाव ने ही मुनीन्द्र और समसदार है । उमा, अम्बिका और भवानी इन्हीं नाम हैं ।

कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति को मदा प्रिय होगी । इसका गुहाग मदा अचल रहेगा और इसके माता-पिता भी सब पायेंगे ।

यह सारे सनार में पूज्य होगी और इनकी सेवा करने में तुम भी दुर्लभ नहीं रहेगा । और सनार में इसका नाम का रमररा उनके स्त्रिया पति-प्रसूषी तत्पार की धार पर चट जायेगी ।

हे शिष्यान् ! तुम्हारी कन्या सुलक्षणी है, पर अब हममें जो दो चार धषधुग हैं, उनके भी मुनको । दुष्कीन, पाण-विहीन, मान-विता रतिन, उदा-गीन, सब प्रकार के मरेहो से मुक्त - -

सोनी, सदासनी, निष्कामरय सनारी - सम्पन्न देव पाता, सेवा पति समी मिलेगा । इनके हार में ही ही है । पती है ।

विशेष—'सुन्दर मन्त्र' कर्मा में धरणादान ।' उरि ७७-७८

शब्दार्थ — विलगना = भिन्न-भिन्न । मैना = हिमाचल की पत्नी, पार्वती की माता । भाषा = वचन । दुराई = छिपाली । उद्यम = गोद ।

भावार्थ — नारद मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय में मत्प्राप्त कर दम्पति को दृढ़ हुआ पर उमाजी प्रमत्त हुई । नारदजी ने भी इस रहस्य को नहीं जाना, क्योंकि सबकी बाहरी दशा एक-ही होने पर भी भीतरी समझ भिन्न थी (अर्थात् दम्पति के मुह पर दुख का और उमा के मुह पर हँस का भाव था पर नारदजी केवल भाव को जान सके, उमा के भेद नहीं समझे ।

सब नखिया, पार्वती, पर्वतराज हिमवान् और मैना (पार्वती की माता) सभी के शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में जल भर आया । देवर्षि का कहना असत्य नहीं होगा, यह विचार कर पार्वतीजी ने उन वचनों को अपने हृदय में रख लिया ।

उमाजी का महादेवजी के चरकमलो में स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मन में यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है । कुशवस्तर नमस्कार कर उन्होंने अपने पैरों को छिपा लिया और फिर वे नखों की गोद में जाकर बैठ गयीं ।

देवर्षि की वाणी झूठा नहीं होती, यह विचार कर मैना, हिमवान् और चतुर नखिया चिन्ता करने लगीं । फिर महाराज हिमाचल ने हृदय में धीरे-धीरे धरकर नारदजी से कहा है नाथ ! कहिए, अब क्या उपाय किया जाय ?

मुनिराज ने कहा—हे हिमवान् ! मुनो, विवाता ने जो कुछ लज्जा पर लिज दिया है उसको देवता, दैत्य, मनुष्य नाग और मुनि कोई भी नहीं निटा सकता ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार ।

मूल — तदपि एक में कहुँ उपाई । होइ करे जो दंड सहाई ।
जस वध में बरनेउ तुम्ह पाहीं । मिलिहि उमहि नस संसय नाहीं ॥
जे जे वर के दोष बखाने । ते सब सिव पहि में अनुमाने ।
जो विवाह संकर सन होई । दोषउ गुन सम कह सब कोई ॥
जो अहि-सेल सपन हरि करहीं । वध कछु तिन्ह कर दोष न धरहीं ।
भानु कृसानु-सब रस पाहीं । तिन्ह फहें मन्ह कहत कोउ नाहीं ॥

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई । सुरसरि कोड अपुनीत न कहई ।
ममश्य कहूँ नहिं दोष गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाई ।

दोहा - जो अस हिंसिया करहिं नर, जड़ विवेक-अभिमान ।

परहिं कल्प भरि नरक महूँ जीव कि ईस समान ॥६९॥

शब्दार्थ—दंड = दंड । वर = वर । पाही = पास । तम = वैसा ही ।
परिह = पास । कुसानु = अग्नि । अपुनीत = अपवित्र । नाई = तरह । हिंसिया =
ईर्ष्या होड । महूँ = मे ।

भावार्थ—तो भी मे एक उपाय बतलाता हूँ । यदि देव सन्नायना करें
तो वह मिट्ट हो सकता है । जैसा वर मंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है वैसा
ही उमा को मिलेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।

यह मंने वर के जो जो दोष बतलाये हैं, मेरे अनुमान से वे सब शिवजी
में पाये जाते हैं । यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाय तो सब योग दोषों को
भी गुण कहेंगे ।

जैसे भगवान् विष्णु मर्ष की सेज पर शयन करते हैं, तो भी पण्डितजन
उनको कोई दोष नहीं देते । सूर्य और अग्निदेव अच्छे बुरे-सर्भी रमों का भक्षण
करते हैं, पर उनको कोई बुरा नहीं कहता ।

गंगाजी में शुभ और अशुभ सब पानी बहता है, पर उनको कोई अप-
वित्र नहीं कहता । (इसी प्रकार हे राजन् !) सूर्य, अग्नि और गंगाजी की
भाति समर्थ को कुछ दोष नहीं लगता ।

यदि ब्रह्म मनुष्य ज्ञान के अभिमान से देवनाभो की बराबरी करने हैं
(कि जैसा देवताओं ने किया वृत्ता ही हम भी करेंगे) तो वे कल्प भर के लिए
नरक में पड़ते हैं । भला, कहीं जीव भी ईश्वर के बराबर हो सकता है ?

मूल— सुरसरि जल कृत दाशनि जाना । कबहु न सात करहिं तेहिं पाना ।
सुरसरि मिलेँ सो पावन जैसे । ईस अनोसहि अतर तैसे ॥
सभु सहज समरथ भगवाना । एहि विवाहें सब बियि कल्पाना ॥
दुराराध्य पं अहहिं महेश । आस्तोष पुनि किए बन्धु ॥
जो तपु करे कुनारि तुम्हारी । भाविड मेडि ह्मरे त्रिपुरारि ॥
पछपि वर अनेक जग माही । एहि कह सिध सजि दूनर नाही ॥

वर दायक प्रतनारति भजन । कृपासिधु सेवक मन रंजन ।
इच्छिन फल विनु निव अवराधे । लहिन न कोटि जोग जप साथे ॥

बोहा—जम कहि नारद तुमिरि हरि, गिरिजहि दीहि बसोत ।
होइहि यह कल्याण अव सतय तजहु गिरीत ॥७०॥

शब्दायं—वारति = माराध । स्नीसहि = जीव मे (जो ईश न हो, वह अनीस)
अनर = भेद । दुराराध्य = जिसकी माराधना बही कठिन हो । स्नीहि = है ।
अनुतोष = शीघ्र ही मनुष्ट हो जाने वाले । क्लेश = तप, क्लेश । न विड =
होनाहा जो भी । एहि कहै = इसके लिए । प्रतानति = (प्ररात + वारति)
अरपायन = दुःख । अज = प्रमत्त करना । अवराधे = माराधना किये ।

भाषार्थ :—मदिरा जो गगाजल मे बनी हुई जानकर भी सतलोग
जमी इच्छा पान नहीं करते (क्योंकि पान करने से दोष लगता है), पर वही
गगाजी मे मित्र जाने पर जैसे पवित्र हो जाती है (या उससे गगाजी मे मिलने
पर भी गगा पवित्र बनी रहती है, यद्यत् उसको दोष नहीं लगता), जीव और
अनर मे भी वैसा ही भेद है (जीव को एक अनूचित वात मे भी दोष लग
जाता है न किशन को वनेज अनुचित बनों मे भी दोष नहीं लगता) ।

विशेष — उदाहरण और अनुप्रास भ्रमकार ।

मूल—कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनुहु जस भयऊ ।
 पतिहि एकांत पाइ कहू मँना । नाथ न मै समुझे मुनि यँना ॥
 जौ घर बर पुलु होइ अन्नपा । करिअ विवाह सुता अनुरूपा ।
 न त कन्या बर रहउ कुवारी । कत उमा मम प्रानपिभारी ॥
 जौ न मिलिहि बर गिरिजहि जोगू । गिरि जड सहज कहिहि सबु लोगू ।
 सोइ बिचारि पति फरेहु विवाहू । जेहि न बहोरि होइ उर दाहू ।
 अस कहि परी चरन धरि सीसा । बोले सहित सचेह गिरिसा ॥
 बर पावक प्रगटं ससि माहीं । नारद वचनु अग्यथा नाहीं ॥

दोहा—प्रिया सोच परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान् ।

पारवतिहि निरमयउ जेहि, सोइ करिहि कल्याण ॥७१॥

शब्दार्थ :—आगिल = आगे का । भयऊ = डूबा । बर = बर, चाहे, मले हो । कत = स्वामी, पति । जड = मूर्ख । बहोरि = फिर । गिरिसा = हिमाचल । परिहरहु = छोड़ दो । निरमयउ = बनाया, रचा ।

भावार्थ—यो कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गये । अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो । पति को एकान्त में पाकर मैना ने कहा—हे स्वामी ! मैंने मुनि के वचनों का अर्थ नहीं समझा ।

जो हमारी कन्या के अनुकूल, घर, बर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिये, नहीं तो लडकी चाहे कुमारी ही रहे, क्योंकि हे कत ! उमा मुझे प्राणों से प्यारी है ।

यदि पार्वती के योग्य बर नहीं मिला तो सब लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से जड (मूर्ख) होते हैं । इसलिए हे स्वामी ! सोच-विचार कर ही विवाह कीजियेगा, जिससे फिर पीछे हृदय में सन्ताप न हो ।

ऐसा कहकर मैना पति के चरणों में सिर रखकर गिर पड़ी । पर्वतराज ने प्रेम से कहा—चाहे चन्द्रमा में (अमृत के बदले) अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारदजी के वचन असत्य नहीं हो सकते ।

हे प्रिय ! सब सोच छोड़कर श्रीभगवान् का स्मरण करो, जिन्होंने पार्वती को बनाया है, वे ही कल्याण करेंगे ।

मूल—अब जी तुम्हें सुता पर नेह । तौ अस जाइ सिखावतु देह ।
करं सो तपु जेहि मिलीह महेशू । आन उपायं न मिटिहि कलेसू ॥
नारद वचन सगभं सहेतू । सुन्दर सब गुन निधि वृषकेतू ।
अस विचारि तुम्ह तजहु असका । सबहि भाँति संकरु अकलंका ॥
सुनि पति वचन हरपि नन माहीं । गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ।
उमहि विलोकि नयन भरे बारी । सहित सनेह गोद बँठारी ॥
बारहि बार तेति उर लाई । गदगद कठ न कछु कहि जाई ।
जगत मातु सर्वंग्य भवानी । मातु सुखद बोलीं मृदु वानी ॥

दोहा—सुनहि मातु में दीख अस, सपन सुनावउ तोहि ।

सुन्दर गौर सुविप्रवर अस उपदेसेउ मोहि ॥७२॥

शब्दार्थ—सिखावन = शिक्षा । नगभं = रहस्ययुक्त । सहेतू = कारण सहित
वृषकेतू = शिव । अनका = सदेह । पाही = पास ।

भावार्थ—अब जो तुम्हें पुत्री से प्रेम है तो जाकर उसे यह शिक्षा
दो कि वह ऐसा तप करे जिससे शिवजी मिल जायें । अन्य किसी उपाय से
यह कलेश (दुःख) नहीं मिटेगा ।

नारदजी के वचन रहस्यमय और सकारण हैं । शिवजी सुन्दर और सब
गुणों के भण्डार हैं । यह विचारकर तुम सन्देह को छोड़ दो, क्योंकि शिवजी
सब प्रकार दोषरहित हैं ।

पति के वचन नून मन में प्रसन्न होती हुई मैना उठकर नुरन्त पार्वती
के पास गई । पार्वती को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आये (और
उमड़ते हुए वास्तव्य के कारण) उसे स्नेह के नाथ गोद में बैठा लिया ।

(और) शर-शर उसे हृदय से लगाने लगी, पर गला भर जाने के
कारण टूट रहा नहीं जाता । जगत् की माता और सर्वज्ञ पाशंतीजी (माता
के मन की दशा को जानकर) माता को मुक्त देने वाली कोमल बारी से बोली—

हे माँ ! नून, मैंने एक स्वप्न देखा है, वह तुझे सुनाती हूँ कि एक
सुन्दर गौशर्षप और श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है—

मूल—करहि जाइ तपु संलकुमारी । नराद कहा सो सत्य विचारी ॥
मातु पितहि पुनि यह मन भावा । तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥

तप बल रचइ प्रपंच विधाता । तपबल विष्णु सकल जग त्राता ॥
 तपबल सभु करहि सघारा । तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥
 तप अघार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तपु अस जिय जानी ॥
 सुनत वचन विसमित महतारी । सपन सुनायउ गिरहि ह्कारी ॥
 मातु पितहि बहुविधि समुझाई । धली उमा तप हित हरषाई ॥
 प्रिय परिवार पिता अरु माता । भए विकल मुख आव न वाता ॥

दोहा—वेदसिरा मुनि आइ तव, सबहि कहा समुझाई ।

पारवती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ ॥७३॥

शब्दार्थ—भावा = अच्छा लगा । प्रपञ्चु ससार । त्राता = रक्षा करता है । गिरिहि = हिमाचल को । ह्कारी = बुला कर । वेद सिरा - वेद सिरा मार्कण्डेय ऋषि का पुत्र ।

भावार्थ—हे पार्वती ! तारदजी ने जो कहा है उसे सत्य समझ कर तुम जाकर तप करो । फिर यह बात तुम्हारे माता-पिता को भी अच्छी लगी है, क्योंकि तप सुखदायक और दुख-दापो को नाश करने वाला है ।

तप के बल से ही ब्रह्मा जगत को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे ससार का पालन करने हैं । तप के बल से ही भिवजी नहार करते हैं और तप के बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं ।

हे भवानी सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है । ऐसा मन में जानकर तुम जाकर तप करो । यह सुनकर माता को बड़ा अचरज हुआ और उसने हिमवान को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया ।

माता-पिता को अनेक प्रकार से समझाकर उमा प्रमत्त होकर तप करने के लिए चली । प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गये और किसी के मूँह में बात नहीं निकलती ।

तब वेदसिरा मुनि ने आकर सबको समझाकर कहा । पार्वती की महिमा सुनकर उनको ज्ञान हुआ और वे शान्त हुए ।

मूल—उर धरि उमा प्रानपति चरना । ज ब विपिन लागी तपु करना ॥

अति सुकुमार न तनु तप जोगू । पति पद सुनिरि तजेउ सब भोगू ॥

वित नव चरन उपज अनुरागा । बिसरी देह तर्पहि मनु लागा ॥

सबत महम मूल फल छाए । सागु छाइ मत घरप गवाए ॥
 कछु दिन भोजनु वारि बतासा । किए कठिन कछु दिन उपवासा ॥
 बेल पानि महि परइ सुखाई । तीनि सहस सबत सोइ छाई ॥
 पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तव भयउ अपरना ॥
 देखि उमहि तप छीन तरीरा । ब्रह्मगिरा नै गगन गभीरा ॥
 दोहा—भयउ मनोरथ नुफल तव, सुनु गिरराजकुमारि ।

परिहृय दुसह फलेस नच, अब मिलिहहि त्रिपुरारि ॥७४॥

शब्दार्थ—दिपिन = वन । मुकुमार = कोमल । वारि = जल । बतासा =
 बाधु । देव-पति = गिन्ध्याप्र । सुखानेउ परना = नृसे पत्ते । अपरना = अपेण ।
 रान = क्षीण । परिहृय = न्याग दे ।

आवे पिता बोलावन जबहीं । हठ परिहरि घर जाएहु तवहीं ॥
 मिर्लीहें तुम्हहि जव सप्त रिपोसा । जानेहु तव प्रमान वागीसा ॥
 सुनत गिरा बिधि गगन वखानी । पुलक गात गिरिजा हरपानी ॥
 उमा चरित सुन्दर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥
 जब तें सती जाइ तनु त्यागा । तव तें मिव मन भयउ विरागा ॥
 जपहि सदा रघुनायक नामा । जह तहं सुनहि राम गुन प्राप्ता ॥
 दोहा—चिदानंद सुखधाम सिव, विगत मोह मव काम ।

विचरहि महि धरि हृदय हरि, सकल लोक अभिराम ॥७५॥

शब्दार्थ—सतत = निरन्तर । सुचि = पवित्र । वागीना = ब्रह्मवाणी ।
 वखानी = कही गई । विगत = रहित । अभिराम = मुन्दर, आनन्द देने वाले ।

भावार्थ—हे भवानी ! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर
 ऐसा कठोर तप किसी ने नहीं किया । अब तुम इस श्रेष्ठ ब्रह्मा की वाणी
 को सदा सच्ची और निरन्तर पवित्र जानकर अपने हृदय में धारण करो ।

जब पिता बुलाने आवें, तब हठ छोड़कर घर चली जाना और तब
 तुम्हें सप्त ऋषि मिले तब इस वाणी को सच्चाई जान लेना ।

आकाश से कही हुई ब्रह्मा की वाणी को सुनते ही पार्वतीजी
 प्रसन्न हो गयी और हर्ष से उनका शरीर पुलकित हो गया । (याज्ञवल्क्यजी
 भरद्वाज मुनि से बोले कि) मैंने उमा का सुन्दर चरित्र सुनाया, अब शिवजी
 का सुहावना चरित्र सुनो ।

जब से सती ने जाकर शरीर त्याग किया, तब से शिवजी के मन में
 वैराग्य हो गया (अर्थात् उन्होंने सब सासारिक भोग छोड़ दिये) । वे मदा
 श्रीराम का नाम जपने लगे और जहा-तहाँ श्रीराम के गुणों की कथाएँ सुनने
 लगे ।

मोह, मद और काम से रहित, चित्तानन्द, सुख के धाम शिवजी सब
 लौको को आनन्द देने वाले भगवान श्रीहारे (श्रीराम) को हृदय में धारण कर
 पृथ्वी पर विचरने लगे ।

विशेष—प्रथम चौपाई में वत्यनुग्राम अलंकार ।

मूल—कतहु मुनिन्ह उगदेसहि ग्याना । कतहु राम गुन करहि बखाना ॥
 जदपि अकाम तदपि भगवाना । भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥
 एहि विधि गयउ कालु यह बीती । नित नै होइ राम पद प्रीती ॥

नेनु प्रेनु मकर कर वेवा । अविचल हृदयं भगिनि कै रेखा ॥
 प्रगट्टे रामु कृत्यम इराना । रूप जीत निधि तेव विनाला ॥
 बहु प्रचार मंकरहि मराहा । तनु दिनु अन द्रु को निरवाहा ॥
 बहु विधि राम निवहि अनुसावा । पारवती कर जन्म मुनावा ॥
 अनि पदानी भगिना कै करनी । विस्तर महिन करनिधि बरनी ॥

श्लोक—अब विनयी नम मुनहु शिव जी नों पर निज नेहु ।

जाइ निवाहू नैलजहि यह मोहि नामे देहु ॥३६॥

शब्दार्थ—नै = नहीं । हृदय = उत्तरांग नामके वस्त्र । निरवाहा =
 निमा सज्जा है । विस्तर महिन = विस्तारपूर्वक । अनुसाहि = पारवती को ।

भावार्थ :- के बड़ी दो मुनिजों को जान का उज्ज्वल करते और वहीं
 योगम के मुनिों का ब्रह्मत्व करने थे । यहजि शिवजी जानी और कामनामुक्त
 है तो भी के भगवान अपने भक्त (पुत्री) के विरह के दुःख में दुखी हो रहे हैं ।

इस मति रहने का सम्य द्वाय गया और शिवजी की श्रीराम के
 चरणों में नम्र नमो प्रीति होने लगी । शिवजी के कठोर निधन, अत्य प्रेम
 और उनके हृदय में नक्ति की अटल रेखा देखकर—

उपचार के मानते वाले (क्योंकि उनके चार ही पुत्री का त्याग हुआ
 था) हुआतु रूप और शील के मन्डार, महान् त्रैलोक्य भगवान श्रीराम प्रगट
 हुए । उन्होंने अनेक प्रकार से शिवजी की सराहना की और कहा कि आपके
 दिना ऐसा कठिन इत नांन दिना सज्जा है ।

योगम ने अनेक प्रकार से शिवजी को समझाया और पारवती के जन्म
 का हाल सुनाया (जि पुत्री ने हिन्वान् के यहा जन्म लिया है) और फिर
 हृदयान्धि योगम के पारवतीकी की अत्यन्त प्रीति करने (क्योंकि तुम्हारा) का
 विस्तारपूर्वक वचन किया ।

हे शिवजी ! अब मेरी विनयी मुनिजें—जो मुझ पर आपके
 प्रेम हैं तो कष्ट पारवती के विवाह कर लीजिए और यह बात मुझे मानी
 दीजिए ।

विशेष . —अनुगत उपचार ।

मूल—वह निद स्वयं उचित अक्ष नहीं । नाथ बचन पुनि नेहि न चाहौं ।

मिर धरि आयमु हरिल तुम्हांग । पद्म धनु यह नाथ हमारा ॥

मातु पिता गुरु प्रभु के बानी । बिनाहि विचार करिअ सुन जानी ॥
 तुम्ह सब भाति परम हितकारी । अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥
 प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना । भक्ति विवेक धर्म जुत रचना ॥
 कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ । अब उर राखेहु जो हम फहेऊ ॥
 अन्तरधान भए अस भाषी । सकर सोइ मूरति उर राखी ॥
 तयाहि सप्तरूपि सिव पहि आए । बोले प्रभु अति बचन सुहाए ॥

दोहा—पारवती पहि जाइ तुम्ह, प्रेम परिच्छा लेहु ।

गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, द्वरि करेहु सदेहु ॥७७॥

शब्दार्थ—आयसु = आज्ञा । अन्तरधान भए = गायब हो गये । गिरिह
 = हिमाचल को । प्रेरि = कहकर । पठएहु = भिजवाइए ।

भावार्थ —शिवजी ने कहा—यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामी
 का वचन भी टाला नहीं जा सकता । हे नाथ ! मेरा यही परम धर्म है कि
 मैं आपकी आज्ञा को सिर पर रख कर उसका पालन करूँ ।

माता, पिता, गुरु और स्वामी की वाणी को बिना ही विचारे धुन
 नमस्कार मानना चाहिये । फिर आप तो सब भाति मेरे परम हितकारी हैं ।
 हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है ।

शिवजी के भक्ति, विवेक और धर्म ने युक्त वचन सुनकर भगवान्
 श्रीराम को नतोप हुआ और उन्होंने कहा—हे हर ! आपना (इस शरीर से
 अब नती के साथ भेंट न होने का) प्रण पूरा हुआ, अब हमने जो कहा है ।
 उसे हृदय में रचना ।

ऐसा रहकर श्रीराम अन्तर्ध्यान हो गये और शिवजी ने उनकी उत्ती
 मूर्ति को हृदय में रख लिया । उनी समय सानो श्रुति गिरिजी के पास आये ।
 प्रभु महादेवजी उनमें अत्यन्त मुताबने वचन बोले—

आप लोग पार्वती के पाप पावन उनके प्रेम की परीक्षा
 लीजिए और हितावत जो पाप पार्वती को धर्म भिन्वकर उनसे (पार्वती
 के) गदेह को दूर कीजिये ।

मूल—रिविन्दु गौरि देतो तह कंठी । मूरनिमंत तपन्या जंठी ॥

बोले मुनि मनु संकुनारी । करतु बचन पारन तनु भारी ॥

देहि अयराधत का सुन्दर । हम सन मन्व मरनु बिन दूर ॥

फहत बचन मनु अति सकुचाई । हसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ।
मनु हठ परा न मनुइ सिखावा । चहत वारि पर भीति उठावा ।
नारद कहा सम्य सोइ जाना । त्रिनु पलन्हु हम चर्हाह उठाना ।
देसहु मुनि अप्रिवेकु हकारा । चाहिअ नदा सिवहि भरतारा ।

दोहा—सुनत बचन विहसे रिपय, गिरिसभव तव देह ।

नारद फर उपदेसु मूनि, कहहु बसेउ कितु गेह ॥७८॥

शब्दार्थ—गौरि = पार्वती को । मनु = भेद । जड़ताई = मूर्खता ।
सिखावा = उपदेश । नगतरा = पति । गिरि सभव = पहाड़ ने उत्पन्न ।
विमु = विस्का ।

भावार्थ—गिरियो ने (वहाँ जाकर) पार्वती को कैसी देखा जेने
मूर्तिमान नपन्या ही हो । मुनि वामे-हे शैलकुमारी । मुनो, तुम कित्त बरस
धरना भारी नप न्ग रही हो ?

तुम किसकी जागधना करती हो और क्या चाहती हो ?
अपना मन्वा भेद हमने क्या नहीं कहती ? (पार्वती ने कहा) वान (भयं) कहने
नन बहुत मृच्छाना है । मेरी मूर्खता मुनवर आप लोग हमने ।

मन जो हठ जो ही गया है, वह किसी तरह की मिठा नहीं मुनता
की पानी वग दीवार उठाना चाहता है । (अर्थात् अमन्भव गयं अर्थात्
चाह्य) । नारदनी ने जो कहा था उसे ही मने मन्व मान लिया है और मैं
दिना मने ही उठाने चाहती हूँ । हे मुनियों ! आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि
मैं नरा गिरनी जो पति बनाना चाहती हूँ ।

कहहु कवन सुखु अस वरु पाएँ । भल सुलिहु ठग के बौराए ॥ -
 पच कहे सिवें सती बिचाही । पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही ॥
 अब सुख सोवत सोचु नहि, भीख मागि भव खाहि ।
 सहज एकाकिन्ह के भवन, कवहु कि नारि खटाहि ॥७९॥

भावार्थ—चिन्ह = चिन्ह । सरिन = समान । व्याली = सापो को लपेटे रखने वाला । वौराए = बहकाने पर । अवडेरि = त्यागकर । घाला = नष्ट किया । भव = महादेव । खटाहि = टिकना ।

शब्दार्थ—नारदजी ने जाकर दक्ष के पुत्रों को उपदेश दिया था जिससे उन्होने फिर (वन से) लौटकर घर का मुह भी नहीं देखा । उसने ही चित्रकेतु का घर विगाडा और (उनके उपदेशों से) हिरण्यकशिपु का फिर ऐसा ही हाल हुआ ।

विशेष - अन्तर्कथाएँ - १. दक्ष प्रजापति ने अपने पुत्रों से सृष्टि रचने के लिये कहा । वे इसके लिए तप करने वन में गये । वहाँ नारदजी के उपदेश से सब विरक्त हो गये और उनमें से एक भी घर नहीं लौटा । तब दक्ष ने नारद को शाप दिया कि तुम दो घड़ी से अधिक कहीं नहीं ठहरोगे ।

२ चित्रकेतु के करोड़ रानिया थी, पर पुत्र एक भी नहीं था । अ गिरा मुनि के आशीर्वाद से सबसे छोटी रानी के गर्भ में पुत्र हुआ, पर ईर्ष्याविषय अन्य सब रानियों ने विष देकर पुत्र को मार डाला । नारदजी ने आकर उसे पुनर्जीवित कर दिया । बालक ने अपने पूर्व जन्म का हाल नुनाकर राजा को उपदेश दिया । इस तरह उसी के पुत्र से उपदेश कराकर नारद ने चित्रकेतु की बुद्धि विगाड दी । वह विरक्त होकर वन में तप करने चला गया ।

३ जब हिरण्यकश्यप की स्त्री गर्भवती थी तब एक दिन नारदजी ने आकर उसे ज्ञान का उपदेश दिया । इसने गर्भ के बालक को ज्ञान हों गया जो प्रह्लाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

जो स्त्री-पुरुष नारदजी की शिक्षा सुनते हैं वे घर-दर छोड़ अश्वमेध ही भित्तारी हो जाते हैं । उनका मन तो बपटी है, पर नरीन मतजनों का ना बीखता है । वे सभी को अपने समान (भित्तारी) बनाना चाहते हैं ।

12] उनके वचनों पर विश्वास करके ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव
 11, गुण-रहित, निर्लज्ज, बुरे बेषवाला, तरुपालो की माला
 पहनता 11, कुलहीन, बिना घर का, नग और शरीर पर सापो को लपेटे
 रखने वाला है ।

ऐसा पति पाने ने कही तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? तुम उस ठग
 (नारद) के बहूनाचे में आकर डूब भूली । पहले पचों के नहूने में शिव ने सति
 ने विवाह किया था, लेकिन फिर उसे त्यागकर भरवा टाला ।

अत्र शिव को कोई चिन्ता नहीं रही, वे भीख मागकर खाते हैं और
 भुज ने मोने हैं । ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वाली ने घर भी क्या कमी
 स्थिया निम्न नकती है ?

विशेष—अनुप्राण अलंकार । नारद जी घर फोड़ने के लिए बदनाम
 है । दक्ष के पुत्र नारद जी के उपदेश से विरक्त होकर ससार-त्यागी एवं
 सन्तानोत्पत्ति से विमुख हो गये थे । चन्द्रकेतु लक्ष्मण का पुत्र था, यह कारापथ
 में राज्य करता था । नारद जी ने घर में फूट फैला कर इनके घर को चौपट
 कर दिया ।

मूल—अजहं मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहु बर नीक विचारा ॥
 अति सुन्दर सुखि सुख बसुसीला । गावहि बंदे जासु जस लीला ॥
 दूषन रहित सकल गुन रासी । श्रीपति पुर बंकुठ निवासी ॥
 अस बर तुम्हहि मिलाउव आनी । सुनत बिहसि कह वचन भवानी ॥
 सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट छूट बर देहा ॥
 कमकउ पुनि पपान ते होई । जारेहु सहज न परिहर सोई ॥
 नारद वचन न में परिहरव । बसत भवनु उजरउ नहि डरउं ॥
 गुरु के वचन प्रतीति न नेही । सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ॥
 दोहा—महादेव अवगुन भवन, विष्णु सकल गुन धाम ।

जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही जन काम ॥८०॥

शब्दार्थ—अजहं = अदानी । नीक बर = अच्छा बर । श्रीपति = लक्ष्मी
 का पति । मिलाउव = मिला देंगे । आनी = लाकर । गिरिभव = पर्वत से
 उतरन । अनरन = मोना भी । सिधि = सिद्धि ।

भाषार्थ — अदानी हमारा कहा भानी, हमने तुम्हारे लिए अच्छा

वर सोचा है। वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, मुख का देने वाला और सुशील है, उसके यश और लीला को वेद भी गाते हैं।

वह दोपो में रहित, सब गुणों की खान, सपत्तिशाली और वैकुण्ठ में रहने वाला है। हम ऐसे वर को लाकर तुम से मिला देगे। यह सुनते ही पारवतीजी हँसकर बोली -

आपने सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है। इसलिये हठ नहीं छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सोना भी पत्थर में पैदा होता है, इसी कारण वह जलाये जाने पर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नहीं छोड़ता।

मैं नारदजी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं होता, उसको सुख और मित्रि स्वप्न में भी सुलभ नहीं होती।

महादेव अवगुणों के घर है और विष्णु मय गुणों के धाम है, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है।

विशेष - अनुप्रास और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल-जो तुम्हें मिलतेहुँ प्रथम नुनीसा । सुवर्तिउं सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
 अब मैं जन्मु संभु हित हारा । को गुन दूषन करे बिचारा ॥
 जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किए वरेपी ॥
 तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । वर कन्या अनेक जग माहीं ॥
 जन्म कोटि लागि रगर हमारी । वरजं संभु न त रहउं कुआरी ॥
 तजउं न नारद कर उपवेशु । आपु कहाँह सत वार महेसु ॥
 मैं पा परउं कहइ जगदम्बा । तम्ह गूह गवनहु भयउ बिलवा ॥
 देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदम्बिके भवानी ॥

बोहा-तुम्ह माया भगवान् सिव, सफल जगत पितु मातु ॥

नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरपत गातु ॥८१॥

शब्दार्थ - वरेसी = वरेखी, विवाह की वात्चीत। कौतुकिअन्ह - खिल-वाह करने वाले। रगर - हठ।

भावार्थ - हे मुनिश्वरो ! यदि आप पहले मिलने, तो आपकी गिना

सिर-माथे रखकर सुनती । परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिए हार चुकी । अब गुण-दोषों का विचार कौन करे ?

और यदी आपके हृदय में अधिक हठ है तथा विवाह की बातचीत (बरेखी) किये बिना रहा नहीं जाता, तो ससार में चर-कन्या बहुत है । खिलवाड़ करने वाले को आलस्य तो होता नहीं, (कटी और जाकर ही विवाह की चर्चा कीजिये)

मेरा तो करोड़ों जन्मों तक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजी को बरूंगी, नहीं तो कृपारो ही रहूंगी । यदि स्वयं भगवान् शिवाजी भी सौ बार कहें, तो भी नारदजी के उपदेश को नहीं छोड़ूंगी ।

जगत् की माता पार्वतीजी कहने लगी—हे मुनीश्वरो । मैं आपके पैरो पडती हूँ । आप अपने घर जाइये, बडी देर हो गई । शिवजी मे पार्वती का ऐसा प्रेम देखकर जानी मुनि बोले—हे जगत् की माता भवानो ! तुम्हारी बार-बार जय हो ।

आप माया और शिवजी ईश्वर हैं । आप दोनों सकल विश्व के माता-पिता हैं । (यो कहकर) मुनि पार्वती के चरणों में सिर नवाकर चल दिये । उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे ।

विशेष ~ अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार

मूल—जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए । करि बिनती गिरजाहि गूह ल्याए ॥
 बहुरि सप्तरिधि तिथि पाहि जाई । कथा उमा के सकल सुनाई ॥
 भए भगन सिव सुनत सनेहा । हरयि सप्तरिधि गवने गेहा ॥
 मनु धिर करि तब संभु सुजाना । लगे करन रघुनायक ध्याना ॥
 तारकु अनुर भयल तेहि काला । भुज प्रताप बल तेज विसाला ॥
 तेहि सब लोक लोकपति जोते । भए देव सुख संपति रीते ॥
 अजर अमर सो जीति न जाई । हारे सुर करि विविध लराई ॥
 तब धिरचि सन जाइ पुकारे । देखे विधि सब देव दुखारे ॥
 दोहा—सब मन कहा दुसाइ विधि दनुज निघन तब होइ ।

मनु सुक्र ननुत सुत, एहि जोतइ रन सोइ ॥८२॥

शब्दार्थ — गिरजाहि = पार्वती को । विरची = ब्रह्मा । बुसाइ = ममसा कर । निघन = मृत्यु । सनु सुक्र समूत = महादेव जी के वीर्य में उत्पन्न ।

मुनियो ने जाकर हिमवान को भेजा और वे विनती करके पार्वती को घर ले आये, फिर सप्तऋषियो ने शिवजी के पास जाकर उमा की सारी कथा सुनायी ।

पार्वती का प्रेम सुनते ही शिवजी आनन्दमग्न हो गये और सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर चले गये । तब सुजान शिवजी मनको स्थिर करके श्रीराम का ध्यान करने लगे ।

उसी समय तारक नाम का असुर हुआ, जिसकी भुजाओ का प्रताप, बल और तेज बहुत बडा था । उसने सब लोक और लोकपालो को जीत लिया तथा सब देवता सुख और सम्पत्ति से विहीन हो गये ।

वह अजर-अमर था, इसलिये किसी से जीता नहीं जाता था । जब देवता उससे अनेक प्रकार से युद्ध करके हार गये, तब उन्होने ब्रह्माजी के पास जाकर पुकार मचायी । ब्रह्माजी ने सभी देवताओ को दुखी देखा ।

ब्रह्माजी ने सब देवताओ को समझाकर कहा—इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिवजी के बीर्य से पुत्र उत्पन्न हो । वही इसको लडाई में जीतेगा ।

विशेष - 'लोक लोकपति' में लाटनुप्रास । 'समु सुक सभूत सुत' में वृत्यनुप्रास । 'अजर अमर' में छेकानुप्रास ।

मूल—मोर कहा सुनि करहु उपाई । होइहि ईस्वर करिहि सहाई ॥
 सती जो तजी दच्छ मख देहा । जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥
 तेहि तपु कीन्हु संभु पति लागी । सिव समाधि बैठे सबु त्यागी ॥
 जदपि अहइ असमंजस भारी । तदपि वात एक सुनहु हमारी ॥
 पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं । करै छोभु सकर मन माहीं ॥
 तब हम जाइ सिवहि सिर नाई । करवाउव बिवाहु बरिआई ॥
 एहि विधि मलेहि देवहित होइ । मत अति नीक कहइ सबु कोई ॥
 अस्तुति सुरन्हु कीन्हि अति हेतु । प्रगटेउ विषमवान क्षपकेतु ॥

दोहा—सुरन्हु कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्हु विचार ।

संभु विरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार ॥८३॥

शब्दार्थ—मोर = मेरा । मख = यज्ञ । असमजस = द्विविधा । छोभु =

सोम, हलचल । करवाडव = करवा दोगे । बरि बाई = जवरदस्ती । विपनवान = पाँच बाग धारण करने वाला । जपकेतू = जिनजी ध्वजा में मछली का चिन्ह है - कामदेव । मार = कामदेव ।

भावार्थ - मेरा कहा सुनकर उपाय करो । ईश्वर सहायता करोगे तो काम न जायेगा । मनो न जो दक्ष के मज में शरीर त्याग दिया था, उन्होंने अब हिमाचल के घर जाकर जन्म ले लिया है ।

उसने शिवजी को पति बनाने के लिए तप किया है और इधर शिवजी मज त्यागकर मनावि में बैठे हैं । यद्यपि इनमें बड़ी भारी दुविधा है (क्योंकि महादेवजी की मनावि का छूटना कठिन है), तो भी हमारी एक बात सुनो ।

तुम जाकर कामदेव को शिवजी के पान भेजो । वह जाकर शिवजी के चित्त को नगायमान करे । तब हम जाकर शिवजी के चरणों में गिर नवाकर हृत्पूर्वक (उन्हें प्रमत्त करके) विवाह करादेगे ।

इन तीन में देवताओं का हित मले ही हो जाय । (यह सुन) मदन तथा - मद् विद्या बहुत अच्छा है । फिर देवताओं में बड़े प्रेम में स्तुति की की- विषय (पाँच बाग धारण करने वाला तथा मछली के चिन्हयुक्त ध्वजा धारण करनेवाला प्रगत हुआ) ।

शिर्यै - कामदेव के पाँच बाग उन प्रकार हैं—

कमल, बनोर, बाम, बनेली और नीलज्मल ।

देवताओं ने अपनी विपत्ति कही । उन्हें सुन कामदेव ने मन में विचार किया और तब देवताओं में से जो कहा कि शिवजी में विरोध करने में मर्ग प्राप्त नहीं है ।

शब्दार्थ - सहित सहाई = वसन्त आदि सहायको के सहित । मार = कामदेव । ध्रुव = निश्चिंत । वारिचरकेतु = कामदेव । वटक् = सेना ।

भावार्थ—तो भी मैं तुम्हारा काम करूँगा, क्योंकि वेद उपकार को परम कहते हैं । जो दूसरो की भलाई के लिए अपना शरीर त्याग करते हैं, उनकी सतजन सदा प्रशंसा किया करते हैं ।

यो कह और सबको सिर नचाकर कामदेव अपने फूलों के धनुष को हाथ में लेकर अपने सहायक (वसन्तदि) के साथ (कैलाश पर्वत को) चला । चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिवजी के साथ विरोध करने में मेरा निःसंदेह मरण होगा ।

तब कामदेव ने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त समार को अपने वश में कर लिया । जब मच्छली के चिन्ह की ध्वजा वाले कामदेव ने कोप किया, तब क्षण-भर में ही वेदों की सारी मर्यादा मिट गयी ।

“ ब्रह्मचर्य, भक्ति-भक्ति के व्रत, सयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वराग्य और विवेक की सारी सेना डटकर भाग गयी (अर्थात् चेतन जीवों में ब्रह्मचर्य आदि का विवेक जाता रहा) ।

मूल—भागेउ विवेकु सहाय सहित सो सुभट सजुग महि मुरे ।

सदग्रन्थ पर्वत कन्दरन्हि महँ जाइ तेहि अवसर दुरे ॥

होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा ।

बुझ भाथ केहि रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनु सर धरा N

शब्दार्थ - सुभट = योद्धा । सजुग महि = रणभूमि । कदरन्हि = गुफाए । दुरे = छिपे गये । करतार - विधाता । खरभर = खलबली । रतिनाथ = कामदेव । सर = वाण ।

भावार्थ - पिविक अपने (ब्रह्मचर्य आदि) महाको सहित भाग गया, क्योंकि उसके (सतोप आदि) अच्छे-अच्छे योद्धा नग्नम-भूमि में पीठ दिखाकर, बड़े-बड़े ग्रन्थरूपी पर्वतों की कन्दरा (त्पः अध्यायो) में उम समय जा छिपे (अर्थात् ज्ञान, वराग्य, सयम, नियम, सदाचार आदि मत्र नष्ट होकर पुस्तकों में लिखे रह गये, उनका आचरण छूट गया) । सारे नमार में खलबली मच गयी (और सब कहने लगे हे विधाता ! क्या होने वाला है ? कौन हमारा

रखवाला है ? ऐसा दो मिर वाला कौन है (अर्थात् किमके सिर फालतू है), जिसके लिए रति के पति कामदेव ने क्रोध करके वनस्प-वाण हाथ में लिया है ।

टोहा—ने सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम ।

ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम ॥८४॥

भावार्थ—तमार मे स्त्री पुरुष नाम वाले जितने भी चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा त्याग कर काम के वशीभूत हो गये ।

विशेष —‘अचर चर’ मे छोटानुप्रास, ‘निज निज’ मे पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार ।

मूल—सब के हृदयें मदन अभिलाषा । लता निहारि निर्वाह तर साखा ॥
 नदी उमगि अबुधि कहें घाई । संगम करहै तलाव तलाई ॥
 जहें असि दत्ता जइन्ह कै धरनी । को कहि सकइ सचेतन करनी ॥
 पसु पच्छी नभ जल थल चारी । भए कामवत्त समय बिसारी ॥
 मदन अथ व्याकुल सब लोका । निसि विनु नहि अवलोकाहि कोका ॥
 देव दनुज नर किनर ब्याला । प्रेत पिशाच नूत बेताला ॥
 इन्ह कै दत्ता न कहेउं बखानी । सदा काम के चेरे जानी ॥

विस्तारपूर्वक नहीं कही है। मिट्ट, वैरागी, महामुनि और महान् योगी भी काम के वश होकर योगरहित या स्त्री के विरही हो गये।

विशेष — अनुप्रास अलंकार।

मूल—भए कामवस जोगीस तापस पावैरन्हि को को कहै।

देखहि चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै ॥

अबला विलोकहि पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।

दुइ दंड भरि ब्रह्माड भोतर कामकृत कौतुक अयं ॥

घरा न काहूँ धीर, सब के मन मनसिज हरे।

जे राखे रघुवीर, ते उवरे तेहि काल महूँ ॥८५॥

शब्दार्थ — पावैरन्हि = नीच मनुष्यों की। अबला = स्त्रियाँ। जगु = ससार को। दंड = घड़ी। कौतुक = तमाशा। अय = यह। मनसिज = कामदेव। उवरे = वचे।

भावार्थ — (कामदेव के प्रभाव का वर्णन किया जा रहा है) जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गये तब नीच मनुष्यों के लिए तो कहाँ ही क्या जाय? जो चराचर जगत् को ब्रह्ममय देखते थे, वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। कामदेव का यह कौतुक दो घड़ी तक सारे ब्रह्माड में व्याप्त रहा।

उस अवसर पर किसी ने भी अपने हृदय में धैर्य धारण नहीं किया, सबके मन पर कामदेव का कावू हो गया। केवल वे ही लोग उस समय वचे रहे जिनकी श्री रामचन्द्रजी ने रक्षा की।

मूल—उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जो लगि कामु संभु पाहै गथऊ।

सिवहि विलोकि ससकैउ मारू। भयउ जयायिति सबु संसारू ॥

भए तुरत नव जीव सुखारे। जिमि मव उतरि गएँ मतवारै ॥

ब्रह्महि देखि मदन भय माना। बुराघरष दुर्गम भगवाना ॥

फिरत लाज कछु करि नहि जाई। भरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितु राजा। कुमुनित नव तव राजि बिराजा ॥

बन उपवन धापिका तडागा। परम सुभग सब दिसा विभागा ॥

जहूँ तहूँ जनु उमगत अनुरागा। देखि सुएहुँ मन मनसिज जागा ॥

शब्दार्थ—उभय = यो । पहि = पास । ससकंठ = डर गया । मारु = कामदेव । जयायित्त = पूर्ववत्, जैसे का तैसा । रुद्रहि = शिवजी को । दुराघर्ष = जिसको पराजित करना कठिन हो । दुर्गम = जिसका पार पाना कठिन हो । फिरत = लौट जाने में । रितुराजा = वनत । प्रगटनि = प्रकट किया । कुसुमित = फूलें हुए । राजि = पक्ति, कतार । वापिका = वावडी । तडागा = तालाब । नुभा = सुन्दर । मुएङ्गमन = मरे हुए मनो में भी । मनसिज = कामदेव ।

भावार्थ,—जब तब कामदेव शिवजी के पान पहुँचा तब तक दो घड़ी ऐसा ही खेल होता रहा । शिवजी को देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर ज्यो का त्यो स्थिर हो गया ।

तुरन्त ही सब जीव ऐसे सुखी हो गये जैसे मरुवाले (नशा पिये हुए) लोग मद उत्तर जाने पर सुखी होते हैं । शिवजी को देखकर कामदेव भयभीत हो गया, क्योंकि शिव दुराघर्ष (जिसको पराजित करना अत्यन्त ही कठिन) और दुर्गम (जिनको पार करना कठिन है ऐसे) भगवान् हैं । (

यदि कुछ न करके लौटा जाता है तो बड़ी लज्जा मालूम होती है, और करते कुछ वनता नहीं । अन्त में मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा । तुरन्त सुन्दर बसन्त ऋतु को प्रकट किया जिनसे वृक्षों की कतारें नये-नये फूलों से लद गयी ।

वन, उपवन, वावडी-तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुन्दर लगने लगे । जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे हुआ वे (अपान् जिन्होंने शम, दम आदि से इन्द्रियों को रोक रक्खा था उनके) मन में भी काम जाग उठा ।

विशेष—उत्प्रेसा अलकार ।

मूल—जागइ मनोभय मुएङ्ग मन वन सुमगता न परं कही ।

सौनल सुगध मुमद मारन मदन अनल सखा सही ॥

प्रियसे सरनिह बहु कज गुंजत पुंज भजुल मधुकरा ।

एन्टस पिक मुफ सरन रव करि गान नार्दाहि अपछरा ॥

शब्दार्थ—मनोभय = डरना । सुमगता = सुमगता । मारन = हवा

मदन अनल = कामरूपी अग्नि । कज = कमल । पुज = समूह । मञ्जुल = सुन्दर । मधुकरा = भँरे । रव = शब्द । अपछरा = अप्नराए । सहीं = सच्चा ।

भावाय — मरे हुए मनो मे भी काम जाग, उठा, वन की मुन्दरता कही नहीं जाती । कामग्नि का सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा । तालाबो में तरह-तरह के कमल खिल गये, जिन पर सुन्दर भँरो के समूह गुजार करने लगे । राजहस, कोयल और तोते रसीली वीली बोलने लगे और अप्सराएं गा-गाकर नाचने लगी ।

विशेष—हरिगीतिका छन्द और सुन्दर पद-मैत्री ।

मूल—सकल फला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत ।

चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥

भाषाय — कामदेव अपनी सेना सहित अपनी करोड़ों प्रकार की कलाएँ करके हार गया, परन्तु एक भी उपाय काम न आया, शिवजी की अचल समाधि न डिगी । तब कामदेव को क्रोध आ गया ।

मूल - देखि रसाल विटप वर साखा । तेहि पर चवेउ मदनु मन माखा ॥
सुमन चाप निज सर संधाने । अति रिस ताकि धवन लगि ताने ॥
छाटे विषम विसिख उर लागे । छूटि समाधि संभु तव जागे ॥
भयउ ईस मन छोभु विसेपी । नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥
सौरभ पल्लव मदनु धिलोका । भयउ कोमु कपेउ त्रिलोका ॥
तव मिवे तीसर नयन उघारा । चितवत कामु भयउ करि छारा ॥
हाहाकार भयउ जग भारी । बरपे सुर भए असुर सुतारी ॥
समुझि कामसुखु सोचाहि भोगी । भए अकटक साधक जोगी ॥

शब्दार्थ — रसाल = आम । विटप = वृक्ष । वर = श्रेष्ठ । मनमाखा = मन में प्रीति में भरा हुआ । नुमन चाप = फूलों का बना धनुष । रिस = प्रीति । विनिय = बाण । सौरभ पल्लव आम के पत्ते । उघारा = मोला । छारा = गार । नाजक = नाचना करने माने ।

भाषाय—आम के वृक्ष की एक मुन्दर टाकी देखकर मन में प्रीति में भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़ गया । उसने अपने फूलों के धनुष पर बाण चढ़ाये और वरी प्रीति में तन पर उन्हें कान तक ताना ।

कामदेव वे तीक्ष्ण पाँच वाण छोड़े, जो शिवजी के हृदय में लगे। तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जग गये। भगवान् शिवजी के मन में बहुत क्षोभ हुआ और वे बाखें खोलकर सब दिशाओं में देखने लगे।

वाम के पक्षों में (छिपे हुए) कामदेव को देखकर शिवजी को क्रोध हुआ, जिनने तीनों लोक काप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला जिससे देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

सत्सार भर में भारी हाहाकार मच गया। देवता डर गये और दैत्य सुखी हुए। भोगोन्नत काम सुन्ना को याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कण्ठ हो गये।

विशेष—अनुप्रास तथा 'सुर अमुर' में लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—हरिगीतिका छन्द।

जोगी अर्षटक भए पति गति सुनत रति मुलछित भई।

रोबति बढति बहु भाँति करुना करति संकर पहि गई ॥

अति प्रेम करि विनती विविध जोरि कर समुल रही।

प्रनु आसुतोप कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥

दोहा—अब तैं रति तब नाय कर, होइहि नामु अनंगु।

विनु बपु व्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंगु ॥८७॥

शब्दार्थ —रति = कामदेव की पत्नी। सही = सान्त्वना देने वाले।

अनंग = अनग (अग रहित—बिना शरीर के)।

भावार्थ.—कामदेव के भस्म हो जाने पर योगी लोग निष्कण्ठ हो गये, किन्तु कामदेव की स्त्री रति अपने पति की यह दशा (कि वह भस्म कर दिया गया) सुनकर मुलछित हो गई। वह रोती-बिल्लाती तथा अनेक प्रकार से कर-बिनाप करती हुई शिवजी के पास गई। उसने प्रेम के साथ अनेक प्रकार में प्रार्थना करके शिव के हाथ लोड़े और मानने खड़ी हो गई। क्षीप्र ही प्रसन्न होने वाले रूपानु शिव ने अन्नना (असहाय स्त्री) को देखा और फिर उसको सान्त्वना देते हुए निम्नाखित वचन कहे—

हे रति ! अब तेरे पति का नाम 'अनंग' होगा, और वह बिना शरीर के रहने लगेगा—अनंग होगा तुम्हारा पति जब मिलेगा । यह बात मन ।

मूल—जब जदुवंस कृष्ण अवतारा । होइहि हरन महा महिभारा ॥
 कृष्ण तनय होइहि पति तोरा । वचनु अन्यथा होइ न मोरा ॥
 रति गवनी सुनि संकर वानी । कथा अपर अब कहउं वखानी ।
 देवन्ह समाचार सब पाए । ब्रह्मादिक वंकुंठ सिधाए ॥
 सब सुर विष्णु त्रिरचि समेता । गए जहां शिव कृपानिकेता ॥
 पूथक प्रथक तिन्ह किन्हि प्रससा । गए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा ॥
 बोले कृपासिधु वृषकेतू । कहहु अमर आए कोहि हेतू ॥
 कह विधि तुन्ह प्रभु अन्तरजामी । तदपि भगति बस विनबउं स्वामी ॥

दोहा — सकल सुरन्ह के हृदय अस, सकर परम उछाहु ।

निज नयनन्हि देखा चर्हाहि, नाथ तुन्हार विवाहु ॥८८॥

शब्दार्थ — कृष्ण तनय = श्रीकृष्ण का पुत्र (प्रद्युम्न) गवनी = चली गई । अपर = दूसरी । त्रिरचि = ब्रह्मा । चन्द्र अवतंसा = शशिसूषण दिव । वृषकेतू = शिव । अमर = देवताओ । उछाहु = उत्साह ।

भावार्थ. — जब पृथ्वी का बडा भारी भार उतारने के लिये यदुवश मे श्रीकृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति कृष्णजी का पुत्र (प्रद्युम्न) होगा । मेरा यह वचन असत्य नहीं होगा ।

शिवजी की वाणी सुनकर रति लौट गयी । अब मैं दूसरी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ । जब देवताओं ने सब समाचार पाये तो ब्रह्मा आदि सब वंकुण्ठ को चले गये ।

फिर वहा से ब्रह्मा, विष्णु सहित सब देवता, जहा दयानिधान-शिवजी थे वहा (कैलाश पर) गये । उन सबने शिवजी की अलग-अलग स्तुति की तब, चन्द्रबोखर शिवजी प्रसन्न हो गये ।

कृपा के सागर शिवजी ने कहा — हे देवताओ । कहां आप लोग किसलिये आये हैं ? (यह सुन) ब्रह्माजी ने कहा — हे प्रभु । आप अन्तर्यामी हैं, तो भी हे स्वामी ! भक्तिवश मे आपसे विनती करता हूँ ।

हे शकर ! सब देवताओ के मन मे ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ ! वे अपने नेत्रो से आपका विवाह देखना चाहते हैं ।

मूल — यह उत्सव देखिअ भरि लोचन । सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥
 कामु जारि रति कहुं बर दीन्हा । कृपासिध यह अति भल कौन्हा ॥

सानित करि पुनि करहि पत्तारु । नाथ प्रमुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
 पारवती तनु कोन्ह अपारा । करहु तासु अब अंगोकारा ॥
 मुनि विधि विनय नमुसि प्रभु वानी । ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी ॥
 तव देवन्ह दुदभी बजाई । वरपि सुमन जय जय सुर साई ॥
 अयमर जानि सप्परिपि आए । तुरनिहि विधि गिरिभवन पठाए ॥
 प्रयम गए जहें रहौ भवानी । बोलै मधुर वचन छल सानी ॥

दीक्षा—कहा हमार न सुनेहु तव नारद के उपदेश ।

अब ना झूठ तुम्हारे पन, जारेउ कामु महेन ॥८९॥

शब्दार्थ—मदन-मद-मोचन = कामदेव के मद जो च करने वाले
 (शिव) कामु = कामदेव। सासति = दंड । पसाऊ = कृपा । दुन्दभी = नगाडे ।
 गिरिभवन = हिमाचल के घर ।

भावार्थ—(ब्रह्मा शिव ने कह रहे हैं) हे कामदेव के मद को चूर्ण
 करने वाले शकर ! आप कुछ ऐसा किजिए कि सब लोग इन उत्सव को नेत्र
 भर कर देखें । हे कृपा नागर ! यह आपने बहुत ही अच्छा किया कि कामदेव
 को मत्त करके आपने रति को बर दे दिया । हे नाथ ! श्रेष्ठ स्वामियों का
 यह सहज स्वभाव होता है कि वे पहले दंड देते हैं, और फिर (नाथ ही) कृपा
 भी कर देते हैं । (अब निवेदन यह है कि) पार्वती ने अपार तप किया है, अब
 आप उसे अंगोकार कीजिए ।

ब्रह्माजी की यह प्रार्थना सुनकर और प्रभु को अर्थात् रामचन्द्रजी के
 वचनों को स्मरण करके शिवजी ने कहा—‘ऐसा ही हो ।’ तब देवताओं ने
 नगाडे बजाये और पुष्प चर्पा करके कहा—‘जय हो । देवताओं के स्वामी की
 जब हो ।’

उपयुक्त अथवर जानकर सप्तरूपि बहा आये और ब्रह्मा जी ने शीघ्र
 ही उनको हिमाचल के घर भेज दिया वे पहले वहा गये जहा पारवती थी ।
 उन्होंने उनसे छन में भरे मधुर वचन कहे—

‘उन मनष तुम्हारे उपर नारद जी के उपदेश का प्रभाव या अत
 तुमने हमारी वात नहीं सुनी । अब तो तुम्हारा प्रण झूठ हो गया, क्योंकि
 महादेव जी ने जान जो ही मत्त कर डाला ।’

विशेष—अष्टप्रास-लकार ।

मूल—सुनि बोलो मुसुकाइ भवानी । उचित कहहु मुनिवर विगयानी ॥
 तुम्हरे जान कामु अब जारा । अब लगि मंभु रहै सविकारा ॥
 हमरें जान सदा सिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
 जो मं सिव सेये अस जानी । प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥
 तो हमार पन सुनहु मुनीसा । फरिहाँ सत्य कृपा निधि ईसा ॥
 तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा । सोइ अति बड अदिवेकु तुम्हारा ॥
 तात बनल कर सहज सुभाऊ । हिम तेहि निकट जाइ नहि काऊ ॥
 गए समीप सो अवसि नसाई । असि नन्मथ महेस को नाई ॥

दोहा—हियें हरपे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति विस्वास ।

चले भवानिहि नाइ सिर, गए हिमाचल पास ॥१०॥

शब्दार्थ - सविकारा = विकार युक्त । अनवद्य = अनिन्द्य । ईसा = भगवान । मारा = कामदेव को । हर = शिवजी ने । हिम = पाला । असि = ऐसा ही । नाई = न्याय ।

भावार्थ — यह सुन भवानी मुसकराकर बोली—हे विज्ञानी मुनिवरों ! आपने उचित ही कहा । तुम्हारी समझ से शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, तो अब तक क्या वे कामी (विकारयुक्त) ही रहे?

हमारी समझ में तो शिवजी सदा में ही योगी हैं और अजन्मा, निन्द्य-रहित, काम-रहित और भोग-हीन हैं । जो मने ऐसा ही जानकर प्रीति-सहित; कर्म, मन और वाणी से शिवजी की सेवा की है -

तो हे मुनिवरों ! सुनो, कृपानिधान भगवान् मेरे प्रण को अवश्य ही सत्य करेंगे और तुमने जो कहा कि शिव ने काम को जला दिया है यही तुम्हारा बड़ा भारी अज्ञान है ।

हे तात ! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उनके नमीप कभी नहीं जाता और जो पास जाय तो वह अवश्य ही नष्ट हो जाता है । महादेवजी और काम के विषय में यही नमजना चाहिये ।

पार्वतीजी के बचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विस्वास देखकर मुनि तद्वत् में बड़े प्रसन्न हुए । वे भवानी को फिर मुसकराकर बतलाने लगे और हिमाचल के पान पहुँचे ।

मूल - सद्यु प्रसंग गिरिपतिहि सुनाया । मदन दहन सुनि अति दुख पावा ।
 बहुरि कहेउ रति कर बरदाना । सुनि हिमचल बहुत सुखु माना ॥
 हृदय विचारि संभु प्रभुनाई । सादर मुनिवर लिए बोलाई ॥
 सुदिनु सुनखतु सुधरी सोचाई । बेगि वेदविधि लगन धराई ।
 पत्नी सप्तरिपिन्ह सोइ बीन्ही । गहि पव विनय हिमाचल कीन्ही ॥
 जाइ त्रिधिहि तिन्ह बीन्ही जो पाती । वाचत प्रीति न हृदय समाती ॥
 लगन वाचि अज सवहि सुनाई । हरये मुनि सब सुर समुवाई ॥
 सुमन वृष्टि नभ वाजन वाजे । मंगल कलस दसहुँ दिति साजे ॥

दोहा - लगे संचारन सकल सुर, बाहन विविध विमान ।

होह सगुन मंगल सुनद, करह अपछरा गान ॥९१॥

शब्दार्थ — मदन दहन = कामदेव का भस्म होना । सुनखतु = अत्यंत
 नक्षत्र । सोचाई = सोचवा कर । पत्नी = लगनपत्रिका । गहि = पवड कर ।
 पाती = पानेवा । अज = ब्रह्मा । बाहन-नवारी । नभद = नूभद्र (अति शुभ) ।

भावार्थ — मुनियों ने पवंतराज हिमाचल को सब हाल सुनाया ।
 कामदेव का भस्म होना सुनकर पवंतराज बहुत दुखी हुए । फिर मुनियों ने
 रति के बरदान की बात कही, जिसे सुनकर हिमवान् ने बहुत मुख माना ।

हृदय में शिवजी की प्रभुता का विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों
 को वादरपत्रक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ षष्ठी
 गोघवाणर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लगन निश्चय कराने
 लिखा लिया ।

फिर वह लगन-पत्रिका मर्त्यापियों को दे दी और हिमाचल ने चरण
 पवड कर उनकी विनती की । उन्होंने जाकर वह पत्रिका ब्रह्माजी को दी,
 जिसकी पट्टे नमय उनके हृदय में प्रेम समाता न था ।

ब्रह्माजी ने लन पत्रक सबको सुनाया । उसे सुनकर सब मुने और
 देवताएँ, वे सन्न के प्रसन्न हुए । ब्रह्मा ने फूँके ली वर्षा होने लगी, जाने
 बजने लगे और शनों दिशाओं में मंगल-रत्न नजने लगे ।

गन देवता अपने भाति-भाति के विमान और वाहन नजाने लगे ।
 सुन्दर नादालय सुनने लगे और अक्षराएँ गाने लगी ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

मूल—सिंहि सभुगन करहिं सिगारा । जटा मुकुट अहिमौर सेंवारा ॥
कुंडल ककन पहिरे व्याला । तन विभूति पट केहरि छाला ॥
ससि ललाट सुन्दर सिर गगा । नयन तीनि उपवीत भुजगा ॥
गरल कंठ उर नर सिर माला । असि वेष सिवघाम कृपाला ॥
कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा । चले वसहँ चढि वाजहिं वाजा ॥
देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं । वर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥
विष्णु विरंचि आदि सुरवाता । चढि चढि वाहन चले बराता ॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा । नहिं वरात दूल्ह अनुरूपा ॥

दोहा—विष्णु कहा अस विहसि तव, बोलि सफल दिसिराज ।

विलग विलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥९२॥

शब्दार्थ—अहि मौर = साँपो का मौर । ककन = कडे । व्याला = साप ।
विभूति = राख, मस्म । केहरि-छाला = बाघम्बर । उपवीत = जडा गरल = बिष,
जहर । असि = अशुभ । डमरु = डमरु—एक वाजा जिसे शिवजी बजाते हैं ।
वसह = वैल । सुरवाता = देवताओं का समूह । दिसिराज = दिक्पाल ।

भावार्थ —शिवजी के गण उनका श्रृ गार करने लगे । उन्होंने
जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर-साँपो का मौर सजाया । शिवजी ने साँपो
के ही कुण्डल और ककण पहने, शरीर में भूत रमाई और बाघम्बर के वस्त्र
पहने ।

शिवजी के ललाट पर सुन्दर चन्द्रमा और सिर पर गगाजी शोभाय-
मान थी । उनके तीन नेत्र थे और साँपो का जनेऊ था, कंठ में बिष और
छाती पर नरमुण्डों की माला थी । इस प्रकार शिवजी का वेष अशुभ होने
पर भी वे कृपालु कल्याण के धाम हैं ।

उनके एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरु सुशोभित है । (इस
प्रकार सब श्रृ गार कर) शिवजी वैल पर चढ़कर चले, तब वाजे बजने लगे ।
शिवजी को देखकर देवताओं की स्थिर्याँ मुसकरा रही हैं (और कहती हैं कि)
इस सुन्दर दूल्हे के योग्य दुलहिन ससार भर में नहीं है ।

विशेष :—भाषा की व्यञ्जना दृष्टव्य है ।

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपनी-अपनी सवारियों पर चटकन बरान में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम मूल्य) था, तो भी इन्हें के योग्य बरात नहीं थी।

तब विष्णु भगवान् ने सब दिक्पालों को बुलाकर और हनवर कहा—
मव अने-अपने समाज (दल) महित अलग-अलग चरों।

मूल—वर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करेहूँ पर पुर जाई ॥

विष्णु वचन सुनि नुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ॥
मनहीं मन महेसु मुसुकाही। हरि के विषय वचन नहि जाहीं ॥
अनि प्रिय वचन मनत प्रिय केरे। भृगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ॥
सिव अनुमासन मुनि सब आये। प्रभु पद जलज सीत तिन्ह नाए ॥
नाना वाहन नाना वेपा। बिहसे सिव ममाज निज देखा ॥
कोठ मुखहोन विपुल मुख काहू। विनु पद कर कोठ बहु पद बाहू ॥
विपुल नयन कोठ नयन बिहिना। रिष्टपुष्ट कोठ अति तन खीना ॥

हरिगीतिका छन्द =

तन खीन कोठ अति पीन पावन कोठ अपावन गति धरें।
नूपन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
छर स्वान सुखर मृकाल मुख गन वेप अगनित को गर्नं।
बहु जिनस प्रेत पिशाच जीगि जमात वरनत नहि बनै ॥ १

सोरठा = नाचाह गावाह गीत, परम तरंगी नृत सब।

बेसत अति विपरीत, बोलाह वचन विचित्र विधि ॥९३॥

शब्दार्थ.—वर = दूहा। अनुहारि = अनुसार, मुताबिक। करेहूँ =
कगमोने। बिलगाने = अलग हो गये। विषय वचन = तीर्थे मजाक के वचन।
भृगिहि = भृगो नामक द्वाग्णल को। प्रेरि = भेजकर। टेरे = बुलवा लिया।
नाए = न्याए। खीना = दुबला-पतला। पीन = मोटा। अपावन = अपवित्र।
नष्ट = नाश। सोनित = चम्क। चर = गया। मृकाल = झियार। जिनस =
जिन (वां दा प्रगन)। जमात = समूह। तरंगी = मंजी।

यह मुन शिवजी मन-ही-मन मृसकराये, उनके मन से भगवान् के व्यंग वचन नहीं जाते। अपने प्रिय के अत्यन्त प्रिय वचन मुनते ही महादेवजी ने भृ गी को भेजकर अपने गणों को बुलवा लिया।

शिवजी की आज्ञा मुनकर सब गण चले आये और उन्होंने स्वामी के चरण-नमनों में मिर नवाया, माँति-भाँति के वेप वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हसे।

किमी के मुख ही नहीं और किसी के बहुत से मुख हैं, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किमी के कई हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत सी आँखें हैं तो कोई नेत्रहीन ही है। कोई बहुत मोटा-ताजा है तो कोई बहुत ही दुवला-पतला है।

कोई दुवला और कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेप धारण किये हुए हैं। उनके भयकर आभूषण हैं और सबके हाथों में कपाल हैं। वे सब ताजा खून अपने पर लगाये हुए हैं और गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मूत्र हैं। इस तरह गणों के अनगिनत वेपों को कौन गिन सकता है? बहुभाँति के भूत, प्रेत, पिशाच और योगनियो की जमात थी, जिनका वर्णन करते नहीं बनता।

सब भूत बड़े मौजी हैं, वे नाचते और गीत गाते हुए चल रहे हैं। वे देखने में बड़े बेढगे जान पड़ते हैं और बड़े ही विचित्र ढंग से धोलते हैं।

विशेष — अनुप्राप्त और लाटानुप्राप्त अलंकार।

मूल — जस दूल्हा तसि बनी बराता। कौतुक विविध होहि मग जाता।
इहाँ हिमाचल रचेउ विताना। अति बिचित्र नहीं जाइ बखाना ॥
सैल सकल जहें लगि जग माहीं। लघु विसाल नहिं धरनि सिराहीं ॥
वन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहें नेवन पठावा ॥
कामरूप सुन्दर तन धारी। सहित ममाज सहित वर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गार्वाह मंगल सहित सनेहा ॥
प्रथमहिं गिनि बहु गृह संवराए। जया जोगु तहें तहें सब छाए ॥
पुर सोना अबलौकि सुहाई। जागइ लघु विरचि निपुनाई ॥

शब्दार्थ — कौतुक — तमाशा। विताना = नटप। सैल = पर्वत। सिराही = समाप्त होना, पार मिलना। नेवन पठावा = न्योना भेजा।

वे देवताओं की सेवा देखकर मन में प्रमत्त हुए और भगवान् विष्णु को देखकर बहुत ही नुकी हुए, पर जब शिवजी के समाज को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन डरकर भाग चले ।

जो चतुर थे वे धीरे-धीरे घरकर वहाँ डटे रहें, पर बालक तो मग्न अपने प्राण लेकर भागे । उनके घर जाने पर जब माता पिता उनसे बरात का समाचार पढ़ते हैं, तब वे नय से कापते हुए शरीर से ऐसे वचन कहते हैं—

क्या कहे, कोई बात कही नहीं जाती । यह बरात है या यमराज की सेना ? दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है तथा सर्प, कपाल और राक्षस ही उसके गहने हैं ।

दूल्हे के शरीर पर राक्षस लगी है, सांप और कपाल में गहने हैं । वह नगा, लटाधारी और भयंकर है । उसके साथ भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनिया और भयंकर मुख वाले राक्षस हैं । जो बरात देखकर जीते रहेंगे, सबभुच उनके बड़े पुण्य हैं और वे ही उमा का विवाह भी देखेंगे । लडकों ने घर-घर यही बात कही ।

शिवजी का समाज जानकर सब लडकों के माता-पिता नुमकराने हैं । उन्होंने अनेक प्रकार से लडकों को समझाया कि निडर हो जाओ इन्हीं की कोई बात नहीं है ।

विशेष—'बाल वृष्णाए विविध विधि' में वृत्त्यनुष्ठान तथा 'विडर होह डर नाहि ने लाटानुष्ठान' की भय-प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण ।

मूल—लं भगवान् बरातहि आए । दिए सबहि जनवात्त सहाए ॥
 मैना सुभ आरती सँवारी । सग सुमगल गाबहि नारी ॥
 कंचन थार सोह वर पानी । परिछन खली हरहि हरपानी ।
 बिकट बेप रहहि जब बेला । अबलन्ह डर नय नयठ बितेसा ॥
 भागि भवन पैठी अति जाला । गए नहेत्त जहाँ जनमाना ।
 मैना हृदय नयड दुखु भारी । लीन्ही बोलि गिरीलकुमारी ॥
 अधिक सनेहं गोद बँठारी । स्याम सरोज नयन-भरे धारी ।
 नोहि विधि मुन्हहि रूपु अस दीन्हा । तोहि जड़ बर वाडर कस कीन्हा ॥

हरिगीतिका छंद -

कस कीन्ह बर वीराह विधि जेहि तुम्हीं सुन्दरता दई ।
जो फल चाहिअ सुरतरहि सो बरवस धवूरहि लागई ॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौ पावक जरौ जलनिधि महुँ परौ ।
घर जाउ अपजसु होउ जग जीवत विबाहु, न हौं करौं ॥

दोहा—भई विकल अवला सकल, वृक्षित देखि गिरिनारि ।

करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहु संभारि ॥१६॥

शब्दार्थ—अगवान = अगवानी करने वाले । सुहाए = सुन्दर । पानी = हाथ । परछन = स्त्रियो का एक वैवाहिक लोकाचार जिसमे वे वर को दही-धसत का टीका लगातीं और मूसल तथा बट्टा उस पर से घुमाती है । हरहि = शिवजी को । रुद्रहि = शिवजी को । अवलन्ह = स्त्रिया । पैठी = धुस गई । वारी = जल, आसू । जड = मूर्ख । सुरतरहि = कल्पवृक्ष मे । धरू जाउ = घर उजड जाय । गिरिनारि मना । सभारि = याद करके ।

भावार्थ—जो लोग अगवानी करने गये थे, वे वरात को ले आये और उन्होंने सबको सुन्दर जनवासा ठहरने को दे दिया । पार्वती की माता मैना ने शुभ आरती सजायी और उनके साथ की स्त्रिया उत्तम मंगल गीत गाने लगी । हाथो मे सुन्दर सोने का थाल सजा कर मैना हर्ष के साथ शिवजी का परछन करने चली । जब स्त्रियो ने महादेव जी को भयानक वेप मे देखा, तब उनके हृदय मे बडा भारी भय उत्पन्न हो गया । अत्यन्त भय के कारण वे भाग कर घर मे धुस गई और शिवजी जहा जनवासा था, वहा चले गये, मैना के हृदय मे बडा भारी दुःख हो गया । उसने पार्वती को अपने पास बुलाकर अत्यन्त स्नेह से अपनी गोद मे बिठा लिया और अपने नीलकमल के ममान नेत्रो मे आसू भर कर कहा—जिस विधाता ने तुमको इतना सुन्दर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दुल्हे को वावला कैसे बना दिया ?

जिम विधाता ने तुम्हे सुन्दरता दी, उमने तुम्हारे लिए वावला वर कैसे बनाया ? जो फल कल्पवृक्ष मे लगाना चाहिए, वह जवरदस्ती वृक्ष मे लग रहा है । मैना आवेण मे आकर कहती है—मैं तुम्हें लेकर पहाड से गिर पड गी, जाग मे जल मरुंगी या समुद्र मे कूद पडूंगी' चाहे घर उजड जाय,

चाहे ससार भर में बदनामी हो, पर जीते-जी मैं तुम्हारा विवाह इस बाबले बर से नहीं करूँगी।

गिरि-पत्नी मैना को दुखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। मैना ने अपनी पुत्री के स्नेह का स्मरण करके विलाप करना, रोना और कहना आरम्भ कर दिया।

विशेष—अनुपान और लुप्तोपमा अलंकार।

ल—नारद कर में काह विगारा। नवनु मोर जिन्ह बसत उजारा।
 अत उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। वीरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥
 सांचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया।
 पर घर घालक लाज न भौरा। वांसु कि जान प्रसव के पीरा ॥
 जननिहं बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत विवेक मुदु बानी।
 अत विचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ विधाता ॥
 करम लिखा जौ वासर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू।
 तून्ह सन मिटाहं कि विधि के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥

हरिगोविका छन्द—

जनि लेहु मातु कलंकु कलना परिहरहु अवसर नहीं।
 दुख मुसु जो लिखा लिलार हमरें जाव जहँ पाउब तहीं ॥
 मुनि उमा वचन विनीत कोमल सबल अबला सोचहीं।
 बहू भानि विधिहि लगाइ दूयन नयन वारि धिमोचहीं ॥

लाज है और न ही किसी का डर, इसीलिये ऐसे काम करते हैं। भला, वाँझ स्त्री प्रसव की पीडा को क्या जाने ? (अगर उनके यहाँ लडकी होती और उसे ऐसा बर मिलता, तब वे जानते)।

विशेष—“वाँझ कि जान प्रसव के पीरा”, कहावत का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

माता को दुखी देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाली बोली—हे माता ! जो विधाता ने रचा है, वह टल नहीं सकता। यह विचारकर आप सोच मत करो।

जो मेरे भाग्य में बावला ही पति लिखा है तो किसी को दोष क्यों लगाया जाय ? क्या विधाता के अंक तुमसे मिट सकते हैं ? हे माता ! बृथा अपने सिर कलक मत लो।

हे माता ! अपने सिर कलक मत लो, शोक का त्याग करो; उसके लिए यह अवसर नहीं है। जो कुछ सुख और दुःख मेरे भाग्य में लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वही पाऊँगी। पार्वतीजी के ऐसे विनीत और कोमल बचन सुनकर सब स्त्रियाँ सोचने लगी और अनेक प्रकार के विधाता को दोष लगाकर आप्तो से आँसू बहाने लगी।

मूल—दोहा—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रियि सप्त समेत।

समाचार सुनि तुहिन गिरि, गवने तरत निकेत ॥९७॥

शब्दार्थ—तुहिनगिरि = हिमाचल। निकेत = घर।

भाषार्थ—उन समय यह नव समाचार सुनकर हिमाचल नारद जी और सप्तपियों को नाथ लेकर अपने घर गये।

मूल—तव नारद तव ही समुझावा। पूग्व कया प्रसग सुनावा।
 भयना सत्य सुनहु मम वानी। जगदन्धा तव सुगा भवानी ॥
 यजा अनादि सपित अविनासिनि। सदा सभु अरघण निषासिनि।
 जग भभय पालन लय फारिनि निज इच्छा लीला वपु धारिनि ॥
 जननी प्रथम दच्छ गृह जाई। नानु सती मुग्दर तनु दाई।
 तट्टे सती संहरहि विवाही। सग प्रसिद्ध नरल जग नाहीं ॥
 एक घर आवत तिय सगा। देतेज रघुजुन कमल पतंगा।
 भयउ नोहु निव दहा न फौन्हा। भन दग देदु सोय कर लौन्हा ॥

हरिगोविका छन्द—

सिय बेपु सतीं जो कीन्ह तेहि अपराव संकर परिहरीं ।
हर विरह जाइ बहोरि पितु कैं जग्य जोगानल जरीं ॥
भव जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारन तपुं किया ।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा नवदा संकर प्रिया ॥

दोहा—सुनि नारद के वचन तब, भव कर मिटा दियाद ।

छन महूं व्यापेठ सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥१८॥

शब्दार्थ—पूख = पूर्व जन्म की । भवानो = भव की पत्नी । पार्वती ।
अजा = अजन्मा । ननव = उत्पत्ति । लय = संहार । लोन्ना वपु = लोला शरीर ।
पतंवा - मृत्यु । परिहरी = त्याग दो । छन - क्षण भर । व्यापेठ = फैल गया ।
बहोरि = फिर ।

भाषार्थ—शुन नारद जी ने सबको नमस्कारा और उन्हें पूर्व जन्म की कथा सुनाई । उन्होंने कहा—हे मैना ! तुम मेरी सत्य बात सुनो, तुम्हारी पुत्री भवानो (पार्वती) साक्षात् जगज्जन्मी है । यह अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति है, यह शिवजी के अर्धांग में निवास करती है । यह सत्कार की उत्पत्ति पावन और संहार करने वाली है, और इच्छानुसार लीला करने के लिए शरीर धारण करने वाली है ।

पहले इसने दक्ष के घर में जन्म लिया था, तब इनका नाम सती था, और उस समय इनने बहुत ही सुन्दर शरीर पाया था, तब भीमती ने शकर के साथ ही विवाह किया था । यह कथा सारे ससार में प्रसिद्ध है । किन्तु एक बार जब यह शिवजी के नाच आ रही थी, तब मार्ग में इनने रज्जुलक्ष्मी क्षमन की त्रिलोक वाले मृत्यु रामचन्द्र जी को देखा । उस समय इने मोह हो गया और इनने शिवजी का कहना न मान कर भ्रमवश सीता का बेष धारण कर लिया ।

सती ने जो सीता का बेष धारण कर लिया था, इसी अपराव के कारण शकर ने उसे त्याग दिया । तब इनने शिवजी के विषांग में अपने पिता के घर में जानकर योगेश्वर ने अपने शरीर को भस्म कर दिया । अब उसी ने सुम्हारे घर उम्हें भस्म करने पति के लिए उद्योग तप किया है, ऐसा जानकर सब लोग डरे । पार्वती जी सती जी जन्म की शक्ति हैं ।

तब (इस प्रकार) नारद जी के वचनो को सुनकर सबका विपाद मिट गया और क्षण भर में यह समाचार सारे नगर में फैल गया ।

विशेष—अनुप्राण, रूपक और पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार ।

मूल—तब मयना हिमवंतु अनदे । पुनि पुनि पारवती पद वन्दे ।
 नारि पुरुष सिसु जुवा सयाने । नगर लोग सब अति हरयाने ॥
 लने होन पुर मंगलगाना । सबे सर्वाह हाटक घट नाना ।
 भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपसास्त्र जस फलु व्यवहारा ॥
 सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहि भवन जेहि मातु भवानी ।
 सादर बोले सकल वराती । विष्णु विरचि देव सब जाती ॥
 विविध पाँति बँडी जेवनारा । लागे परसन निपुन सुभारा ।
 नारि बृद्ध सुर जेवँत जानी । लगौं देन गारौं मृदु बानी ॥

हरिगीतिका छन्द—

गारौं मधुर स्वर देहि सुन्दरि विग्य 'वचन सुनावही ।
 भोजनु करहि सुर अति विलडु विनोडु सुनि सचु पावहीं' ।
 जेवँत जो बढ्यो अनडु सो मुख कोहिहूँ न परं कह्यो ।
 अचर्वाई दीन्है पान गवने वास 'जहँ जाको रह्यो ॥

बोहा—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत फह्यै; लगन सुनाई आइ ।

समय विलोकि विबाह कर, पठए देव बोलैइ ॥६६॥

शब्दार्थ—अनदे = आनन्द में मग्न हो गये । जुवा = युवा । हाटक घट = सोने के कलश । सूपसास्त्र = पाकशास्त्र । सुभारा = रसोद्दण्ड, परोसने वाले । सचु = सुख । अचर्वाई = शाय-मुँह धूलवाकर ।

भाषार्थ—(नारद जी के वचन सुनकर) मैना और हिमवान् आनन्द-मग्न हो गये और उन्होंने बार-बार पार्वती के चरणों की वन्दना की । नारदजी की बात से नगर के सभी लोग स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध बहुते प्रसन्न हुए । नगर में मंगल गीत गाये जाने लगे और सबने अनेक प्रकार के स्वर्ण कलश सजाये । पाकशास्त्र के नियमों के अनुकूल अनेक भाँति की ज्योनार (रसोद्दण्ड) हृद्-भोजन-पामश्री तैयार की गई । जिस घर में स्वयं माता भवानी रहती हो भला वहाँ की भोजन-सामग्री का क्या वर्णन किया जा सकता है ?

हिमवान् ने आदरपूर्वक सब वरातियों को विष्णु, ब्रह्मा और स्व जाति के देवताओं को बुलवा लिया। भोजन करने वालों की अनेक पवितर्याँ बैठी। चतुर रसोद्भू भोजन-सामग्री परोसने लगे। सुर-वृन्द को जीमते देख कर स्त्री वृन्द ने कोमल वाणी से गालियाँ गाईं।

सब सुन्दर स्त्रियाँ मोठे स्वर में गालियाँ गाने लगीं और व्यग्य-वचन सुनाने लगीं। देवगण व्यग्य-विनोद चुनकर सुख का अनुभव करते हैं, इसलिए वे भोजन करने में चलाकर देर लगा रहे हैं-धीरे-धीरे भोजन कर रहे हैं। भोजन करते समय जिस आनन्द की वृद्धि हुई, वह करोड़ों मुखों से भी नहीं कहा जा सकता। भोजन कर चुकने पर सबको आचमन कराकर (मुँह-हाथ धुलवा कर) पान दिये गये। तदनन्तर सब वराती, जो जहाँ ठहरे थे, वहाँ चले गये।

फिर मुनियों ने आकर हिमवान् को लग्न-प्रशिका सुनाई (विवाह का समय सूचित किया) और विवाह का समय (तन्निर्कट) देखकर नव देवताओं को बुला भेजा।

मूल—बोली सकल सुर सादर लीन्हे । सबहि जयोचित आसन वीन्हे ।
 वेदी वेद-विद्यान सँवारी । सुभग सुमंगल गावहि नारी ॥
 सिंघासन अति दिव्य सुहावा । जाइ न वरनि बिरंचि बनावा ।
 बैठे निव विप्रन्हू तिर नाई । हृदयें सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥
 बहुरि मुनीसन्हू उना बोलाई । करि सिंगार सखीं लै आई ।
 देसत रूप सकल सुर मोहे । बरनैं छवि अस जग कवि को है ॥
 जगदम्बिका जानि नव भामा । सुरन्हू मनहि मन कोन्हू प्रनामा ।
 सुन्दरता मरजाद भवानो । जाइ न फोटिहूँ वदन ब्रजानो ॥
 शब्दार्थ — नव भामा = शिवजी की पत्नी । मरजाद = सीमा । वदन = मुख ।

शब्दार्थ—नव देवताओं ने आदर-महित दृष्टार नवको दया-योग्य आसन दिये। देव की रीति में वेदी सजाई गयी और सुन्दर स्त्रियाँ मंगल-गीत गाने लगीं।

वेदिना पर एक छवि सुन्दर दिव्य सिंहासन था, जिनकी विचित्र बनावट ग वान नहीं सिंघा का सवता, उसे स्वयं ब्रह्माजी ने बनाया था।

अपने स्वामी श्रीराम का स्मरण कर और ब्राह्मणों को सिर नवाकर शिवजी उस सिंहासन पर बैठ गये ।

फिर मुनीश्वरों ने उमा को बुलाया । सखियाँ श्रृ गार करके उन्हें लिवा लाईं । पार्वतीजी के रूप को देखते ही सब देवता मोहित हो गये (जहा देवताओं का यह हाल था फिर भला) सत्तार में ऐसा कौनसा कवि है जो उस छवि (सुन्दरता) का वर्णन कर सके ।

पार्वतीजी को जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझकर सब देवताओं ने मन-ही-मन प्रणाम किया । पार्वतीजी सुन्दरता की मर्यादा है, उनकी शोभा का बखान करोड़ों मुखों से भी नहीं हो सकता ।

मूल—कोटिहु बदन नहि वनं चरनत जग जननि सोभा महा ।
सकुचहि कहत श्रुति सेष सारद मन्दमति तुलसी कहा ॥
छविखानि मातु भवानि गवर्ना मध्य मडप सिव जहाँ ।
अवलोकित सकहि न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तथा ॥

शब्दार्थ—बदन = मुख । सारद = शारदा, सरस्वती । मधुकरु=भौरा ।

भावार्थ—जगज्जननी पार्वती की महती शोभा का वर्णन करोड़ों मुखों से भी नहीं किया जा सकता । उनकी शोभा का वर्णन करते हुए वेद, उपनाग और सरस्वती तक भी सकुचाते हैं, तब फिर मद मति तुलसी तो किस गिनती में हैं ? सौन्दर्य की खान माता भवानी मडप के बीच में, जहाँ शिवजी थे, वहा गई सकुच के कारण वह अपने पति (शिवजी) के चरण-कमलों को देख नहीं सकी, किन्तु उनका मन रूपी भौरा तो वही था । (मन पति-चरणों में था और सिर लज्जा से अवनत था) ।

विशेष—छन्द हरिगीतिका, अनुप्रास बलकार ।

मूल—दोहा—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि ।

कोउ सुनि ससय जनि करै, सुन अनादि जिये जानि ॥१००॥

भावार्थ—मुनियों की आज्ञा ने शिव-पार्वती ने गणेश-पूजन किया । कोई मनमें यह शक न करे कि गणेश जी तो शिव-पार्वती की नतान हैं, विवाह से पूर्व ही वे कहीं से आगये, क्योंकि मन में ऐसा समझना चाहिए कि देवता तो अनादि हैं ।

मूल—जति विवाह के विधि श्रुति गई । महापुनिन्ह सो सब करवाई ॥
 गहि गिरोस कुत्त कन्या पानी । भवहि समरपीं जानि भवानी ॥
 पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । हिय हरषे तब सकल सुरेसा ॥
 वेदमंत्र नुनिवर उच्चरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ॥
 बार्जहि वाजन विविध विधाना । सुमनवृष्टि नभ नै त्रिवि नाना ॥
 हर गिरिजा कर भयल विवाह । नकल नुवन भरि रहा उछाह ॥
 दासां दान तुरग रय नागा । धेनु वसन मनि वस्तु विभागा ॥
 अन्न कनक भाजन भरि जाना । दाइल दीन्ह न लाइ बलाना ॥

हरिगीतिका छंद—

दाइल दियो बहु भांति पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यो ॥
 का देठ पूरनकाम संकर चरन पकज गहि रह्यो ॥
 निवे कृपासागर तमर कर संतोषु सब भांतिहि कियो ॥
 पुनि गहे पद पायोज मयनां प्रेम परिपूरन हियो ॥
 दोहा—नाय उमा नम प्राण सम गृहकिंकरी करेहु ।

छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रमद वर देह ॥१०१॥

शब्दार्थ—कुत्त = कुश (एक प्रकार का घास) । पानी = हाथ । समरपी =
 साँप दी । तुरग = घोड़ा । नागा = हाथी । कनक भाजन = सोने के बर्तन ।
 दाइल = दहेज विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष की ओर में वर-पक्ष को दिया
 जाने वाला धन और सामान) । पूरन काम = पूर्ण काम (जिनकी सभी इच्छाएँ
 पूरी हो चुकी हों), गिरीह । पायोज = कमल । गृह-किंकरी = घर की दासी ।
 जाना = दान, गाड़ी ।

विवाह की जैनी रीति वेदों में नहीं गई है, महापुनियों ने वह सभी
 रीति करवायी । पर्वतराज शिवायल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ
 पकड़कर रखे नदानी (शिव-पत्नी) जान शिवजी को समर्पण किया ।

जब महादेवजी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब नव देवता हृदय
 में बहुत प्रमद हुए । श्रेष्ठ मुनिगण वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे और
 देवान् शिवजी की जय-जयकार करने लगे ।

इनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और क्षाराल ने नाना भाँति के पुष्पों
 की वर्षा होने लगी । शिव-पार्वती का विवाह हो गया, (इन्से) सब लोकों में
 आनन्द छा गया ।

दासी, दास, घोड़े रथ, हाथी, गाय, घस्र, मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न एव सोने के बर्तन गाडियो मे लदवाकर दहेज मे दिये, जिसका वर्णन नहीं हो सकता ।

अनेक प्रकार का दहेज देकर और फिर हाथ जोडकर पर्वतराज हिमाचल ने कहा — हे शकर ! आप पूर्ण काम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? इतना कहकर वे शिवजी के चरणकमल पकड कर रह गये तब कृपा के सागर शिवजी ने सब प्रकार से अपने ससुर का ममाघान किया । फिर प्रेम से परिपूर्णहृदय मैनाजी ने शिवजी के चरणकमल पकडे ।

(और कहा) हे नाथ ! उमा मुझे प्राणो के समान प्यारी है, आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइयेगा और आप इसके सब अपराध क्षमा करते रहेंगे । प्रसन्न होकर मुझे यह वर दीजिये ।

मूल—बहु विधि संभु सासु समझाई । गवनी भवन चरन सिर नाई ।
जननी उमा बोलि तव लीन्हीं । लै उछंग सुन्दर सिख दीन्हीं ॥
करेहु सदा संकर पद पूजा । नारिधरमु पति देउ न डूजा ।
बचन कहत भरे लोचन वारी । बहुरि लाइ उर लीन्ह कुमारी ॥
कत विधि सुजीं नारि जगमाहीं । पराधीन सपनेहुं सुखु नाहीं ।
भं अति प्रेम विकल महतारी । धोरजु कीन्ह कुसमय धिचारी ॥
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना । परम प्रेमु कछु जाइ न वरना ।
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी । जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥

हरिगीतिका छन्द—

जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं ।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखी लै सिव पहि गईं ॥
जाचक सकल सतोपि सकर उमा सहित भवन चले ।
अय अमर हरषे सुमन वरषि निसान नभ वाजे भले ॥
दोहा—चले सग हिमवस्तु तव, पहुचावन अति हेतु ।

विबिध भांति परितोषु करि, विदा कीन्ह वृषकेतु ॥१०२॥

शब्दार्थ — उछंग = गोद । सिख = शिखा, उपदेश । देउ = देवता ।
वारी = जल (भाँसू) । तन = तरफ । पहि = पास । निनान = नगाडे । हेतु =
प्रेम । वृषकेतु = शिव ।

भावार्थ - शिवजी ने अनेक तरह से अपनी मास को नमसाया। तब वह शिवजी के चरणों में सिर झुकाकर धर चली गई। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बिठा कर यह उपदेश दिया -

हूँ पार्वती ! तू सदा शिवजी के चरणों की पूजा करना। श्रियो का यही धर्म है। उनके लिए पति ही देवता हैं और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बात कहते कहते मना को आँसों में भ्रम भर आये और उन्होंने अपनी पुत्री को छाती से लगा लिया, फिर वे बोली कि विधाता ने तसारा में स्त्री-जाति को पैदा हो क्यों किया ? परापीन को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। माता पुत्री के स्नेह में अति विकल हो गई, परन्तु कुत्तमय जानकर उसने दीरज धर लिया।

उमा बार-बार मिलती है और माता के चरणों को पकड़ कर गिर पडती है। बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता। इसके बाद पार्वती सब स्त्रियों से मिली-भेटो और फिर अपनी माता की छाती से जा लिपटी।

पार्वती जब माता से पुन मिलकर चली, तब सबने उसे समायोचित आशीर्वाद दिया। जब सखियाँ पार्वती को शिवजी के पास ले गईं, तब वह बार-बार मूढ-मडकर माता की ओर देखती जाती थी। महादेव जो सब भावको को सतुष्ट कर पार्वती के साथ धर को अर्थात् कैलास को चले गये। उस समय सब देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में सुन्दर नगाड़े (वाजे) बजने लगे।

तब अत्यन्त स्नेह के साथ हिमाचल उन्हें पहुँचाने के लिए साथ गये, किन्तु महादेव जो ने उन्हें अनेक प्रकार से सतोष दिलाकर विदा किया।

विशेष—मातृ-हृदय की सुन्दर झलक के माय पुत्री के प्रथम वियोग का सुन्दर चित्र इन पंक्तियों में अंकित है।

मूल—तुरत भवन आए गिरिराई। तकल संल सर लिए बोलाई।
आदर दान बिनय बहुमाना। सब कर विदा कौन्ह हिमवाना ॥
जबहिं संभू कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए।
जगत मातृ पितृ संभू भवानो। तेहिं सिगार न कहूँ बखानो ॥
करहिं विविध विधि भोग विलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।
हर गिरिजा विहार नित नयन। एहि विधि बिपुल काल अलि गयन ॥

तव जनमेष्ठ षट्पद्वदन फुनारर । तारकु असुर समर जेहि मारा ।
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । पन्मुख जन्म सकल जग जाना ॥

हरिगीतिका छन्द—

जगु जान पन्मुख जन्म कमुं प्रताप पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मै वृषकेतु सुत कर चरित सखेपहि कहा ॥
यह उमा सभु विवाह जे नर नारि कहहि जे गावहीं ।
कल्याण काज विवाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं ॥

दोहा—चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहि पार ।

बरनै तुलसीदास किमि अति मतिमंद गवारि ॥१०३॥

शब्दार्थ—गनन्ह = गण । नयऊ = नया । षट्पद्वदन = पन्मुख, कार्तिकेय ।
गिरिजारमन = शिवजी ।

भावार्थ—पर्वतराज हिमाचल तुरन्त घर को लौट आए और उन्होंने सब पर्वतों और सरोवरों को बुला लिया । हिमवान् ने आदर, दान, विनय और बहुत अधिक सम्मान-सहित सबको विदा दिया ।

जब शिवजी कैलाश पर आए तब सब देवता अपने-अपने लोकों को चले गये । (तुलसीदास जी कहते हैं कि) पार्वतीजी और शिवजी जगन के माता पिता हैं, इसीलिये मैं उनके श्रृ गार का वर्णन नहीं करता ।

वे अनेक प्रकार से भोग-विलास करते हुए अपने गुणों सहित कैलाश पर रहने लगे शिव-पार्वती का नित्य नया विहार होने लगा इस प्रकार बहुत समय बीत गया ।

तब छ मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिकी) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बड़े होने पर) युद्ध में तारकासुर को मारा स्वामिकार्तिकी की जन्म कथा वेदों, शास्त्रों और पुराणों में प्रसिद्ध है और सारा ससार उसे जानता है ।

स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ को सारा ससार जानता है । इसी कारण मैंने वृषकेतु शिवजी के पुत्र का चरित्र सक्षेप में ही कहा है । जो स्त्री-पुरुष शिव-पार्वती के विवाह की इन कथा को कहेंगे और गायेंगे वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मंगलों में सदा सुख पावेंगे ।

गिरिजापति शिवजी का चरित्र समुद्र के समान अपार है, वेद भी

उसका पार नहीं पाते । फिर अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है ?

मूल—सभु चरित मुनि रस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुख पावा ॥
 बहु लालसा कथा पर बाढी । नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढी ॥
 प्रेम विवस मुख आव न वाणी । दसा देखि हरये मुनि ग्यानी ॥
 अहो धन्य तय जन्मु मुनीसा । तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥
 सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहो । रामहि ते सपनेहो न सोहाही ॥
 विनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । राम भगत कर लच्छन एहू ॥
 सिव सन को रघुपति धतघारो । विनु अघ तजो सती असि नारी ॥
 पनु करि रघुपति भगति देखाई । को सिव सम रामहि है प्रिय भाई ॥

प्रयत्नहि में कहि सिव चरित, वृत्ता मरमु तुम्हार ।

सुवि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विकार ॥१०४॥

शब्दार्थ — वाटी = वड गई । रोमावली ठाढी = रोमाञ्च हो आया
 गौरीसा = शिव । रति = प्रेम । बिस्वनाथ = महादेव । एहू = यही । वृत्ता =
 ममज्ञ लिया ।

भावार्थ—शिवजी के नरम और सुहावने चरित्र को मुनिकर भरद्वाज
 मुनि ने बहुत ही मुत्त पाया । कथा पर उनकी लालसा बहुत बढ गयी, नेत्रों
 में जल भर आया और (हर्ष के कारण) रोमावली खड़ी हो गई ।

अति प्रेम के कारण मुख से वाणी नहीं निकलती । उनकी
 यह दशा देखकर जानी मुनि याज्ञवल्क्यजी बहुत प्रमन्न हुए (और बोले)
 हे मुनीय ! अहा हा ! तुम्हारा जन्म धन्य है, क्योंकि गौरीपति शिवजी तुम्हें
 प्राणों के समान प्रिय हैं ।

शिवकी शिवजी के चरणमलो में प्रीति नहीं है, वे श्रीराम को स्वप्न
 में भी उन्हे नहीं लगते । शिवजी के चरणों में निष्कपट प्रेम होना ही राम
 मन्त्र का उद्देश्य है ।

शिवजी के समान श्रीराम की भक्ति का अर्थ धारण करने वाला
 कौन है ? शिवजी की शक्ति पाप के मनी जैसी स्त्री को त्याग दिया और
 प्रेम करने श्री रघुनाथजी की भक्ति को दिया दिया । हे भाई ! श्रीराम को
 शिवजी के समान श्रीराम की प्रिय हो सकता है ?

मंने पहले शिवजी का चरित्र कहकर तुम्हारा मर्म समझ लिया है कि तुम श्रीराम के पवित्र सेवक हो और सब दोषो से रहित हो ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक ।

मूल—मैं जाना तुम्हारे गुण सीला । कहूँ सुनहु अब रघुपति लीला ॥
 सुनु मुनि आज समागम तोरें । कहि न जाइ जस सुखु मन भोरें ॥
 रामचरित अति अमित मुनीसा । कहि न सकहि सत कोटि अहीसा ॥
 तदपि जयाश्रुत कहउँ बखानी । सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥
 सारद दारुनारि सम स्वामी । रामु सूत्रघर अतरजामी ॥
 जेहि पर कृपा करहि जनु जानी । कवि उर अजिर नचावहि बानी ॥
 प्रनवउँ सोई कृपाल रघुनाथा । वरनउँ बिसद तासु गुन गाथा ॥
 परम रम्य गिरिवरु कलासु । सदा जहाँ सिव उमा निवासु ॥

दोहा—सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किनर मुनिद्वन्द ।

बसाहि तहाँ सुकृती सकल, सेवहि सिव सुखकन्द ॥१०५॥

शब्दार्थ—समागम = भेंट । अहीसा = शोषणाग । जयाश्रुत = तैसा सुना वैसा । धनुपानी = धनुष है हाथ में जिनके ऐसे श्रीरामचन्द्रजी । सारद = शारदा, सरस्वती । दारुनारि = कठपुतली । सूत्रघार = इच्छानुसार नचाने वाला । जनु = जन, भक्त । अजिर = आगन । बानी = सरस्वती । सुकृती = पुण्यात्मा । सुखकद = आनन्दकद ।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य ऋद्धाज से कह रहे हैं मैं तुम्हारे गुण और शील से भलीभांति परिचित हूँ । अब मैं तुम्हें श्रीराम की लीला कहता हूँ । हे मुनि ! सुनो, आज तुम्हारी भेंट से मेरे मन में जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता । हे मुनीश ! श्रीराम के चरित्र का कहीं ओर छोर नहीं है, वह अपार है । सौ करोड़ शोषणाग भी उसे नहीं कह सकते । फिर भी, जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणीपति ब्रह्मा तथा धनुष्पाणि राम का स्मरण करके कहता हूँ । हे मुनीश ! सरस्वती कठपुतली के समान है और अन्तर्यामी राम उसको नचाने वाले सूत्रघार हैं । अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते हैं, उनके हृदय रूपी आगन में वे सरस्वती को नचाया करते हैं । मैं उन्हीं कृपालु श्रीराम को प्रणाम करता हूँ और उन्हीं के निर्मल गुरो की कथा मैं कहता हूँ ।

बाईं ओर बैठने के लिए आसन दिया। शिवजी के पास बैठकर पार्वतीजी प्रसन्न हुई। (उसी समय) उन्हें पूर्व जन्म की कथा स्मरण हो आई।

पति के हृदय में दटा प्रेम जानकर पार्वतीजी हमकर प्रिय वचन बोली (यान्त्रिक्यजी कहते हैं कि) जो कथा सम्पूर्ण संसार का भला करने वाली है, उसे ही पार्वतीजी प्रकृति चाहती हैं।

हे संसार के स्वामी! मेरे पति और त्रिपुरानन्द का नाम करने वाले! आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। जितने शर, अक्षर नाग, मनुष्य और देवता हैं, सब आपके चरणमालों की सेवा करते हैं।

हे प्रभो! आप नमर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणत्प हैं। सब जन्तुओं और गुणों के धाम हैं और योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। शरणागतों के लिए आपका नाम कल्पवृक्ष है।

विशेष—अनूप्राप्त, उदाहरण, रूपक और लाटानुप्राप्त अलंकार।

मूल.—जौं मो पर प्रसन्न सुखरानी । जानिअ सत्य मोहि निज शाली ॥
 तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना । कहि रघुनाथ कया विधि नाना ॥
 जासु भवतु सुरतरु तर होई । सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥
 ससिभूपन अम हृदय विचारी । हरहु नाथ ! मम मति अन्न भारी ॥
 प्रभु जे मुनि परमारथवादी । कहहि राम कहुं ब्रह्म अनादी ॥
 सेस सारदा वेद पुराना । सकल करहि रघुपति गुन गाना ॥
 तुम्ह पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहुं अनंग आराती ॥
 रामु सो अवधि नृपनि सुत सोई । को अन्न अगुन अलक्षगति कोई ॥

दोहा—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि विरहें मति मोरी ।

देखि चरित महिमा सुनत अमति बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥

शब्दार्थ—जनित = उत्पन्न। ससिभूपन = शिव। परमारथवादी = ब्रह्म के ज्ञाता। अनंग आराती = कामदेव के शयु (शिव)। अन्न = अजन्मा। तनय = पुत्र। मोरि = भोली, बावली।

भावार्थ—(पार्वती शिव से कह रही हैं) हे मुझ की रागि! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हैं और सबमुझ मुझे अपनी सर्वथा दानी समझने हैं, तो हे प्रभो! आप श्री रघुनाथ की अनेक प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर

कीजिए। जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दारिद्र्य-जन्म दुख को क्यों सहेगा ? हे चन्द्रमा को भूषण बनाने वाले ! हे नाथ ! हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के बड़े भारी भ्रम को दूर कीजिए।

हे प्रभो ! जो परमार्थ-तत्त्व के ज्ञाता मुनि हैं, वे राम को अनादि ब्रह्म कहते हैं तथा जेप जी, सरस्वती, वेद और पुराण सब राम के गुण गाते हैं। हे काम के शत्रु ! आप भी दिन रात आदर-पूर्वक राम-राग जपते हो। क्या वह राम अयोध्या का राजकुमार है, या वह कोई अजन्मा, गुणातीत और अगोचर है ?

यदि वह राजकुमार है तो ब्रह्म कैसे ? और यदि ब्रह्म है तो स्त्री के विरह में उसकी बुद्धि बावली कैसे हो गई ? उनके इस प्रकार के चरित्र को देख एव उनकी महिमा को सुन मेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रम में पड़ गई है।

मूल — जौं अनीह व्यापक विभु कोऊ । कहह बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
 अथ जानि रिस उर जनि घरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥
 मैं बन दीखि राम प्रभुताई । अति भय विकल न तुम्हहि सूनाई ॥
 तदपि मलिन मन बौघु न भावा । सो फलु भली भाति हम पावा ॥
 अजहूँ कछु संसज मन मोरें । करहु कृपा बिनबजें कर जोरें ॥
 प्रभु तब मोहि वहु भाति प्रबोधा । नाथ सो समुक्षि करहु जनि क्रोधा ॥
 तब कर अस विनोह अथ नार्हीं । राम कथा पर रचि मन माहीं ॥
 कहहु पुनोत राम गुन गाथा । भुजगराज भूपन सुरनाया ॥

दोहा— बबजें पद घरि घरनि सिरु, बिनय करउं कर जोरि ।

वरनहु रघुवर विसद जसु, श्रुति सिद्धात निचोरी ॥१०९॥

शब्दार्थ — अनीह — इच्छा-रहित । विभु = सर्वव्यापक, विष्णु, स्वामी, ब्रह्म । बुझाई = समझा कर । प्रबोधा = समझाया या । विमोह = अज्ञान । भुजगराज भूपन = सर्पराज को भूपन के रूप में धारण करने वाले । घरनि = पृथ्वी ।

जो इच्छा-रहित, सर्वव्यापक ब्रह्म कोई और है, तो हे स्वामी ! उसे समझाकर कहिए। मुझे नादान समझकर हृदय में क्रोध नहीं करना और जिन तरह से मेरा मोह दूर हो, वही कीजिये।

मैंने वन में श्रीगण की प्रभुता देगी थी, लेकिन भय से अत्यन्त व्याकुल होने के कारण मैंने उसे आपकी नहीं मुनाया। तो भी मेरे मलिन मन में जान नहीं हुआ और उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया।

अब भी मेरे मन में कुछ सन्देह है। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो 'तब आपने मुझे बहुत तरह से मनसाया था (कि मैं नहीं समझी), हे नाम ! उस बात को यादकर श्रेय मत करना।

दुझे अब पहले जैना मोह नहीं है तथा श्रीगण की कृपा पर अब हृदय में प्रेम है। (इच्छित्ये) हे शेषनाम की अलंकार रूप में धारण करने वाले देवताओं के नाम ! आप श्रीराम के गुणों की पवित्र कथा कहिये।

मैं पृथ्वी पर निर टेर आपने वरपो की वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि आप वेदों के सिद्धान्त की निचोड़कर श्री रघुनाथजी के निर्मल यज्ञ का वर्णन कीजिये।

मूल—जद्यपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन भ्रम वचन तुम्हारी ॥
गूढत तत्व न साधु दुरावाहिं। भारत अधिकारी जहूँ पारवाहिं ॥
जति भारति पृच्छत सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दायी ॥
प्रयत्न सो कारण कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी ॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा।
कहहु जया जानकी बिवाही। राज तजा सो रूपन काही ॥
वन बनि कौहे चरित अपारा। कहहु नाथ जिनि रावन नारा ॥
राज बंठि कौन्ही बहुलीला। सबल कहहु संकर सुखसौला ॥

टोहा--बहुतरि कहहु कषणायनन, कौन्ही जो अचरज राम।

प्रजा सहित रघुवंशननि किनि गवने निज धाम ॥११०॥

शब्दार्थ - जोषिता = जोषिता, स्त्री। भारत = दुली, पीलित। दुरावाहिं = छिपने हैं। सुरराया = देवताओं के स्वामी। दायी = दया। वपु = शरीर। मुल सीला = मुल स्वल्प। गवने = गये।

अद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे मुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ, तो भी मैं मन, कर्म और वचन से आपकी दासी हूँ। साधु जन जहाँ जाते अधिकारी होते हैं वहाँ गूढ तत्व को भी उनसे नहीं छिपाते।

हे देवताओं के स्वामी ! मैं बहुत ही दीनता से पूछती हूँ, आप मुझ पर दया करके श्रीरघुनाथ जी की कथा कहिये । पहले तो वह कारण विचार के कहिये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है ।

हे प्रभो ! फिर श्रीराम के अवतार की कथा कहिये (कि क्यों हुआ) और उनका उदार बालचरित्र सुनाइये । फिर जिस प्रकार उन्होंने जानकी जी से विवाह किया, वह कथा कहिये और बतलाइये कि किस दोष के कारण उन्होंने राज्य छोड़ा ?

फिर उन्होंने वन में रहकर जो अपार चरित्र किये और जिस तरह रावण को मारा, हे नाथ ! वह सब कहिये । हे मुखस्वरूप शंकर ! राज्य-सिंहासन पर बैठकर भी जो उन्होंने बहुत सी लीलाएँ करो, उन सबको कहिये ।

फिर, हे दया-निधान ! श्रीराम ने जो अद्भुत चरित्र किये उन्हें भी कहिये । वे रघुकुल क्षीरोमणि प्रजा-सहित अपने घाम बैकुण्ठ को कैसे गये ?

विशेष :—अनुप्रास और लाटानुप्रास अलंकार ।

मूल—पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बलानो । जेहि विग्यान मगन मुनि ग्यानी ॥
भगति ग्यान विग्यान विरागा । पुनि सब वरनहु सहित बिभागा ॥
औरठ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति विमल विवेका ॥
जो प्रभु में पूछा नहि होई । सोउ दयाल राखहु जान गोई ॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर वेद बखाना । आन जीय पांवर का जाना ॥
प्रसन्न उमा के सहज सुहाई । छल विहीन सुनि सिव मन भाई ॥
हर हिये रामचरित सब आए । प्रेम पुलक लोचन जल छाये ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आषा । परमानंद अनित सुख पावा ॥

दोहा—मगन ग्यानरत शंभु जग, पुनि मन चाहेर कोन्ह ।

रघुपनि चरित महेश तव हरपति बरने कोन्ह ॥१११॥

शब्दार्थ — गोई = सिंहासन । जाग = अग्य । पावर = पावर, नीव ।
रस = आनन्द । दइ जग = दो पदों का ।

भावार्थ — (पारंगतों शिखरी में — हूँ स्त्री हूँ) हे प्रभो ! फिर आप मुझे उस सत्य को समझाएँ जिसका विज्ञान पान करना मैं शरीर मुनि महा भय रहते हूँ । फिर भक्ति ध्यान विग्यान और योग्य का स्वयं विभागी के कथित

वर्णन कीजिए। इनके अलावा राम के और भी अनेक गूह्य हैं और हे नाम। आपका ज्ञान अत्यन्त निमल है, जब मुझे उनको भी बतिए। हे प्रभो! जो बात मैंने न पूछी है, हे क्या ठु! वह भी आप मुझे ने प्रियात्त न बतिए (वह भी आप मुझे गूह्य बतिए।) जेद गिना कहते हैं कि आप तीनों लोकों के गुरु हैं, अन्य किंच जीव उमें कसे जान सकते हैं? पावती के इन स्वार्थिक, सुन्दर और दृढ-रहित पत्रों को मुनगा गिबजी प्रमत्त हुए और उनको पावती के ये प्रश्न बहुत अच्छे लगे। फलतः गिबजी के हृदय में नारा नामचरित्र धूम गया, प्रेम के कारण उनका मनो रोमांचित हो गया और नेशों में जल भर आया। श्रीराम का रूप गिबजी के हृदय में जागृत होने से स्वयं आनन्द स्वल्प गिबजी ने भी अपार सुख का अनुभव किया।

श्रीराम के ध्यान के आनन्द में गिब दो घंटों तक डूबे रहे, फिर उन्होंने मन को बाहर लिया, तदनन्तर वे प्रमत्त होकर श्रीराम का चरित्र वर्णन करने लगे।

मूल—सूठे सत्य जाहि विनु जानें। जिम नुजग विनु रजु पहिचानें ॥
 जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जया सपन भ्रम जाई ॥
 बंबड बालरूप सोइ रामू। तब सिधि सुलभ जपत जितु नामू ॥
 मगल भवन समगल हारो। ब्रबड सो दसरय अजिर बिहारो ॥
 करि प्रनाम रामहि छिपूराओ। हरपि सुवा सन गिरा उचारो ॥
 घन्य घन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहि कोउ उपकारो ॥
 पूछेहु रघुपति कया प्रसगा। सकल लोक जग पावति गगा ॥
 तुम्ह रघुपति चरन अनुरागी। कोन्हिहु प्रसन्न जगत हित लागी ॥
 दोहा—राम कृपा तें पारवति, सपनेहुँ तब मन नाहि।

सौक मोह सबेह भ्रम, मम विचार कछु नाहि ॥११२॥

शब्दार्थ—नुजग = साप। रजु = रज्जु, रस्सा। हेराई = लोप हो जाता है, छूट जाता है। ब्रबड = कृपा करें, प्रसन्न हों। अजिर = आगत।

भावार्थ—(गिबजी पावती से बह रहे हैं) जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य प्रतीत होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सी में साप का भ्रम हो जाता है, और जिसके ज्ञान लेने पर सच्चाई का इसी तरह लोप हो जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम छूट जाता है। मैं उन्हीं श्रीराम के बालरूप की बन्दना

करता हूँ, जिसका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। वे मंगल के धाम हैं और अमंगल के हरने वाले हैं वे दशरथ के आँगन में खेलने वाले बालरूप श्रीराम मुझ पर कृपा करें।

तदनन्तर त्रिपुर राक्षक का वध करने वाले शकर ने श्रीराम को प्रणाम किया और फिर प्रसन्न होकर अमृत के समाव मीठी वाणी में कहा—हे गिरि-राज कुमारी पार्वती ? तुम धन्य हो, धन्य हो। तुम्हारे समान कोई भी उपकारी नहीं है। तुमने श्रीराम की कथा का जो प्रसंग पूछा है, वह समस्त लोको तथा ससार को पवित्र कर देने वाली गंगा के समान है। तुम श्रीराम के चरणों में प्रेम रखने वाली हो, इसी से तुमने ससार के हित के लिए ऐसे प्रश्न पूछे हैं।

हे पार्वती ! मेरे विचार में श्रीराम की कृपा से तुम्हारे मन में स्वप्न में भी गोक, मोह, सदेह और भ्रम कुछ भी नहीं है।

विज्ञेय — अनुप्रास, उदाहरण, लाटानुप्रास, उपमा, वीप्सा और रूपक अलंकार।

मूल—तदपि असका कीन्हिहु सोई । कहत सुनत सब कर हित होई ॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं फाना । श्रवन रंघ अहिभवन समाना ॥
नयननिह सत दरस नहिं देखा । लोचन मोरपख कर लेखा ॥
ते सिर कटु तुवरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ॥
जिन्ह हरिभगति हृदय नहीं आनी । जोवत सब समान तेइ प्राणी ॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरपाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कं लीला । सुर हित दनुज विमोहनसिला ॥

दोहा — राम कथा सुरघेनु सम, सेवत सब सुख दानि ।

सत समाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि ॥११३॥

शब्दार्थ — असका = शका। श्रवण रंघ = कानों के छिद्र। अहिभवन = वावी, साप का विल। समतूला = समान। सब = शव, मुर्दा। जीह = जीभ। दादुर = मेंढक। सुरहित = देवताओं का हित करने वाली। सुरघेनु = कामधेनु।

भाषार्थ — फिर भी तुमने वही (पुरानी) शका की है, जिससे इस प्रसंग के कहने-सुनने से सबका हित होगा। जिन्होंने अपने कानों से भगवान् की कथा नहीं सुनी, उनके कानों के छेद साँप के विलों के समान हैं।

जिन्होंने अपने नेत्रों से सतों के दर्शन नहीं किये, उनकी वे आँखें मोरपत्र पर दीखने वाली आँखों के समान वृथा हैं। जो सिर भगवान् और गुरु के चरणों में नहीं झुकते वे कड़वी तूँबी के समान हैं।

जिनके हृदय में भगवान् की भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ, वे प्राणी होते हुए भी मृतक के समान हैं। जो जीम श्रीराम के गुणों का गान नहीं करती, वह मेटक की जीम के समान है।

वह हृदय वज्र के समान कठोर और निष्फुर है, जो भगवान् श्रीराम के चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं होता। हे पार्वती ! श्रीराम की छीला सुनो, जो देवताओं का हित करने वाली और दैत्यों को विशेष रूप में मोहित करने वाली है।

श्रीरामचन्द्र जी की कथा नामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जानकर इस कौन न मनेगा ?

विशेष .—अनुप्रास, उपमा, लाटानुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल—रामकथा सुन्दर कर तारी। संसय विहग उडावनिहारी ॥
 रामकथा कलि विटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराज-कुमारो ॥
 राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
 जया अनन्त राम भगवाना। तथा कथा कीरनि गुन नाना ॥
 तदपि जया श्रुत जति मति मोरो। कहिहउं देखि प्रीति अति तोरो ॥
 उमा प्रसन्न तब सहज सुहाई। सुखद संन रामत मोहि भाई ॥
 एक बात नहि मोहि नोहानी। जदपि मोह बस बहेहु भवानो ॥
 तुम्ह जो कहा राम कोठ माना। जेहि धृति गाव धरहि मुनि ध्याना ॥

दोहा—रुहहि सुनिह अस अघम नर, प्रसे जे नोह पित्तच ।

पापटो हरि पद विमुख जानहि झूठ न साच ॥११४॥

शब्दार्थ - नारी = ताली। विहग = पक्षी। विटप = बुल्हाडी। जया श्रुत = देखा मना है।

श्रीराम की कथा हाथों की सुन्दर तानी के समान सन्देहही पतियों

को उड़ाने वाली है। फिर रामकथा कलियुग रूपी पेड़ को काटने के लिए कुल्हाड़ी के समान है। हे पार्वती ! इसे श्रद्धापूर्वक सुनो।

वेदो मे श्रीराम के नाम, गुण, सुन्दर चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे गये हैं। जैसे भगवान् श्रीराम अनन्त है अर्थात् उनका अन्त नहीं है वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुणो का भी अन्त नहीं है।

तो भी जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसी के अनुसार तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर कहूँगा। हे पार्वती ! तुम्हारे प्रश्न स्वामाविक ही सुन्दर, सुखदायक और सतो के मत के अनुकूल है और मुझे भी अच्छे लगने वाले हैं।

परन्तु हे पार्वती ! एक बात मुझे नहीं सुहाई, यद्यपि वह तुमने मोह के वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा है कि वे राम क्या कोई और हैं, जिनको वेद गाते हैं और जिनका मुनिजन ध्यान करते हैं—

ऐसी बात नीच मनुष्य ही कहा-सुना करते हैं जो अज्ञानरूपी पित्राच के द्वारा प्रस्त हैं पाखण्डी है, और भगवान् के चरणो मे विमुख है तथा झूठ-सत्य मे कुछ भी भेद नहीं जानते।

विशेष—अनुप्रास और परपरित रूपक अलकार।

मूल—अग्य अकोविद अंघ अभागी । काई विषय मुकुर मन लागी ॥
 लंपट कपटी कुटिल विसेषी । सपनेहुँ सतसभा नहि देखी ॥
 कर्हिहे ते वेद असमत बानी । जिन्ह के सूक्ष लाभु नहि हानी ॥
 मुकुर मलिन अरु नयन विहीना । रामरूप देखिहि किमि दीना ॥
 जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहि कल्पित वचन अनेका ॥
 हरि माया बस जगत अमाही । तिन्हहि कहत कुछ अघटित नाही ॥
 वातुल भूत बिबस मतवारे । ते नहि बोलाहि वचन विचारे ॥
 जिन्ह छत महामोह भव पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहि काना ॥

बोहा—अस निज हृदयं विचारि तजु संसय भजु राम पद ।

सुनु गिरिराज कुमारि अम तम रवि कर वचन मम ॥११५॥

शब्दार्थ—अकोविद = मूर्ख । मुकुर = दर्पण । लपट = व्यभिचारी । वेद असमत = वेद-विरुद्ध । जल्पहि = वक्ते हैं । कल्पित = मन गढन्त । अघटित = असमव । वातुल = वायुरोग-ग्रस्त । भूत = भूत प्रेतादि । कर = किरण ।

भावाचर्य—(सिवजी पार्वती से कह रहे हैं) जो लोग अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे और भाग्यहीन हैं, जिनके मन रूपो दर्पण पर विषय तपी काई जमी हुई है, जो व्यभिचारी, छली और बड़े कुटिल हैं, जिन्होंने कभी स्वप्न में भी सत-समाज के दर्शन नहीं किये, जिन्हें अपनी लाभ-हानि नहीं मझती, वे ही ऐसी वेद-विन्द्व वाते कहते हैं। जिनका हृदय तपी दर्पण मंला है और नेत्रो से हीन हैं, वे बेचारे राम से तप को कैसे देख सकते हैं ?

जिन्हें निरुंण-सगुण का कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मन गदन्त वाचें वक्ता करते हैं, जो हरि की माया के वश न होकर जात् में घूमते फिरते हैं (जन्म-मरण के चक्कर में फँसे रहते हैं), उनके लिए कुछ भी कह टालना असम्भव नहीं है।

जो सन्निपात आदि वायु रोग से ग्रस्त हैं जो भूत प्रेतादि के वश में हैं और जो नन्ने में चूर हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नहीं दोलते। जिन्होंने म्हाभोग् हों मदिरा पी रखी है, उनके कहने पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

हे पार्वती ! अपने हृदय में ऐसा विचार कर सशय छोड़ दो और श्रीराम के चरणो को भजो। हे पार्वती ! भ्रम रूपी अन्धकार के नाश करने के लिए मूर्ख की किरणो के समान मेरे वचनो को सुनो।

विशेष—अनुभ्रस, पुरम्परित् रूपक और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—सगुनहि अगुनहि नोह कछु भेदा । गावोह मुनि पुरान बुध बदा ॥
 अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम वस सगुन जो होई ॥
 जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जसु हिम उपल विलग नोह जैसे ॥
 जासु नाम लम तिमिर पतगा । तेहि किमि कहिअ विमोह प्रसंगा ॥
 राम सच्चिदानंद दिनेसा । नोह तहं नोह निसा लबलेसा ॥
 नहज प्रकान रूप भगवाना । नोह तह पुनि विग्यान विहाना ॥
 हरष विघाद ध्यान अघाना । जोव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
 राम ब्रह्म ध्यापाक जग जाना । परमानंद परेम पुराना ॥

सोहा—पुरुष प्रनिद्ध प्रकास निधि, प्रगट पगावर नाथ ।

रघुकुंज ननि मम त्वामि सोइ, कहि सिवें नायड नाय ॥११६॥

शब्दार्थ—बुद्ध = बुद्धिमान । अरूप = निराकार । अलख = अव्यक्त ।

हिमउपल = ओला । तिमिर = अन्धकार । पतगा = मूर्य । दिनेमा = सूर्य ।
विहाना = प्रात काल । अहमिति = अहमत्व । परेम = परेश, परमात्मा । ।
पुराना = पुराण पुरुष । परादर = कारण और कार्य, विश्व ।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती को ममझा रहे हैं) सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है (दोनों एक ही हैं)—मुनि, पुराण, पंडित और वेद सभी ऐसा कहते हैं । जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और अजन्मा है, वही ईश्वर भक्तों के प्रेम-वश सगुण हो जाता है ।

जो निर्गुण है, वह सगुण कैसे हो सकता है, इसका स्पष्टीकरण करने हुए शिवजी कहते हैं कि जैसे जल और ओले में भेद नहीं (दोनों जल ही हैं), ऐसे ही निर्गुण और सगुण में कोई भेद नहीं (दोनों में एक ही ईश्वरत्व है) । जिसका नाम ही भ्रम रूपी अन्धकार को मिटाने के लिए सूर्य के समान है, उस (ईश्वर) को मोह के वश में कैसे कहा जा सकता है ?

राम मत्चित् और आनन्द स्वरूप है, मूर्य है, वहाँ मोह रूपी रात्रि का लवलेख भी नहीं है । वे निसर्गत प्रकाश रूप हैं और वे पड़ ऐश्वर्य युक्त भगवान् हैं । जब वे स्वयं सदा प्रकाशमान हैं, तब वहा ज्ञान रूपी प्रात काल होने का प्रश्न ही नहीं उठता । हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहता और अभिमान ये सब जीव के धर्म हैं । श्रीराम तो व्यापक ब्रह्मा, परमानन्द स्वरूप, परात्पर परमात्मा और पुराण पुरुष हैं, इस बात को सारा ससार जानता है ।

जो पुराण पुरुष है, प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भंडार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जो चराचर के स्वामी हैं, वे ही रघुकुल मणि राम मेरे स्वामी हैं, ऐसा कह कर शिवजी ने उन्हें प्रणाम किया ।

विशेष—उदाहरण अलंकार ।

मूल—निज भ्रम नहिं समझहिं अग्यानी । प्रभु परं मोह धरहिं जउ प्राणी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी । क्षापेहुं भानु कर्हिं कुविचारी ॥
चित्तव जो लोचन अगुलिं आएँ । प्रगट जुगल सति तेहिं के भाएँ ॥
उमा राम चिपड़क अस मोहा । नभ तम धूम घूरि जिमि सोहा ॥
विषय करन मुर जीव समेता । सकल एकतें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अमाद अथवपति सोई ॥

जगत प्रकालन प्रकासक रामू । मायावीन ग्यान गुन घामू ॥
 जानु सत्यता तें जड माया । नाम सत्य इव मोह सहया ॥
 दोहा—रजत सीप महूँ नाम जमि जया भानु कर वारि ।

जदपि मूया तिहुँ काल सोइ, क्रम न सकइ कोउ टारि ॥११७॥

शब्दार्थ—घरहि = आरूप करते हैं । घन पटल = बादलों का समूह या पर्दा । शोपिठ = टाँ लिया । चितव = देखते हैं । जुगल = दो । मोहा = दीखना । करन = करण, इन्द्रिय । रजत = चादी । नाम = प्रतीत होना । कर = किरण ।

भावार्थ—(मित्रजी पार्वती को नमस्कार रहे हैं) अज्ञानी पुरुष अपनी भूल तो नहीं देखते, किन्तु वे भूत्रं भगवान् पर मोह का आरोप करते हैं (दोष लगाते हैं) । आकाश में बादलों ने समूह में सूर्य के ढक जाने पर कुविचारी (अज्ञानी) लोग कहते हैं कि सूर्य अस्त हो गया (किन्तु यह बात गलत है) ।

जो मनुष्य शिव के आगे अशुली रख कर देवता है, उसके लिए तो प्रत्यक्ष ही दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं । हे उमा ! श्रीराम के विषय में इस प्रकार मोह की वृष्णा करना ऐसा ही है जैसा यह सोचना कि आकाश में अन्यवार, धुआँ और धूल भरी है । वास्तव में आकाश निर्मल और निर्लेप है, वहाँ धूल और धुआँ का क्या काम ? इसी प्रकार राम भी नित्य निर्मल और निर्लेप है, वहाँ मोह का क्या काम ?

विशेष—उदाहरण भूलकार ।

भूल—एहि विधि जग हरि आश्रित रहई । यद्यपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौ सपने सिर काट कोई । विनु जागे न हरि दुख होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥
आदि अत कोउ जासु न पावा । सति अनुमानि निगम अस गावा ॥
विनु पद चलइ सुनइ विनु काना । फर विनु करम करइ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । विनु वानी वक्ता वऽ जोगी ॥
तन विनु परस नयन विनु देखा । प्रहइ प्रान विनु वास असेषा ॥
असि सब भाति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहि वरनी ॥

दोहा—जेहि इमि गार्वाह वेद वुघ, जाहि घरहि मुनि ध्यान ।

सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान् ॥११८॥

शब्दार्थ—अहई = है । आनन = मुख । वक्ता = वक्ता । जोगी = यानी, योग्य । परस = स्पर्श करना । हित = हितकारी ।

भावार्थ—इस प्रकार यह जगत् भगवान् के आश्रित रहता है । यद्यपि यह असत्य है तथापि दुःख देता ही है । जैसे कोई स्वप्न में सिर काटने तो बिना जाने उसका दुःख दूर नहीं होता ।

हे पार्वती ! जिनकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है, वे ही कृपाल श्रीराम हैं । जिनका आदि और अन्त किसी ने नहीं पाया, लेकिन वेदों ने अपनी बुद्धि के अनुमान से ऐसा कहा है—

वह ब्रह्म बिना पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है बिना हाथ के तरह-तरह के काम करता है, बिना मुख के सब रसों का आनन्द लेता है और बिना ही वाणी के बोलने वाला तथा बड़ा योगी है ।

वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना आँख के देखता है और बिना ही नाक के सब गन्धों को ग्रहण करता है । इस तरह नव प्रकार से उस ब्रह्म की करनी ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

जिन्हें वेद और पण्डित इस प्रकार गाते हैं और मुनिजन जिनका ध्यान

धरने हैं, वे ही महाराज दशरथ के पुत्र, भानो के हिनकाती, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीराम हैं।

विशेष—उदाहरण ३^१ विभावना अन्तर्गत ।

मूल—काती मरत जतु अरत्तोपी । जामु नाम बल फण्ड विमोकी ॥
 सोइ प्रभु मोर चराधन स्वामी । रघुधर सर उर अन्तरजामी ॥
 विवसहुं जामु नाम नर कह्यो । जनम अनेऊ रचित अघ दह्यो ॥
 सावर सुमरिन् ले नर कर्यो । भव वारिधि गोपद इव तरही ॥
 राम सो परमात्मा भवानी । तहे भ्रम अनि अविहित तव वानी ॥
 अस ससय धान उर गह्यो । ग्यान विराग मरल गुन जाह्यो ॥
 सुनि सिव के भ्रम भजन बचना । मिटिगं सव कुतरक के रचना ॥
 भई रघुपनि पद प्रीनि प्रतीती । दाखन असंभावना बीती ॥

बोहा—पुनि पुनि प्रभु पद फलल गहि, जोरि पकरह पानि ।

बोलि गिरिजा धवन वर, मनहुं प्रेम रस सानि ॥१११॥

एवार्थ—जतु = प्राणी । अवलोपी = देवावर । विवसहु = विना इच्छा के भी । अघ = पाप । दह्यो = जल जाने हैं । वारिधि = समुद्र । गोपद = गाय के खुर से बना हुआ गड्ढा । अविहित = अनुचित । आनन = लाते ही । जाह्यो = नष्ट हो जाते हैं । भजन = नास करने वाले । कुतरक के रचना = बृथा वाद-विवाद करना । प्रतीति = विद्वान् । दाखन = कठिन । असंभावना = जिसका होना संभव नहीं । पकरह पानि = कमण्ड के समान हाथ ।

भावार्थ—जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं शोक-रहित कर देता हूँ (अर्थात् सत्कार के आवागमन से छुड़ाकर मोक्ष देता हूँ) । वे ही चर-अचर के स्वामी, सबके घट-घट की जानने वाले भगवान् श्रीराम मेरे प्रभु हैं ।

विवस होकर (विना इच्छा के) भी जिनका नाम लेने में मनुष्यों के अनेक जन्मों के इकट्ठे हुए पाप जल जाते हैं । फिर जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे सत्काररूपी समुद्र को गाय के खुर से बने हुए गड्ढे के समान (विना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं ।

हे पार्वती ! वे ही राम परमात्मा हैं । उनके विषय में तुमने जो भ्रम

प्रकट किया वह अत्यन्त ही अनुचित है। ऐसा सन्देह हृदय लाते ही ज्ञान, वैराग्य और सारे सदगुण चले जाते हैं।

शिवजी के भ्रम को नाश करने वाले वचनों को सुनकर (पार्वतीजी के) सब कुतर्कों की रचना मिट गयी और श्रीराम के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास हो गया तथा कठिन असम्भावना जाती रही।

बार-बार भगवान् शिवजी के चरणकमलों को छूकर और अपने कमल समान हाथों को जोड़कर पार्वतीजी मानो प्रेम-रस में सानकर सुन्दर वचन बोली।

विशेष—अनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक, उपमा और उदाहरण अलंकार

मूल—ससि कर तम सुवि गिरा तुम्हारी। मिठा मोह सरदातप भारी ॥
 तुम्ह कृपाल सवु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥
 नाथ कृपा अब गयउ विषावा। सुखी भयउ प्रभु चरन प्रसादा ॥
 अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जइपि सहज जह नारि अयानि ॥
 प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
 राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्व रहित सब उर पुर वासी ॥
 नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहू वृपकेतू ॥
 उमा वचन सुनि परम विनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥

बोहा—हिये हरषे कामारि तब, सकर सहज सुजान।

बहु बिधि उमहि प्रससि पुनि, बोले कृपानिधान ॥१२०॥ (क)

सोरठा—सुनु सुम कथा भवानि, रामचरित मानस विमल।

कहा भुसुण्डि बखानि, सुना बिहग नायक गरुड ॥१२०॥ (ख)

सो सवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब।

सुन्हू राम अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ ॥१२०॥ (ग)

हरि गुन नाम अपार, कथा रूट अगनित अमित।

मैं निज मति अनुसार, कहउ उमा साबर सुन्हू ॥१२०॥ (घ)

शब्दार्थ—सनिकर = चन्द्रमा की किरण। सरदातप = शब्द + आतप (शब्द ऋतु की धूप का ताप)। किंकरि = दानी। अयानी = ज्ञान-हीन। अहहू = है। चिन्मय = ज्ञान स्वरूप। वृपकेतु = शिव। विनीता = नन्न।

जानारि—जानदेव के शत्रु (शिव) । चिह्न नामक—पक्षियों का राजा ।
 बहव—बहूँगा । अनघ—पापरहित, पाप-नाशक ।

भावार्थ—राम के विषय में पूर्ण ज्ञान होने पर पार्वती शिवजी के प्रति वृत्रहना के भाव प्रकट कर रही हैं—हे स्वामी ! आपही वृत्रहना की शक्ति के समान शक्ति वाली मुझे कर मेरा अज्ञान सभी शत्रु शत्रु की धूल का शरीर ताप मिट गया है । हे शृगाल ! आपने मेरा सब मन्देह हर लिया, अब मुझे राम का अपर्यय स्वरूप ज्ञात हो गया । हे नाथ ! अब आपकी कृपा से मेरा साग विषाद जाता रहा, मैं आपसे चरनी ली कृपा ने चुकी हो गई । यद्यपि मैं स्वभाव से ही ज्ञान हीन मूर्ख नारी हूँ, तथापि अब आप मुझे अपनी दास समझ लें, हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो जो दान मैंने सर्वप्रथम आपसे पूछी थी, आज वही करिए ।

राम ब्रह्म है, ज्ञान-स्वरूप है और नाश-रहित है, वे स्वयं रहित हैं और सबकी हृदय सभी नगरी में निवास करने वाले हैं—ये सब मरण होते हुए भी हे नाथ ! उन्होंने नन्तन चित्र चारण में चारण किया ? हे धर्म की ध्वजा को चारण करने वाले प्रभो ! यह मुझे समझा कर कहिए ।

पार्वती के इस प्रकार अत्यन्त नम्र वचन सुन कर और राम-कृपा में उसकी पवित्र प्रीति देखकर जानदेव के शत्रु, महज नुजान और कृपा के मिश्रण शिवजी मन से बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने उमा की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और कहा—हे पार्वती ! दिनल रामचरितमानस की वह शुभ कथा सुनो जिसे ऋतुमुमुक्षु ने दिस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड ने सुना । उन दोनों भी उदार उवाद विभक्त प्रकार हुआ, मैं तुम्हें जाने बताऊँगा । अनो तो तुम राम के अवतार का परम सुन्दर और पाप-नाशक चरित्र सुनो । श्रीहरि के गुण और नाम अपार हैं, उसी प्रकार उनकी कथाएँ भी अगणित हैं और रूप भी अमित है, उन्हें मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, हे पार्वती ! तुम आदर-पूर्वक सुनो ।

विशेष—उपमा, लज्ज और अनुप्रास अलंकार ।

मूल—सुनु गिरिजा हृत्चरित सुहाए । विपुल विमल निगमाग गाए ॥
 हरि अवतार हेतु लोहि होई । इक्षित्यं कहि लाइ न सोई ॥
 राम अक्षय्यं बुद्धि नन बानी । मन हमार अम सुनहि मयानी ॥

तदपि सत मुनि वेद पुराना । जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना ॥
 तस मं सुमुखि सुनावळ तोही । समुक्ति परइ जस कारन मोही ॥
 (जब जब होइ धरम कं हानी । बाढाहि असुर अवम अभिमानी ॥
 करहि अनौति जाइ नहीं वरनी । सीदाहि विप्र धेनु सुर घरनी ॥
 तव तव प्रभु धरि विविध सरीरा । हराहि कृपा निधि सज्जन पीरा ॥

बोहा—असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु ।

जग विस्तारहि बिसव जस, राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

शब्दार्थ—इदमित्य = वस यही है ऐसा । स्वमित = अपनी बुद्धि । हानी =
 ह्रास । बाढाहि = बढ जाते है । सीदाहि = कष्ट पाते है । थापहि = स्थापित करते
 हैं । श्रुतिसेतु = वेदो की मर्यादा ।

भावार्थ—हे पार्वती ! भगवान् के विस्तृत और निर्मल चरित्रो को
 सुनो, जिनको वेदो और शास्त्रो मे कहा गया है । भगवान् का अवतार जिस
 कारण से होता है, वह कारण 'वस यही है' ऐसा नहीं कहा जा सकता ।
 (क्योंकि भगवान् के अवतार के अनेक कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो
 सकते हैं जिन्हे कोई जान ही नहीं पाता ।)

हे सयानी ! सुनो, हमारा विचार तो ऐसा है कि बुद्धि, मन और वाणी
 से श्रीराम के विषय मे किसी तरह की तर्कना नहीं हो सकती । तो भी सत,
 मुनि, वेद और पुराण अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं,

और जैसा कारण मेरी समझ मे आता है वैसा ही हे सुमुखी ! मे
 तुम्हे सुनाता हूँ । जब-जब (पृथ्वी पर) धर्म की हानि होती है और नीच
 अभिमानी राक्षस ऋढ जाते हैं, और वे ऐसी अनौति करते हैं कि जिमका वर्णन
 नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब तब वे
 कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण करते हैं और सतजनो की पीडा
 हरते हैं ।

वे असुरो को मारकर देवताओ को (अपने-अपने पद पर पुन) स्थापित
 करते हैं, अपने (श्वास रूप) वेदो की मर्यादा रखते हैं और सत्सर मे अपना
 निर्मल यश फैलाते है । यही श्रीराम के जन्म लेने का कारण है ।

विशेष—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार ।

मूल—सोइ जस गाइ भगत भव तरहों । कृपासिंधु जन हित तनु धरहों ॥
 राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक तें एका ॥
 जनम एक बुइ कहउ बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
 द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥
 विप्र थाप तें हुनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
 कनक कसिपु अरु हाटक लोचन । जगत विदित सुरपति मदमोचन ॥
 विजई समर वीर बिरयाता । धरि वराह वपु एक निपाता ॥
 होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जन प्रह्लाद सुजस विस्तारा ॥
 बोहा—भये निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान ।

कु भ करन रावन सुनट, सुर विजई जग जान ॥१२२॥

शब्दार्थ—भव = ससार । असुर = राक्षस । कनककसिपु = हिरण्यकशिपु (भक्त प्रह्लाद का पिता) । हाटकलोचन = हिरण्याक्ष (हिरण्यकशिपु का यमज भाई, जिसे विष्णु ने वाराह का अवतार लेकर मारा था) । निपाता = मारा । नरहरि = नृसिंह । सुभट = योद्धा ।

उसी यश को गाकर भक्त-जन नसार से तर जाने हैं, क्योंकि कृपामिन्धु भगवान् भक्तों के लिए ही शरीर धारण करने हैं । श्रीराम के जन्म लेने के अनेक वारण हैं, जो एक से एक बढ़कर विचित्र हैं ।

हे सुन्दर वृद्धि वाली ! तुम नावधान होकर सुनो—मैं उनके एक-दो जन्मों का विस्तार से वर्णन करता हूँ । भगवान् श्रीहरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं ।

उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों (ननकादि) के शाप से तामनी अनुरो का शरीर पाया और वे हिरण्यकश्यप तथा हिरण्याक्ष नाम के दंश्य जगत् में देवराज इन्द्र के गर्व को नाश करने वाले प्रसिद्ध हुए ।

वे युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले नामी वीर थे । भगवान् ने उनमें से एक (हिरण्याक्ष) को शूकर का शरीर धारण करके मारा, फिर नरसिंह रूप धारण करके दूसरे (हिरण्यकश्यप) को मारा और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया ।

वे ही जाकर देवताओं को जीतने वाले नसार-प्रसिद्ध राक्षस रावण और कुम्भकर्ण हुए जो महान योद्धा और बड़े बलवान थे ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

मूल मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जन्म द्विज वचन प्रवाना ॥
 एक वार तिनके हित लागी । धरेउ सरीर भगत अनुरागी ॥
 कश्यप अदिति तहाँ पितु माता । दशरथ कौसल्या विख्याता ॥
 एक कल्प एहि विधि अवतारा । चरित पवित्र किए ससारा ॥
 एक कल्प सुर देखि दुखारे । समर जलंधर सन सब हारे ॥
 सभु कीन्ह सग्राम अपारा । दनुज महाबल मरइ न सारा ॥
 परम सती असुराधिप नारी । तेहि बल ताहि न जीतहीं पुरारी ॥
 दोहा—छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुग फारज कीन्ह ।

जब तेहि जानहि मरम तव आप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

शब्दार्थ—मुकुत = मुक्त । हते = मारे जाने पर । प्रवाना = प्रमाण ।
 कल्प = कल्प (समय) । जलंधर = राक्षस । दनुज = राक्षस । असुराधिप =
 दैत्यराज । मरम = भेद । आप = शाप । टारेउ = भग किया ।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती को राम (भगवान्) के अवतार लेने के कारण बता रहे हैं) भगवान् के द्वार मारे जाने पर भी वे अर्थात् हिरण्याक्ष और हिरण्यगर्गिषु मूक नही-हुए, क्योंकि ब्राह्मण के वचन का प्रमाण तीन जन्म के लिए था (उन्हें तीन वार राक्षस योनी में जन्म लेने का शाप दिया गया) । अतः एक वार भगवान् को उनके कल्याण के लिए क्षरीर धारण करना पडा । वहाँ उस अवतार में कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, इस जन्म में वे कौसल्या और दशरथ के नाम में विख्यात हुए । एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर भगवान् ने ससार में पवित्र लीलाएँ की ।

एक कल्प में देवताओं को दुःखी देख कर, क्योंकि वे मंत्र जलंधर दैत्य से युद्ध में हार गये थे, यहाँ तक कि शिवजी ने भी उसके साथ घोर युद्ध किया, फिर भी वह महाबली दैत्य नहीं मारा गया, क्योंकि उस दैत्यराज की रत्नी परम सती (वही ही पतिव्रता) थी, इन कारण त्रिपुर राजम का विनाश करने वाले शूर भी उस दैत्य को नहीं जीत सके ।

ऐसी स्थिति में भगवान् ने छल से उनकी पत्नी का व्रत भंग किया

और देवताओं का काम किया। जब यह भेद उस स्त्री को मालूम होगया तब उस स्त्री ने श्रेय करके भगवान् को शाप दिया।

विशेष—जलधर ने युद्ध में हार जाने के कारण देवता बड़े दुःखी थे। उनके उद्धार के लिए भगवान् ने साधु का वेश धारण किया और वे जलधर के धर गये। उसकी पत्नी का नाम वृन्दा था, उसने साधु से युद्ध का हाल पूछा। इतने में वह क्या देखती है कि जलधर के शरीर के सब अंग उसके सामने छा गिरे। उन्हें देखे वह विलाप करने लगी। इस पर साधु वेगधारी भगवान् ने कहा कि तू सती है, इसके सब अंगों को जोड़ दे, तेरे मरने से यह जी उठेगा। वृन्दा ने ऐसा ही किया, जलधर जी उठा। वह उसके पाँव दाबने लगी। (किन्तु यह सब माया थी)। परशुम्प का शरीर छूने से वृन्दा का सतीपन नष्ट हो गया और उषर गिवर्जी ने जलधर को मार डाला। उसके मरते ही साधु और जलधर का कृत्रिम शरीर लुप्त हो गया। वृन्दा ने यह सब हाल जानकर भगवान् को शाप दिया कि तुम स्त्री के विद्वेष में बड़े दुःखी होओगे और मेरा पति तुम्हारी स्त्री को हरेगा।

मूल—तातु श्राप हरि दोग्द प्रमाना । कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥
 तहाँ जलधर रावन भयळ । रन हृति राम परम पद दयळ ॥
 एक जनम कर कारण एहा । जेहि लागि राम धरो नर देहा ॥
 प्रनि अपनार कया प्रभु केरी । सुनु मुनि बरनी कविन्ह घनेरी ॥
 नारद थाव दोग्द एक वाग । कल्प एक तेहि ली अवतारा ॥
 गिरिजा चरित नई मुनि बानी । नारद विष्णु अगत पुनि ग्यानी ॥
 बाग्न कदन थाव मुनि दोन्हा । का अपराध रमापनि कौन्हा ॥
 यह प्रसंग मोहि कहह पुराणे । मुनि मन मोह बाचरज नारी ॥

शेष—दोने विष्मि महेन तद, ग्यानी मूट न षोड ।

देहि जन रघुपति परहि जब, नो तम तेहि धन होइ ॥१२४॥ (क)

नोट—कहते राम पुन गायो, मरुदाज सादर सुनइ ।

नद भंजन रघुनाथ, मज्जु तुलसी तजि जान नद ॥१२४॥ (ख)

शरदार्थ—प्रमना दीन = प्रमान मान लिया, स्वर्गार उर लिया ।

कौतुक = साधु । कृपाल = दया । रमापनि = पत्नी । घनेरी = भगवान् । प्रभु = कया ।

नर भयळ = शत्रुनाशन का नाम करने वाले ।

भावार्थ —कौतुकनिधि दयालु भगवान् ने उस स्त्री के शाप को अगीकार किया। वहाँ (दूसरे जन्म में) जलघर रावण हुआ, जिसे श्रीराम ने युद्ध में मारकर मोक्ष प्रदान किया।

एक जन्म का यही कारण है, जिसके लिए श्रीराम ने मनुष्य-देह धारण की। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, कवियों ने भगवान् के हर एक अवतार की बहुत सी कथाओं का वर्णन किया है।

एक बार नारदजी ने (भगवान् को) शाप दिया, इसलिये एक कल्प में उसके लिए अवतार हुआ। शिवजी की इस बात को सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुई और बोली कि नारदजी तो ज्ञानी और भगवान् विष्णु के भक्त हैं।

मुनि ने किस कारण से भगवान् को शाप दिया? लक्ष्मीपति भगवान् ने उनका ऐसा क्या अपराध किया? हे शिवजी! इस प्रसंग को आप मुझे सुनाइये, क्योंकि मुनि के मन में मोह (अज्ञान) होना बड़े आश्चर्य की बात है।

तब महादेवजी हँसकर बोले कि न कोई ज्ञानी है, न कोई भूख। श्रीराम जब जिसको जैसा कर देते हैं, वह उस अणु वैसा ही हो जाता है।

(याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि) हे भरद्वाज! मैं श्रीराम के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो। (गोस्वामीजी कहते हैं) हे तुलसी! मैं और घमण्ड को छोड़ श्रीरघुनाथजी को भज। वे ससार के आवागमन से छुड़ाने वाले हैं।

विशेष —अनुप्रास अलंकार।

मूल—हिमगिरि गुहा एक अति पावनि । वह समीप सुरसरो सुहावनि ॥
 आश्रम परम पुनीत सुहावा । देखि देवरिषि मन अति भावा ॥
 निरखि सैल सरि विपिन विभागा । भयउ रमापति पद अनुरागा ॥
 सुमिरत हरिहि आप गति वाघो । सहज बिमल मन लागि समावा ॥
 मुनि गति देखि सुरेस डेराना । कामहि बोलि कोन्ह-सुत्तमाना ॥
 सहित सहाय जाहु मम हेतु । चलेउ हरषि हिये जलचर केतु ॥

मुनासोर मन महें असि आसा । चह्त देवरिपि ममपुर वामा ॥
 ने कामी लोसुप जग माहीं । कुटिल काक इव तवहि डेराहीं ॥

दोहा—सूख हाडू लं भाग सठ, स्वान निरखि मूगराज ।
 छीनि तेइ जनि जान जड, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥१२५॥

शब्दार्थ --हिमगिरि = हिमालय । गुहा = गुफा । मुन्नरी = गंगा ।
 सुहाना = सुन्दर । वारी = रक गट । मुरेन = इन्द्र । कामहि = कामदेव को ।
 जलचर-वेनु = मीनध्वज कानदेव । मुनासोर = इन्द्र । तिमि = उनी प्रकार ।

भावार्थ --हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा है, जिनके समीप ही गंगार्ज्व बहती है । ऐसे परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को जब मुनि नारद ने देखा तो वह उन्हें बहुत ही अच्छा लगा ।

पवन, नदी और मात-भानि के वनो को देखकर नारदजी का भगवान् के चरणों में प्रेम उत्पन्न हुआ (कि इन परम समशील स्थान पर बैठकर तप करना चाहिये) । भगवान् का स्मरण करने ही उनके शप (जो शप उन्हें दसगज ने दिया था, जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) को गैर हो गयी और स्वभाव में ही उनका निर्मल मन समाधि में लग गया ।

नारद मुनि को सर्वोभयो स्थिति देखकर देवगज इन्द्र भयभीत हो गये । उनसे कामदेव को बुलाकर उनका बड़ा आदर्श-मन्त्रा, सिद्धा और पहा-भरे हिन के लिए तुम अपने महायको नरित (नारद को समाधि भग काने को) जानो । (यह मुन्यर) कामदेव मन में प्रमत्त होता हुआ चला दिया ।

(11) नारद जी ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। वे वीणा लिये सर्वत्र घूमते हैं और हरिग्रुण गाते हैं। कहा जाता है कि वे कलह-प्रिय हैं और लडाई-झगडा करवाते रहते हैं। एक बार दक्ष प्रजापति ने उन्हें यह शाप दिया था कि वे सदा घूमते रहेगे और एक जगह कहीं भी वे अधिक समय तक न रुकेंगे। इस शाप के कारण नारद जी दो घडी से अधिक कहीं नहीं ठहरते वे। हिमालय पर्वत पर उस पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर उन्होंने श्रीहरि का स्मरण किया और वे शाप-मुक्त हो गये। उन्होंने वही समाधि लगायी।

मूल—तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया बसत निरमयऊ ॥
कुसुमति विविध विटप वहरंगा। कूजहि कोकिल गुजहि भृगा ॥
चली सुहावनि विविध वयारी। काम कृसानु वडावनि हारी ॥
रंभाविक सुरनारि नवीना। सकल असम सर कला प्रवीना ॥
करहि गान बहु तान तरगा। बहु बिधि श्रीडहि पानि पतगा ॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कौन्हैसि पुनि प्रपंच विधि नाना ॥
काम कला कछ मुनिहि न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी ॥
सीम कि चाँपि सकई कोउ तासु। वड़ रखवार रमापति जासु ॥

बोहा—सहित सहाय सभौत अति, मानि हारि मन मैन।

गहेसि जाइ मुनि चरन तव, कहि सुठि आरत वैन ॥१२६॥

शब्दार्थ — मदन = कामदेव। निरमयऊ = रचा। कुसुमित = फूलों से लदे। विटप = वृक्ष। कूजहि = कूकती हैं। वयारी = हवा। कृसानु = अग्नि। सुरनारि = देवाङ्गना, अप्सरा। असमसर कला = काम-कला। पानि = हाथ। पतगा = गैद। प्रपंच = मागजाल। मनोभव = कामदेव। सीम = सीमा, मर्यादा। चाँपि = दवाना। मैन = कामदेव। गहेसि = पकड लिये। सुठि = सुन्दर। आरत वैन = दीन वचन।

भावार्थ—उम आश्रम में जब कामदेव गया, तब उनने अपनी माया से वहाँ बसन्त की रचना की। तरह-तरह के वृक्षों में रग-विरगों फूल चिल गये, कोयलें कूकने लगी और भेरि गुजारने लगे।

तीन तरह की (शीतल, मन्द और सुगान्धत) सुहावनी हवा चलने लगी जो काम की अग्नि को बढ़ाने वाली थी। रम्भा आदि नवयुवती देवागनाएँ, जो सबकी मंत्र कामकला में निपुण थी—

वे बहून सी तानो की तरंग में आकर गान करने लगी और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार से खेलने लगी। अपने ऐसे सहायकों को देख कामदेव प्रमत्त हुआ और फिर तरह-तरह की भाषा रखने लगा।

पर जब कामदेव की कोई भी कला मुनि पर हमर न कर सकी तब पापो कामदेव अपने ही भय से डर गया कि मेरा कुछ अनर्थ न हो जाय। (निबली मूढे है कि हे पार्वती!) लक्ष्मीपति भगवान् जिन्हे बड़े रसक है, उनको नीला (मयादा) को ज्ञान ददा मन्ता है ?

अपने सभी सहायकों-सहित मत में हाथ मानकर कामदेव बड़ा नयभीत हुआ और हमने जानर बहून ही बातें बचन कहते हुए नारदजी के चरण पर्यट लिये।

शिशोप—गुरुर पद-भ्रंश्री, दनुजान् की छटा और कामदेव की करतूत पर्यंतोप हूं।

समा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता एवं अपनी करनी का सब वर्णन कर दिया । कामदेव की बातें सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ । उन सबने मुनि की प्रशंसा की और श्रीहरि को सिर झुकाया ।

तब नारद जी शिवजी के पास गये । उनके मन में कामदेव को जीतने का अहंकार हो गया था । उन्होंने कामदेव की करतूत शिवजी को सुनाई । महादेव जी ने नारद जी को अत्यन्त प्यारा समझकर उपदेश दिया-- हे मुनि ! मैं तुम से बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह यह बात तुमने मुझको सुनाई है, उस तरह भगवान् श्रीहरि को कभी मत सुनाना । यदि इसकी चर्चा चल भी जाय तो भी इनको छिपा लेना ।

यद्यपि शिवजी ने नारद जी को यह हित की शिक्षा दी थी, पर नारद जी को यह अच्छी न लगी । याज्ञवल्क्य बोले हे भरद्वाज ! अब जो कौतुक हुआ, उसे सुनो । हरि की इच्छा बड़ी बलवती है ।

मूल—राम कीन्ह चाहिँ सोइ होई । करै अन्यथा अस नहिँ कोई ॥
सभु बचन मुनि मन नहिँ भाए । तब विरचि के लोक सिधाए ॥
एक बार करतल वर चीना । गावत हरि गुन गान प्रवीना ॥
छीरसिंधु गवने मुनि-नाथा । जहँ बस श्री निवास श्रुतिमाया ॥
हरषि मिले उठि रमा निकेता । बँडे आसन रिपिन्ह समेता ॥
बोले विहसि चराचर राया । बहूते दिनन कीन्हि मुनि दाया ॥
काम धरित नारद सब भाषे । जद्यपि प्रथम वरजि सिध राखे ॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

दोहा— हंखें वदनि करि बचन महुं बोले श्री भगवान ।

तुम्हारे सुनरिन तें मिटहि, मोह मार सब मान ॥१२८॥

शब्दार्थ—अन्यथा = विरुद्ध, विपरीत । विरचि = ब्रह्मा । करतल = हाथ में । श्रुतिमाया = वेदों के मस्तक स्वरूप (मूर्तिमान् वेदान्ततत्त्व) । राया = स्वामी । जाया = पैदा हुआ । रत्न वदन = रत्ना मूह । जेहि = जिनको ।

भावार्थ—श्रीराम जो विया चाहे, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके । शिवजी के बचन नारदजी के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को गये ।

एक बार हाथ में नुन्दर वीणा लिये, भगवान् का यज्ञ गाने-गाते,

गानविद्या में निपुण मुनिनाथ नारदजी क्षीरसागर को गये, जहाँ लक्ष्मी के पति और वेदों के स्वामी रहते थे ।

(मुनि का देख) लक्ष्मीपति प्रसन्न हो उठकर मिले और श्रुति के साथ आसन पर बैठ गये । चराचर के स्वामी भगवान् हुँकर बोले—हे मुनि ! आज आपने बहुत दिनों में कृपा की ।

यद्यपि शिवजी ने उन्हें पहले ही मना कर दिया था, तो भी नारदजी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान् को कह सुनाया । रामजी की माया बड़ी ही प्रबल है । जगत् में ऐसा कौन पैदा हुआ है, जिसे वह मोहित न कर लेता हो ।

भगवान् खूब मुँह करके कोमल वचन बोले कि (हे मुनिराज !) तुम्हारे स्मरण करने से तो (दूसरों के) मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपने लिए तो कहना ही क्या !)

विशेष—(1) तुम्हारे सुमिरन तें मितहिं पवित का एक अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि तुम्हारे स्मरण करने पर ही तुम्हारे मोह, काम, मद और मान छूटेंगे, अभी नहीं छूटे ।

(11) 'मितहिं मोह मार मद मान' में वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

मूल—सुनु मुनि मोह होई मन ताकें । श्याम विराग हृदय नहिं जाकें ॥
 ब्रह्मवरज ब्रत रत मतिघोरा । तुम्हहिं कि करइ मनोभव घोरा ॥
 नारद कहेउ सहित अभिनाना । कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
 करनानिधि मन दील विचारी । उर अकुरेउ घरव तर भारी ॥
 बेगि सों में डारिहउ उखारी । पन हमार सेवक हितकारी ॥
 मुनि कर हित मम कौतुक होई । अवधि उपाय करवि में सोई ॥
 तव नारद हरि पद सिर नाई । चले हृदय अहमिति अधिकारि ॥
 श्रीपति निज माया तव प्रेरी । सुनहु कठिन करनी तेहि केरि ॥

दोहा—शिरचेउ मग महुं नगर तेहि, सत जोजन विस्तार ।

श्री निवासपुर तें अधिक रचना द्विविध प्रकार ॥१२९॥

शब्दार्थ—ताके = उमने । मनोभव = कामदेव । अहमिति = अभिमान !
 शिरचेउ = ग्वा । जोजन = योजन (भार कोम या बाठ मील) ।

भावार्थ—(भगवान् नारायण नारद से कह रहे हैं) है मुनि । सुनिए, मोह तो उसके मन में होता है जिसके हृदय में न ज्ञान होता है और न वैराग्य । आप तो ब्रह्मचर्य व्रत में लीन हैं तथा धीर-बुद्धि हैं । भला आपको कामदेव वशता सकता है ?

यह सुन नारद जी ने अभिमान के साथ कहा — हे भगवन् ! यह सब आपकी कृपा है । कर्णालिधि भगवान् ने अपने मन में विचार कर देखा कि नारद के मन में गर्वरूपी वृक्ष का अकुर पैदा हो गया है (कामदेव को जीतने का धमक हो गया है) । इसलिए मैं इसे तुरत ही उखाड़ फेंकूंगा, क्योंकि सेवको का हित करना हमारा प्रण है । मैं अवश्य ही वह उपाय करूंगा जिससे मुनि का तो हित होगा और मेरे लिए खेल होगा ।

इसके बाद नारदजी हरि के चरणों में आकर झुका कर चले गये, उस समय उनके हृदय में अभिमान और भी बढ़ा हुआ था । तब भगवान् ने अपनी माया को प्रेरित किया । अब तुम उस माया की कठिन करतूत सुनो ।

जिस रास्ते से नारद जी जा रहे थे, उस रास्ते पर भगवान् नारायण ने सौ योजन का एक नगर रचा, जो वैकुण्ठ से भी भक्ति-भाति की रचनाओं के कारण अधिक सुन्दर था ।

मूल—बसहिं नगर सुन्दर नर नारी । जनु बहु मनसिज रति तनु धारी ॥
तेहिं पुर बसइ सोल निधि राजा । अगनित ह्य गय सेन समाजा ॥
संत सुरेस सम बिभव दिलासा । रूप तेज बल नीति निवासा ॥
विश्वमोहिनी तासु कुमारी । श्री विमोह जिसु रूपु निहारी ॥
सोइ हरिमाया सब गुन खानी । सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥
करइ स्वयंवर सो नृप बाला । आए तहें अगनित महिपाला ॥
मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ । पुरवासिन्हु सब पूछन भयऊ ॥
सुनि सब चरित भूप गूहें आए । करि पूजा नृप मुनि बँडाए ॥

बोहा—आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि ।

कहहु नाथ गुन दोष सब, एहि के हृदय विचारि ॥१३०॥

शब्दार्थ — मनसिज = कामदेव । रति = कामदेव की पत्नी । ह्य = गय हाथी । विश्वमोह = मोहित हो जाय । जिनु = जिनवा । जानि = लाकर ।

उस नगर में ऐसे सुन्दर स्त्री-मुख्य वसते थे मानो बहुत से कामदेव और रति ही शरीर धारण किये हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नामक राजा रहता था, जिनके पान अनगिनती घोड़े, हथिये और सेना के समूह थे।

उनका वैभव और विलास सौ इन्द्रो के समान था। वह बड़ा रूपवान्, तेजस्वी, बली और नीतिमान् था। उसके विध्वमोहिनी नाम की एक (ऐनी रूपवती) कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जाये।

वह नव गुणों (सत्, रज, तम) की खान भगवान् की भाया ही थी। फिर उसको सुन्दरता का क्या वर्णन किया जा सकता है? वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, जिनके लिए वहाँ अनगिनती राजा आये हुए थे।

ऐल के शौकीन मुनि नारदजी उन नगर में गये और नगर-निवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आये। राजा ने मुनि की पूजा कर (आसन पर) बैठाया।

राजा ने राजकुमारी को लाकर नारदजी को दिखाया और कहा— हे नाथ! हृदय में विचारकर इनके सब गुण और दोष कहिए।

मूल— देखि रूप मुनि विरति विसारी । बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छन तामु बिलोकि मुलाने । हृदय हरष नहिं प्रगट बलाने ॥
जो एहि धरइ अमर सोइ होई । समरभूमि तेहि जीत न कोई ॥
तेवाहि सकल चराचर ताहो । बरइ सीलनिधि कन्या जाही ॥
लच्छन सब विचारि उर राखे । कछुक बनाइ भूप सन भाये ॥
सुता मुलच्छन कहि नृप पाहीं । नारद सै सोच मन माहीं ॥
करौ जाइ सोइ जतने विचारी । नेहि प्रकार मोहि वरं कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला । हे विधि मिलइ कवन विधि बाला ॥१॥

दोहा— एहि अवसर चाहिय परम, सोभा रूप बिलाल ।

जो बिलोकि रीक्ष कुञ्जोर, तव मेलं जयमाल ॥१३१॥

भाषार्थ— विरति = वैराग्य । बरइ = व्याहृता । वरं = विवाह करे ।
मेलं = पहनाये, गले में डाले ।

भाषार्थ.— नारद मुनि विध्वमोहिनी के रूप को देखकर वैराग्य भूल गये और बहुत देर तक उनको देखते ही रहे। उसके लक्षणों को देख कर वे

अपने आपको भूल गये, वे हृदय में प्रसन्न होते हैं परन्तु प्रकट में कुछ नहीं कहते हैं। लक्षणों के बारे में विचार कर वे अपने मन में इस तरह कहने लगे कि जो इसके साथ विवाह करेगा, वह अमर हो जायगा और रण-भूमि में उसे कोई भी जीत न सकेगा। जिसे यह शील-निधि की कन्या व्याहेगी, उसकी सब घर और अचर सेवा करेंगे।

विश्वमोहिनी के सब लक्षणों को विचार कर नारद जी ने अपने हृदय में रख लिया और अपनी ओर से बनाकर कुछ लक्षण राजा से कह दिये। उन्होंने राजा से कहा—तुम्हारी लड़की सुलभता है—ऐसा कहकर नारद जी चले गये, परन्तु मन में यह सोचते हुए कि मैं जाकर सोच-विचार कर अथवा वही उपाय करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय अप-सप कुछ भी न हो सकेगा। हे विधाता ! मुझे यह कन्या किस तरह मिले ?

इस अवसर पर तो अनूठी शोभा और रूप चाहिए, जिन्हे देखकर राजकुमारी रोज़ जाय और गले में जयमाला डाल दे।

मूल—हरि सम मांगी सुन्दरताई । होइहि जात गहर अति भाई ॥
 मोरें हित हरि सम नहि फोऊ । एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥
 बहु विधि बिनय, कौन्हि तेहि काला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।
 प्रभु विलोकि मुनि नयन जुडाने । होइहि काजु हिऐं हरषाने ।
 अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा करि होइ सहलाई ।
 अग्नि रूप देहु, प्रभु मोही । आन भाति नहीं पावौ ओही ॥
 जेहि विधि नाय होइ हित मोरा । करहु सो वेगि दास मैं तोरा ॥
 निज माया बल देखि विसाला । हियँ हँसि बोले दीनदयाला ॥

बोहा—जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुन्हु तुम्हार ।

सोइ हम करव न आत कछु, वचन न भुषा हमार ॥१३२॥

शब्दार्थ— गहर = देर, विलम्ब । जुडाने = शीतल हो गये । अरति = दीन ओही = उसको । करव = करेंगे । भुषा = अत्य, झूठे ।

भावार्थ— (विश्वमोहिनी को वरण करने के लिए नारद जी श्रीहरि ने सहायता प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं) मैं भगवान् श्रीहरि में नुदरता मागूँ, परन्तु उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जायगी। किन्तु श्रीहरि के

समान मेग हिनू भी कोई नहीं है जो इस अवसर पर मेरी सहायता करे। इसलिए उस समय नारद जी ने भगवान् की द्रुत प्रकार से विनती की। फलतः लीलामय और कृपालु प्रभु वही प्रकट हो गये। भगवान् को (अपने सामने देखकर नारद जी के नेत्र शीतल हो गये। वे मन में बड़े प्रमत्त हुए कि अब काम बनने में देरी नहीं (क्योंकि भगवान् ने उनकी विनती सुनली)।

नारद जी ने अत्यन्त दीन होकर श्रीहरि को सब कथा कह सुनाई और उनसे प्रार्थना की कि वे कृपा करके उनके महायक वनें। नारद जी ने कहा—हे प्रभो! आपना रूप मुझे दे दीजिए, उसको (विश्वमोहिनी को) प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय है ही नहीं। नाथ! जिस प्रकार भी मेरा हित हो, अ प वही शोध कीजिए, मैं आपका दास हूँ।

अपनी माया का विशाल बल देखकर हृदय में हँसकर दीनदयालु भगवान् ने कहा—हे नारद जी! सुनो, जिस प्रकार आपका परमहित होगा, वही करेगा, अन्य कुछ नहीं। हमारा वचन कभी असत्य नहीं होता।

मूल—कुपय मांग रुज व्याकुल रोगी। वैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
 एहि विधि हित तुम्हार में ठयऊ। कहि अस अतरहित प्रभु भयऊ ॥
 माया विवस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहि हरिगिरा निगूढा ॥
 गवने तुरत तहा रिषिराई। जहा स्वयंवर भूमि वनाई ॥ १
 निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा ॥
 मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आगाहि विरिहि न मोरे ॥
 मुनि हित कारण कृपानिधाना। दोन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥
 सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सर्वाहि सिर नावा ॥

दोहा—रहे तहाँ दुइ ख गन, ते जानहि सब भेद।

विप्रवेप देखत फिरहि, परम कौतुकी तेज ॥१३३॥

शब्दार्थ—रुज = रोग, बीमारी। ठयऊ = करने की ठानी है।
 अन्तरहित = गायब। निगूढा = अगूढ (स्पष्ट)। मोरे = मूल कर भी।
 भेद = भेद।

भावार्थ—हे योगी मुनि! सुनो, रोग से व्याकुल रोगी यदि कुपय मांगे तो वैद्य उसे नहीं देता, इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने का निश्चय किया है। ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

माया के वशीभूत हुए मुनि नारद ऐसे मूढ हो गये कि वे भगवान् के बड़े गूट वचन नहीं समझे। ऋषिराज नारद शीघ्र ही वहाँ गये, जहाँ स्वयंवर की भूमि बनायी गयी थी।

राजा लोग अपने-अपने सिंहासनो पर खूब सजधजकर अपने समाज-सहित बैठे थे। मुनि नारद अपने मन में प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है। राजकन्या मुझे छोड़कर किसी दूसरे को भूलकर भी नहीं वरेगी।

कृगनिधान भगवान् ने मुनि के हित के लिए उन्हें ऐसा बुरा रूप दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। लेकिन यह चरित्र कोई भी नहीं जान सका, सबने उन्हें नारद मुनि जानकर सिर नचाया।

वहाँ महादेवजी के दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ग्राह्यण का वेश बनाकर सब लीला देखते फिरते थे, क्योंकि वे बड़े विनोदी थे।

विशेष (1) — इन गुणों को नारदजी का चरित्र देखने के लिए शिवजी ने तभी से उनके पीछे लगा दिया था कि जब नारदजी उन्हें अपनी कीर्ति सुनाकर ब्रह्मलोक को चले गये थे।

(11) अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

मूल—जैहि समाज बँठे मुनि जाई । हृदयें रूप अहमिति अधिकारी ॥
 तहँ बँठे महेस गन दोऊ । विप्रवेष गति लखइ न कोऊ ॥
 करहि कूटि नारबहि मुनाई । नीकि दोन्हि हरि सुन्दरताई ॥
 रीसिहि राजकुँअरि छवि देखि । इन्हहि वरिहि हरि जनि विसेषी ॥
 मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ । हसहि संभुगन अति सच्चु पाएँ ॥
 जदपि सुनहि मुनि अटपटि वानी । समुझि न हरइ बुद्धि श्रम सानी ॥
 काहुँ न लखा सो चरित विनेषा । सो सरूप नृप कन्या देखा ॥
 मकंठ बदन भयंकर देही । देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥
 दोहा — सखी संग लं कुअरि तव, चलि जनु राज मराल ।

देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल ॥१३४॥

शब्दार्थ — अहमिति = अभिमान । कूटि = व्यंग्य वचन । नीकि = अच्छी । हरि = भगवान्, बन्दर — यहाँ यह क्लिष्ट पद है, दोनों अर्थों की ओर संकेत है । सच्चु = सुख । अटपटि = विचित्र सी, ठीक तरह समझ में न आने

वाली । मर्कट = वानर । वदन = मुख । राजमसाल = राजहसिनी । सरोज = कमल ।

जिस समाज में नारद मुनि अपने हृदय में रूप का वडा अभिमान लेकर बैठे थे, वही शिवजी के ये दोनों गण भी बैठे थे । लेकिन ब्राह्मण के वेप में होने के कारण उनकी गति बोर्ड नहीं देख सका ।

वे नारदजी को सुना सुनाकर व्यग्य वचन कहते थे, भगवान् ने इनको अच्छी सुन्दरता दी है । राजकुमारी छवि देखते ही रीक्ष जायेगी और 'हरि' (वानर) नमस्कर विशेषकर इन्हे ही वरेगी ।

नारद मुनि मोह के वण थे, उनका मन विराने माया के हाथ धा और शिवजी के गण अति सुख (मनोरजन का अच्छा साधन) पाकर हँस रहे थे । यद्यपि मुनि उनकी अटपटी चाली सुनते थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी होने के कारण कुछ ममझ में नहीं आता था ।

जो विशेष चरित्र (नारदजी का रूप) किसी ने नहीं देखा था, उस विधिष्ट स्वरूप को राजकुमारी ने देखा । उनका बन्दर के समान मुह और भयकर शरीर देखते ही उसके शरीर में क्रोध उत्पन्न हो गया ।

तब राजकुमारी सखियों को संग लेकर इस तरह चली मानो राज-हमिनी चल रही हो । वह अपने कमल समान हाथों में जयमाल लिये सब राजाओं को देखते हुए घूमने लगी ।

विशेष - अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार ।

मूल--जेहि दिति धंठे नारद फूली । तो दिति तेहि न बिलोकी नूली ॥
 पुनि पुनि मुनि उकसाहि अकुलाहीं । देखि बसा हर गन मुसुकाहीं ॥
 परि नृप तहं गयउ कृपाला । कुअरि हरपि मेलैउ जयमाला ॥
 डुलहिनि लेंगे लच्छिनवासा । नृप समाज सब भयउ निरासा ॥
 मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । मनि गिरि गई छूटि जनु गाठी ॥
 नय हर गन बोले मुसुकाई । निज मुख मुकुट बिलोकहु जाई ॥
 अम कहि दोउ भागे भय भारी । अरु दोष मुनि धारि निहारी ॥
 वेपु तिलोकि क्रोध अनि बाढा । निगृहि सराय शैन्ह अनि गाढा ॥
 दोहा - होठु निसावर जाई तुम्ह, षपटी पायो दोउ ।
 हमेठु हमहि तो तेठु फल, यहुरि हमेठु मुनि कोउ ॥१३५॥

शब्दार्थ—फूली=गर्भ में फूले हुए। तेहि=उसने। दिसि=तरफ।
उकसहि=उचकते हैं। लच्छि निवासा=लक्ष्मी निवास भगवान्। लंगे=ले
गये। नाठी=नष्ट होगई। गांठी=गांठ। मुकुर=दर्पण। वारि=जल।
सराप=श्राप।

भावार्थ—(विश्व मोहिनी की स्वयंवर-सभा में जो नारद जी की
दुर्गति हुई, उसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है) जिस तरफ नारद जी
अपने रूप के घमंड में फूले बैठे थे, उस तरफ विश्वमोहिनी ने भूल कर भी नहीं
देखा। नारदजी बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी यह दशा देख
कर शिवजी के गण मुसकराते हैं। इतने ही में कृपालु भगवान् भी राजा का
शरीर धारण कर वहां जा पहुँचे। राजकुमारी ने प्रसन्न होकर उनके गले में
जयमाला डाल दी। लक्ष्मी निवास भगवान् दुलहिन को ले गये। सारा नृप-
समाज निराशा हो गया।

मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट होगई थी, इसलिए वे राजकुमारी
के हाथ से गई जान बहुत ही व्याकुल होगये, उन्हें ऐसा दुःख हुआ मानो गाठ
से छूटकर कोई बहुमूल्य मणि गिर गई हो। मुनि को इस प्रकार वैचैन देख
शिवजी के गणों ने मुसकरा कर कहा—जाकर अपना मुख दर्पण में तो
देखिए। ऐसा कहकर वे दोनों डर के मारे भाग गये। मुनि ने जल में झाक
कर अपना मुँह देखा। अपना ऐसा रूप देख कर नारदजी को बहुत क्रोध आया
और उन्होंने शिवजी के उन दोनों गणों को अत्यंत क्रोध से शाप दिया—

तुम दोनों कपटी और पापी हो, जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने जो
हमारी हसी की, उनका फल खखो, फिर तुम किसी मुनि की हँसी करना।

विशेष—अनुप्रास, पुनरुचित प्रकाश, उत्प्रेक्षा और छायानुप्रास अलंकार

मूल—पुनि जल दोख रूप निज पावा । तदपि हृदयं सतोष न भावा ॥
फरकत अधर कोप मन माही । सपदि चले कमलावति पाहीं ॥
देहउं श्राप की भरिहउ जाई । जगत मोरि उपहास कराई ॥
वीर्चाहि पंथ मिले दनुजारी । संग रमा सोइ राजकुमारी ॥
बोले मधुर वचन सुरसाई । मुनि कहं चले बिकल की नाई ॥
सुनत वचन उपजा अति श्रोधा । भाया वस न रहा मन दोधा ॥
पर संपदा सकहु नहि देखी । तुम्हरे इरिषा कपट वितेषी ॥
मथत सिंध रुद्रहि वौरायह । स्रन्ह प्रेरि विष पान करायह ॥

दोहा—असुर चुरा विष संकरहि, आपु रना मनि चार ॥

स्वारथ साधक दुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहार ॥१३६॥

शब्दार्थ—निज रूप = अनली रूप । अघर = ओठ । सरदि = घोघ्र, तुरन्त । कमलापनि = भगवान् विष्णु । उपहास = हँसी । वनुजारी = राजाओं के घत्रु विष्णु भगवान् । नुरसाई = देवताओं के स्वामी । नाई = तरह । हरिया = ईर्ष्या, जलन । रुद्रहि = शिवजी को । वौरायहु = बावला बना दिया । मुरा = मदिरा । चार = सुन्दर । मनि = कौस्तुभ मणि ।

शब्दार्थ—(शिवजी के गणों को शाप देने के अनन्तर नारदजी ने क्या किया ?) मुनि ने जल में अपना रूप फिर देखा, तो उन्हें अपना ननली रूप प्राप्त होगया, विष्णु फिर भी उन्हें सतोष न हुआ—शांति नहीं मिली । उनके ओठ रुझक रहे थे, मन में क्रोध भरा था, तुरन्त ही वे भगवान् कमलापति के पास चले दिये । वे मन में सोचते जा रहे थे—जाकर या तो मैं उन्हें शाप दूँगा । या मैं अपने प्राण त्याग दूँगा । उन्होंने जगत् में मेरी हँसी कराई है । जब नारदजी इन तरह सोचते हुए जा रहे थे, तब श्रीचरान्त ने ही हरि उन्हें मिल गये—माय में लक्ष्मी थी और वह राजकुमार भी ।

देवताओं के स्वामी भगवान् ने मोठी बारी में कहा—'हे मुनि ! वचन में कहा चले जा रहे हो ?' भगवान् के ये वचन सुनते ही नारदजी को बड़ा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण उन्हें आत्म-बोध नहीं रहा । वे बोल सके तुम दूसरों को सम्पदा नहीं देख सकते, तुम बहुत अधिक ईर्ष्या और कपट रखते हो । समुद्र-मयन के समय तुमने शिवजी को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विष-पान कराया ।

तुमने असुरों को मदिरा दी, शिवजी को विष दिया और मैंने सुन्दर कौस्तुभ मणि ली । तुम सबप्रसन्न बड़े स्वार्थी और धोड़े राज हो, तुम सदा कपट का व्यवहार करते हो ।

मूल - परम स्वतन्त्र न निर पर कोई । भाषइ मनहि कहु तुम्ह कोई ॥
 भलेहि मद मदेहि नल करहु । विममय हरप न हिंयं कहु घरहु ॥
 जहकि अहकि परिचेहु सब फाहु । अति असंक मन नदा उछाहु ॥
 करम मुनामुन तुम्हहि न वाधा । अब लगि तुम्हहि न काहु साधा ॥
 नते पवन अब वापन दोग्हा । पावहुगे फउ आपन कौन्हा ॥

दृच्छेद्दु मोहिं जवनि घरि देहा । सोइ तनु घरहु श्राप मम एहा ॥
 कपि आकृति तुम्ह कौन्हि हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
 मम अपकार कौन्ह तुम्ह भारी । नारि बिरहंतुम्ह होव दुखारी ।
 बोहा--श्राप सोस घरि हरपि हियं प्रभु बहु बिनती कौन्हि ।
 निज माया कै प्रबलता, करधि कृपानिबि नीन्हि ॥१३७॥

शब्दार्थ—भावइ = अच्छा लगे । मद = बुरा । डहकि डहकि = ठग-ठग कर । परिचेहु = परीक्षा करते हो । साषा = ठीक किया । बायन दीन्हा = छेड़-छाड़ की । वचेहु = ठगा है । जवान देहा = जिस शरीर को । कीस = वानर । होव = होंगे । करपि = खीच ली ।

भावार्थ—तुम बड़े स्वतन्त्र हो, सिर पर कोई है नहीं, इमने जब जो मन में आता है, वही करते हो । भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो और अपने हृदय में हर्ष-विषाद कुछ नहीं मानते ।

सब को ठग-ठग कर तुम (ठगी के काम में) परिचित (निपुण) हो गये हो, बड़े निडर हो, इसी से (ठगने के काम में) मन में सदा उत्साह रहता है । तुम्हें भले-बुरे काम की वाधा नहीं है (तुम यह नहीं मोचते कि वह काम अच्छा है या बुरा) और फिर अभी तक तुम्हें किसी ने सीधा भी नहीं किया है ।

अब तुमने अच्छे घर बायना (निमन्त्रण) दिया है, सो जैसा तुमने किया है, वैसा ही फल पाओगे । जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, वही शरीर धारण करो, यही मेरा शाप है ।

(महायता के बदले) तुमने मेरी बन्दर की मुखाकृति बना दी, इमने बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे । तुमने (मुझे नारो-वियोगो बनाकर) मेरा बड़ा भारी अपकार किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुःखी होगे ।

मुनि के शाप की सिर पर धारण कर कृपानिधान भगवान् ने हृदय में हर्षित हाते हुए अने ऋण से बिनती की और अग्नी प्रबल माया को खेच लिया ।

विशेष—अनुप्रास, लाटानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार ।

मूल—जब हरि माया बुरि निवारी । नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥
 तब मुनि अति अभीत हरि चरना । गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥

मूषा होउ मम आप कृपाला । मम इच्छा कह दीन दयाला ॥
 मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे । कह सुनि पाप मिटिहि किमि मेरे ॥
 जपहु जाइ सकर सत नामा । होइहि हृदयं तुरत विभामा ॥
 कोउ नहिं सिव समान प्रिय भोरें । असि परतीति जतहुं जनि भोरें ॥
 जेहि पर कृपा न करहि पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
 अस उर धरि महि विचरह जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ॥

दोहा — बहुविधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तव भए अन्तरधान ।

सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान ॥१३८॥

शब्दार्थ—गहे = पकड़ लिये । पाहि = रक्षा कीजिए । प्रनतारति (प्रनत =
 आरति) = धरणागत के कष्ट । मूषा = मिथ्या । परतीति = विश्वास । भोरें =
 झूल कर भा । निअराई = निकट आयेगी । प्रबोधि = समझा-बुझा कर ।

व्याख्या—जब भगवान् ने अपनी माया को दूर हटा लिया, तो वहाँ
 न लक्ष्मी रही न राजकुमारो । तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर भगवान्
 के चरण पकड़ लिये और कहा—हे धरणागत के दुखों को हरने वाले
 भगवान् ! मेरी रक्षा कीजिये ।

हे कृपालु ! मेरा श्राप झूठा हो जाय । तब दीनो पर दया करने वाले
 भगवान् ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है (तुम चिन्ता मत
 करो) । मुनि ने कहा—मैंने आपको बहुत से वचन कहे हैं, सेरा यह पाप
 कैसे मिटेगा ?

(भगवान् ने कहा) जाकर शिवजी के शतनाम का जाप करो इससे
 हृदय मे तुरन्त शान्ति होगी । शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है । इस
 विश्वास को झूलकर भी नहीं छोडना ।

हे मुनि ! जिम पर शिवजी का जाप नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं
 पाता । ऐसा हृदय मे धारण करके तुम पृथ्वी पर विचरण करते रहो । अब
 मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं जावेगी ।

व्याख्या — तब मुनि को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर प्रभु अन्तर्धान
 हो गये और नारदजी श्रीराम के गुण गाते हुए सत्यलोक को चले ।

इसने बाद मुनि को अनेक प्रकार से नमस्कार बुझा कर भगवान् अन्तर्धान
 होने के बाद नारदजी श्रीराम के गुण गाते हुए सत्यलोक को चल दिये ।

मूल—हर गन मुनिहि जात पय देखी । विगत मोह मन हरय वितेयी ॥
 अति सनीत नारद पहि आए । गहि पद आरत वचन सुनाए ॥
 हर गन हम न विप्र मुनिराया । बड अपराध कीन्ह फल पाया ॥
 आप अनुग्रह करहु कृपाला । बोले नारद दोन दयाला ॥
 निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ । वैभव विपुल तेज बल होऊ ॥
 भुज बल विस्व जितव तुम जहिआ । धरिहहि विष्णु मनुज तनु अहिआ ॥
 समर मरन हरि हाथ तुम्हारा । होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥
 चले जुगल मुनि पद सिर नाई । भए निसाचर कालहि पाई ॥

दोहा—एक कल्प एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार ।

सुर रजन सज्जन सुखद परि भंजन भुवि भार ॥१३९॥

शब्दार्थ—अनुग्रह = कृपा । जितव = जीतोगे । जहि आ = जब ।
 तहिआ = तब । जुगल = दोनो । रजन = प्रमन्न करना । भुवि = पृथ्वी ।

भावार्थ—शिवजी के गणों ने मुनि को भाग में जाते हुए देखा—वै
 मोह-रहित और मन में बहुत प्रसन्न थे । तब वे डरते हुए नारदजी के पाँसों
 आये और उनके चरण पकड़ कर दीन वचन बोले—हे मुनिराज ! हम ब्राह्मण
 नहीं हैं, हम तो शिवजी के गण हैं । हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल
 हमें मिला गया । हे कृपालु ! अब आप शाप दूर करने की कृपा करें । तब
 दोनो पर दया करने वाले नारदजी ने कहा—तुम दोनो जाकर राक्षस हो
 जाओ, तुम्हें महान् ऐश्वर्य, तेज और बल प्राप्त हो । जब तुम अपनी भुजाओं
 के बल से सारे ससार को जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्य-शरीर धारण
 करेंगे । युद्ध में तुम्हारी मृत्यु हरि के हाथ से होगी, जिससे तुम मुक्त हो
 जाओगे और फिर तुम्हें ससार में जन्म न लेना पड़ेगा । शिवजी के वे दोनो
 गण मुनि के चरणों में सिर नवा कर चले गये और समय याकर फिर वे
 राक्षस हुए ।

देवताओं को प्रसन्न करने वाले, मज्जनो को सुख देने वाले और
 पृथ्वी के भार को हरने वाले भगवान् ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का
 अवतार लिया था ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

मूल—एहि विधि जनम करम हरि केरे । सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे ॥

कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना विधि करहीं ॥

तव तव कथा मुनीन्सह गाई । परम पुनीत प्रबन्ध बनाई ॥
 द्विविध प्रसंग अनूप बनाने । करहि न मुनि आचम्यु मयने ॥
 हरि अनद हरि कथा अनन्ता । कहहि सुनाई बहुविधि तव संता ॥
 रामचन्द्र के चरित मूहाये । कल्प कोटि लगि जाहि न गाये ॥
 ग्रह प्रसंग में कहा भवानी । हरिनाया मोहिय मुनि जानी ॥
 प्रभु कौतुकी प्रसंग हित कारी । मेव न मुलन नकल दुखहारी ॥
 सोरठा—सुर नर मुनि कोट नाहि, केहि न मोह माया प्रबल ।

अस विचारि मन माहि, भजिय महानाया पतिहि ॥१४०॥

शब्दार्थ—कैरे = के । प्रबन्ध बनाई = काव्य रचना करने । प्रसंग =
 शरणागत । कौतुकी = लीलामय ।

भाषार्थ—इस प्रकार भगवान् के उत्तम और कम, सुन्दर, सुन्दर और
 बड़े विचित्र हैं । प्रत्येक कल्प में भगवान् अवतार लेने हैं और तरह-तरह के
 अच्छे-अच्छे चरित्र करते हैं ।

तब-तब की कथाओं को मुनीश्वरों ने दहे-दडे पवित्र रूप रखकर गाया
 है और नीति-नीति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है, जिनको सुनकर
 विद्वान् लोग आश्चर्य नहीं करते ।

भगवान् अनन्त हैं और उनकी कथा भी अनन्त है । सब तरह-तरह से
 बहुत-बहुत से कहते-सुनते हैं । श्रीराम के सुन्दर चरित्र जगदीश्वरों ने भी
 गद्य-शैली वा सुन्दर ।

(महादेवजी कहते-हैं) हे पार्वती ! यह प्रसंग में तुमसे कह चुका हूँ कि
 जानी-मुनि भी भगवान् की मया से मोहित होजाते हैं, प्रभु लीलामय हैं और
 शरणागत का हित चाहते वाले हैं । वे सेवा करने से बहुत मुक्त हैं और सब
 प्रकार के दुःखों को हरने वाले हैं ।

कोई ऐसा देवता, मनुष्य और मुनि नहीं है, जिसे भगवान् की प्रबल
 मोहनाय ने मोहित न किया हो । नर में ऐसा विचार कर महाभाग के स्वामी
 भगवान् का ही भजन करना चाहिये ।

मूल—अपर हेतु सुनु मैं न कुमारी । कहते विचित्र कथा विलारी ॥

केहि कारत अज गुन अहया । ब्रह्म भयद कोसलपुर नृपा ॥

जो प्रभु विपिन किरत तुम्ह देखा । बन्धु समेत धरै मुनि वेपा ॥
जासु चरित धवलोरि भवानी । तती सरीर रहिहु वीरानी ॥
अजहं न छाया मिटनि तुन्हारी । तामु चरित सुनि भ्रम रजहारी ॥
लोला कीन्हि जो तेहि अवतारा । सो सय कहिहुहु मति अनुसारा ॥
भरद्वाज सुनि मकर वाणी । सकुचि तप्रेम उमा मूसुकानी ॥
लगे बहुरि बरनै यूपकेतू । सो अवतार भयउ जेहि हेतू ॥

बोहा—तो मैं तुम्ह सन कहउं सबु, सुनु मुनीस मन लाइ ।

राम कथा कलिमल हरनि, मगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

शब्दार्थ—अनर = दमन । वीरानी = बावली । रज = रोग । सुहाई =
सुन्दर ।

भाषार्थ—हे पावनी ! अब भगवान् के अवतार का दूसरा कारण
मुनी, उसकी विचित्र कथा मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ—जिन कारण से जन्म-
रहित, नियुंण और स्परहित ब्रह्म अयोव्या के राजा हुए ।

जिन भगवान् को तुमने भाई के साथ मुनियों का ना वेप धारण किये
वन में फिरने देवा था और हे भवानी ! जिनके चरित्र को देखकर नती के
धरीर में तुम बावली भी हो गयी थी—

और अभी भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया मिटी नहीं है । उन्ही
श्रीराम के भ्रमरूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र मुनी । उस अवतार में
श्रीराम ने जो-जो लीला की हैं, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें
कहूँगा ।

(याज्ञवल्क्य ने कहा) हे भरद्वाज ! शिवजी की वाणी सुनकर पावतीजी
सकोच और प्रेम में मुनकराई । फिर शिवजी जिस कारण से भगवान् का
वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे ।

वही सब मैं तुममें कहता हूँ । हे मुनीश्वर भरद्वाज ! मन लगाकर
सुनो । श्रीराम की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली, कल्याण करने वाली
और बड़ी सुन्दर है ।

विशेष—अनुनास अलकार ।

मूल—स्वयंभू मनु अरु सतहृपा । जिन्ह तें मं नरसृष्टि अनूपा ॥
 बंपति घरम आचरन नीका । अजहें गाव श्रुति जिन्ह कै लोका ॥
 नृप उत्तानपाद सुत तामू । प्रुव हरि भगत भयउ सुत जामू ॥
 लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही । वेद पुराण प्रससहि जाही ॥
 देवहूति पुनि तामु कुमारी । जो मुनि कदम के प्रिय नारी ॥
 आदि देव प्रभु दीनदयाला । जठर घरेउ सेहि कपिल कृपाला ॥
 सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्त्व विचार निपुन भगवाना ॥
 तेहि मनु राज कोन्ह बहु काला । प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला ॥

दोहा—होइ न विद्य विराग, भवन बसत ना चौपापन ।

हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

शब्दार्थ—स्वायम्भू = स्वायम्भुव । नरत्त्पा = घत्तरत्पा । मै = हुई ।
 लोका = मर्यादा । जठर = पेट । प्रभु आयसु = भगवान् की आज्ञा । चौपपन
 ना = बुटापा आगया । गयउ = बीत गया ।

भावार्थ—(यानवल्क्य भरद्वाज ने कह रहे हैं) स्वायम्भुव मनु और
 उनकी पत्नी घत्तरत्पा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, दोनों पति-
 पत्नी भले प्रकार धर्म और आचरण रख रहे थे । आज भी वेद जिनकी मर्यादा
 का गान करते हैं । राजा उत्तानपाद उन्हीं के पुत्र थे, जिनके प्रसिद्ध हरिनक्षत्र
 प्रभु उत्पन्न हुए । उन मनुष्यों के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिसकी
 वेद और पुराण प्रशंसा करते हैं । फिर देवहूति नाम की उनके एक कन्या हुई
 जो कदम मृति की प्यारी पत्नी बनी, जिसने भगवान् कपिल को जो आदिदेव,
 दीनदयालु एवं कृपालु हैं, गर्भ में धारण किया । कपिल तत्त्वों के विचार करने
 में निपुण थे और उन्होंने प्रत्यक्ष में सांख्यदर्शन का प्रतिपादन किया ।

उन स्वायम्भुव मनु ने बहुत जाल तन् राज्य किया और भगवान् की
 आज्ञाओं का सब प्रकार से पालन किया शास्त्रों की मर्यादा का पालन करते
 हुए राज्य किया) ।

यद्यपि मनु या प्र. ने गृह्य-हो. बुटापा जागया, तथापि उन्हें विषयों
 में विनिश्चिन नहीं हुए । यह चौबकर उन्हें बहुत दुःख हुआ कि बिना भगवान्
 की भक्ति में जन्म यों ही बीता गया ।

मूल—बरबस राज चुतहि तव दीन्हा । नारि समेत गवन वन कीन्हा ॥
 तीरथ बर नैमिष विख्याता । अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥
 बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा । तहें हियें हरषि चलेउ मनु राजा ॥
 पंथ जात सोहहिं मतिधीरा । ग्यान भगनि जनु घरें सरौरा ॥
 पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा । हरषि नहाने निरमल नीरा ॥
 आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी । घरम धुरंधर नृपरिषि जानी ॥
 जहें तहें तीरथ रहे सुहाए । मुनिन्ह सकल सादर करवाए ॥
 कृत सरौर सुनि पट परिधाना । संत समाज नित सुनिह पुराना ॥

दोहा—द्वादस अच्छर मत्र पुनि, जर्पाहि सहित अनुराग ।

वासुदेव पद पकरुह, दपति मन अति लाग ॥१४३॥

शब्दार्थ—नैमिष = नैमिषारण्य । बर = श्रेष्ठ । मतिधीरा = धीर बुद्धि वाले । धेनु-मति = गोमती । नृपरिषि = राजपि । पट = वस्त्र । द्वादस अच्छर मत्र = वारह अक्षरी वाला मत्र । (ओम नम भगवते वासुदेवाय) पकरुह = कमल ।

भावार्थ - तब मनुजी ने विवश हो अपने पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं पत्नी-सहित वन को चले गये । नैमिषारण्य एक बड़ा प्रसिद्ध और सुन्दर तीर्थ है, जो अत्यन्त पवित्र और साधकों को सिद्धि देने वाला है ।

वहाँ मुनियों और सिद्धों का समाज रहता था । राजा मनु हृदय में प्रसन्न होकर वही चले । ये धीरबुद्धि वाले रास्ते में जाते हुए ऐसे शोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हों ।

चलते-चलते वे गोमती नदी के किनारे पहुँचे और हर्षित हाकर उन्होंने निर्मल जल में स्नान किया । राजा मनु को धर्म-धुरंधर राजपि जानकर सिद्ध, मुनि और ज्ञानी उनसे मिलने आये ।

जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, उन सबके दर्शन मुनियों ने उन्हें आदर से करा दिये । उनका शरीर दुबला हो गया था, वे मुनियों के से वस्त्र पहिने थे तथा सतों के समाज में नित्य पुराण सुनते थे ।

वे भगवान् के द्वादशाक्षर मत्र (ओम नमो भगवते वासुदेवाय) को प्रेम से जपा करते थे और उन दोनों का मन भगवान् वासुदेव के चरण-कमलों में भली भाँति लग गया ।

विशेष—अनुप्रास, उल्लेख और रूपक अलंकार ।

मूल—करहि अहार ताक फल कदा । सुमुरहि द्रव्य सच्चिदानन्दा ॥
 पुनि हरि हेतु करन तप लागे ॥ वारि अधार मूल पल त्यागे ॥
 उर अभिलाष निरन्तर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥
 अगुन अखण्ड अनन्त अनादी । जेहि चित्तिहि परमाश्रयवादी ॥
 नेति नेति जेहि वेद तित्पा । निजानंद निरपाधि अनूपा ॥
 सभु विरधि विष्णु भगवाना । उपजाहि जासु अस्त तौ नाना ॥
 ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । नगत हेतु लीलातनु गहई ॥
 जो यह वचन सत्य श्रुति भाषा । तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥

बोहा—एहि विधि बीते बरस पट, सहस्र वारि अहार ।

संघत सप्त रहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥१४४॥

शब्दार्थ—रूदा = जमीन। वारि = जल । परमाश्रयवादी = ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता । चित्तिहि = चिन्तन करते हैं । निरूपाधि = उपाधि रहित । लीलातनु = लीलाभय शरीर । गहई = धारण करते हैं । पूजिहि = पूजी होगी । समीर = वायु ।

भावार्थ—वे साग, फल और कद का आहार करते और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे । फिर वे भगवान् श्रीहरि के लिए तप करने लगे और मूल पद को त्यागकर केवल पानी के आधार पर रहने लगे ।

उनके हृदय में सदा यही कामना रहा करती थी कि हम उन परम प्रभु को आश्रय में देंगे, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि है और जिनका परमाश्रयवादी चिन्तन किया करते हैं ।

जिनका वेद ने नेति-नेति कहकर निरूपण किया है और जो आनन्दस्वरूप उपाधिरहित और अनुपम हैं एव जिनके अंग से अनेको शिव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं ।

ऐसे (महान्) प्रभु भी अपने दान के वन में रहने हैं और भक्तों के लिए लीला के शरीर धारण करते हैं । यदि वेदों का यह वचन सत्य है, तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी ।

इन प्रभु का आहार करके तप करने से हजार वर्ष बीत गये । फिर सान हजार वर्ष वे पानी के आधार में रहे ।

विशेष--अनुप्रास अलंकार ।

मूल--वरस सहस्र दस त्यागेउ सोऊ । ठाढे रहे एक पव दोऊ ॥
 विधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आए बहु वारा ॥
 माँगहु वर बहु भाति लोभाए । परम धीर नहि चल्हि चलाए ॥
 अस्थि मात्र होइ रहे सरोरा । तदपि मनाग मनाहि नहि पीरा ॥
 प्रभू सर्वंग्य दास निज जानी । गति अनन्य तपस नृप-रानी ॥
 मागु मागु वर भँ नभ वानी । परम गभीर कृपामृत सानी ॥
 मृतक जिवावनि गिरा सुहाई । प्रवन रघ्र होइ उर जव आई ॥
 हृष्ट पृष्ट तन भए सुहाए । मानहुँ अर्वाहि भवन ते आए ॥

दोहा--श्रवन सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात ।

बोले मनु करि दडवत, प्रेम न हृदय समात ॥१४५॥

शब्दार्थ--चल्हि=विचलित होते हैं । मनाग=थोड़ी सी भी, जरा भी । भँ=हुई । गिरा=वाणी । श्रवन-रघ्र=कानों के छेद ।

भावार्थ--और दस हजार वर्ष तक पानी का सहारा भी छोड़कर, दोनों एक पैर से खड़े रहे । उनके इस अपार तप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु महेश कई बार मनुजी के पास आये ।

उन्होंने इन्हे अनेक प्रकार में ललचाया और कहा--कुछ वर मागो, पर वे परम धैर्यवान् राजा-रानी ढिगाये नहीं ढिगे । यद्यपि उनका शरीर हड्डि का टाचामात्र रह गया था, फिर भी उनके मन में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं थी ।

सर्वज्ञ प्रभू ने अनन्य गति वाले तपस्वी राजा-रानी को निज दास जाना । तब बड़ी-गम्भीर और कृपा-रूपी अमृत से सनी हुयी आकाशवाणी हुई कि वर माँगो, वर मागो ।

जब मुद्दे को जिलाने वाली यह सुन्दर वाणी कानों के छेदों में होकर हृदय में आयी तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुन्दर और हृष्टपुष्ट हो गये मानो अभी घर में आये हैं ।

कानों में अमृत के समान वचन सुनकर उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया । (प्रभू को देख) मनुजी दडवत करके बोले, उस समय उसके हृदय में प्रेम समाता नहीं था ।

विशेष—अनुप्रास उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलंकार ।

मूल—सुनु सेवक सुरतर सुरधेनु । विधि हरि हर बवित पद रेनु ॥
 सेवत सुलभ सकल सुखदायक । प्रनतपाल सचराचर नायक ॥
 जो अनाथ हित हम पर नेह । तो प्रसन्न होई यह घर बेह ॥
 जो सख्य बस सिव मनमाही । जेनि कारन मुनि जतन कराहौ ॥
 जो भुसु डि मन मानत हंसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रससा ॥
 देखाह हम सो रूप भरि लोचन । कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥
 इपति बचन परम प्रिय लागे । मृदुल विनीत प्रेम रस पागे ॥
 भगत बछल प्रभु कृपा निधाना । विस्वव्रत प्रगटे भगवाना ॥

दोहा—नील तरोरुह नील मनि नीरघर स्याम ।

लाजाह तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम ॥१४६॥

शब्दार्थ—सुरतर = बल्यवध । सुरधेनु = कामधेनु । पद रेनु = चरन-
 रज । मन-मानन = मन स्वी मानसरोवर । प्रनतारति मोचन = शरणागत के दुःख
 मिटाने वाले । जगत बछल = भक्त बल्ल (भक्तों का प्यार करने वाले) ।
 सरोरुह = मूल । नीरघर = वादल । जौ = यदि ।

नील कमल, नीलमणि और सजलनीलमेघ के समान भगवान् के श्यामवर्ण शरीर की शोभा का देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं ।

विशेष - सुनु सेवक सुरतरु सुर घेनु' तथा 'सेवत सुलभ सकल सुख दायक' में वल्यनुप्रास अलंकार । 'सुरतरु सुरधेनु' में उसी अर्थ में 'मुर' की आवृत्ति होने से तथा इसी प्रकार 'सगुन अगुन' में 'गुन' की आवृत्ति - मी अर्थ में होने से लाटानुप्रास अलंकार । 'मन मानस हसा' में परम्परित - एक दोहरे में 'नील' शब्द की उसी अर्थ में आवृत्ति होने से लाटानुप्रास तथा 'कोटि-कोटि' में पुनरवित प्रकाश अलंकार ।

मूल—सरद मर्यक वदन छवि सींवा । चार कपोल चिबुक दर प्रीवा ॥

अधर अरुन रद सुन्दर नासा । विधुकर निकर विनिदक हासा ॥

नव अवुज अंबक छवि नीकी । चितवनि ललित भावेंती जी की ॥

भुकुटि मनोज चाप छविहारी । तिलक ललाट पटल द्रुतकारी ॥

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा । कुटिल कैस जनु मधुप समाजा ॥

उर श्रीवत्स श्विर वनमाला । पदिक हार नूपन मनि जाला ॥

केहरि कधर चार जनेऊ । बाहु विमूषन सुन्दर तेऊ ॥

करि कर सरिस सुभग भुजदंडा । कटि निषग कर सर कोदडा ॥

बोहा—तटित विनिदक पीत पट उदर रेख वर तीनि ।

नामि मनोहर लेती जनु जमुन भवेंर छवि छीनी ॥१४७॥

शब्दार्थ—मर्यक = चन्द्रमा । वदन = मुख । कपोल = गाल । चिबुक = ठोड़ी । दर = श्लक्ष । प्रीवा = गर्दन । अरुन = लाल । रद = दाँत । नासा = नाक । विधुवर निकर = चन्द्रमा की किरणों का समूह । अवुक = कमल । अंबक - नेत्र ललित = मनोहर । भावती = प्यारी लगने वाली । चाप = घनूप । द्रुतिकारी = प्रकाशमय । मकर = मछली । भ्राज्या = सुशोभित था । कुटिल = टेढ़े । पदिक हार = रत्न जडित हार । केहरि कधर = सिंह के कंधे । करि कर = हाथी की सूँठ । सरिस = समान । निषग = तरकस । को दडा = घनूप । तटित = विजली विनिदक = लजाने वाला ।

भावार्थ—सुन्दरता की सीमा अर्थात् शरद् के परम सुन्दर चन्द्रमा के समान मुख, सुन्दर गाल और ठोड़ी और श्लक्ष के समान उदर का कठ था । तथा

उनके लाल होठ, सुन्दर दाँत और नाक तथा चन्द्रमा की किरणों के पूज की निन्दा करने वाली हूनी थी ।

हाल में डिले हुए कमल के समान उनके नेत्रों की छवि बड़ी सुन्दर थी तथा उनकी मनोहर चित्रवन मन को भाने वाली थी । उनकी टेढ़ी भाँहें आमदेव के घट्टे की गोभा को हरने वाली थी और ललाट पर प्रकाशमय तिलक था ।

बानो में नखली के आकार के कुँडल आँगनिर पर झुकुट गोभायमान थे । उनके धड़न वाले डाल ऐसे मालूम होने में मानो नीरों का झुण्ड हो । उनके हृदय पर श्रोत्रान का चिन्ह, सुन्दर धनमाला, रत्न-वस्त्रहार और मणियों के डाल में टुटे हुए अमूषण घोषित थे ।

निद्र के ने कड़े पर पडा हुआ सुन्दर जनेऊ था और नुजाओ में जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे । हाथों की मूँड के समान उनके सुन्दर भुजदण्ड थे तथा उनकी अन्नर में तन्कम तथा हाथ में धनुषबाण शोभायमान थे ।

टिजली की निन्दा करने वाला पीतान्धर और पेट पर सुन्दर तीन रेखाएँ थीं । नाभी ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजी के भँवरों की छवि छीने ही लेती हो ।

विशेष—उपमा, लय और उत्प्रेक्षा जलकार । 'कर निकर' में उनक ।

मूल—पद राजीव वरनि नहिं जाहीं । मुनि मन नद्वय बनहिं केहूँ माहीं ॥

धाम भाग सोनिन अनुकूल । आवि सक्ति छवि निधि जगमूल ॥

जासु अस्त उपजाहि गुणखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥

भुङ्गुटि विलास जासु जग होई । राम धाम द्विनि सोता सोई ॥

छवि समुद्र हरि रूप विलोकी । एक टक रहे नयन पद रोकी ॥

चित्तवाह मादर रूप अनूपा । वृष्टि न मानहिं मनु सतस्था ॥

हृष्य विवम तनदमा मुलानी । परे दड हठ गहि पद पानी ॥

निर परसे प्रभु निज कर फंजा । सुरत उठाए कृत्ना पुंजा ॥

दोहा—बोले वृषा निघान पुनि, अनि प्रसन्न मोहि जानि ।

न गह घर लोड भाव नन मनादानि अन्नमानि ॥१४८॥

भावाथे—भगवान् जे उन चरण कमलों का, जिनमे मुनियों के मन भी भंग करने हैं. दर्शन नहीं किया जा सकता। भगवान् के वायु भाग में लदा जनुनून रहन बाणे वादि मति मुद्योभित थी, सो घोभा नी गधि लीन जगत् नी मूल जगत् नीपा है। जिनके अंग में शुभो की जान अनगिनती लक्ष्मी, पावनी और ब्रह्माणी (नीनों देवों नी नीन यगिनिया) उरगन्न होती है, तथा जिनके भद्रुदि विद्यान ने ही जगत् नी रचना हो जाती है, वही सीता नाम ने वाली और मिन है। (श्रीरगि—भगवान् निदगु गम है और आदि यगिन सीता है)।

राजा मनु और रानी दत्तन्गा घोभा-नाग विगु भगवान् का यह रूप देखकर पावनी नी गति नी रोह एक टक देखने रहे, आदर-पूर्वक भगवान् के इन चरणों निरखने-निरखने मूल नहीं होते थे। वे इनके ध्यान में मन हो गये कि उन्हें अपने चरणों की मृषि भी नहीं रही, वे अपने हाथों से भगवान् के चरण पच्छ कर लक्ष्मी की तरह पृथ्वी पर सीधे पड़ गये। कण्ठा निद्यान भगवान् ने अपना अनयहृत् उनके सिंग पर रावर उन्हें उठा लिया।

तदनन्तर भगवान् ने कहा कि मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे तुम वटा भारी दानी समझकर, जो वर तुम्हें अच्छा लगे (तुम्हारे मन को भाये), वही माग लो।

विशेष—रूपक अलंकार।

मूल - मुनि प्रभु बचन जोरि जूग पानी । घरि घोरजु बोले मूढु वानी ॥
 नाथ देखि पब कमल तुम्हारे । अब पूरे सब काम हमारे ॥
 एक लालता बडि उर माहीं । सुगम अगम कहि जात सो नाही ॥
 तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं । अगम लाग मोहि निज कृपनाह ॥
 जया दरिद्र विबुधतर हाई । बहु सपति मागत सकुचाई ॥
 तासु प्रभाउ जान नहि सोई । तथा हृदय मम ससय होई ॥
 सो तुम्ह जानहु अतरजामी । पुरचहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
 सकुच विहाइ मागु नूप मोही । सोरे नहि अवेय कछ तोही ॥

दोहा— दानि शिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउ सति भाउ ।

चाहउ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सम कवन डुराउ । १४९ ॥

शब्दाय-दुग पानी = दोनों हाथ । आगम = कृति । कृपनाई = कृपणता (दीनता) विबुवनर = कल्पवृक्ष । पुरवहू = पूर्ण करो । मनुष्य विहाइ = संजोच छोड़कर । मति नाउ = नञ्चा नाव । दुराव = छिपाव, छिपाना ।

नाबार्य—प्रभू के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरे धरकर राजा ने ज्योति बाणी से कहा—नाय ! आपके चरण-कमलों के दर्शन कर अब हमारी नव जाननायें पूर्ण हो गयी ।

हमारे मन में एक बड़ी कामना है । उसका पूरा होना महज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसी में उमका वर्णन करते नहीं बनता । हे स्वामी ! आपको देते में तो बहुत महज है, पर नुझे अपनी कृपणता के कारण अत्यन्त कठिन लगती है ।

अंत जोड़े दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक सम्पत्ति मांगने में संजोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसा ही संदेह मेरे मन में हो रहा है ।

सो हे अन्तर्धानी प्रभू ! आप स्वयं उम्मे जानते हैं । हे स्वामी ! मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये । (नगवान् ने कहा) हे राजन ! संजोच को त्यागकर भूमसे (जो बाह्य) माय से, क्योंकि मेरे यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तुमको देने योग्य नहीं हो ।

(राजा ने कहा) हे दशसागर ! आप दानियों के शिरोमणि हैं । हे स्वामी ! मैं अपने नव नञ्चा नाव कहता हूँ कि मैं आरके समान पुत्र चाहता हूँ । प्रभू से मन्त्रा क्या छिपाना ।

विशेष—रूपक, लाटानुप्रास, उदाहरण और उपमा मन्त्रार ।

मूल - देवि प्रीति सुनि वचन बमोले । एवमस्तु कर्तानिधि बोले ॥
आपु सग्नि शोर्वां कहे जाई । नृप तव तलय होव नै जाई ॥
नतस्महि त्रिलोकि कर जोरे । देवि मांगु वह जो रुचि तोरे ॥
जो बह नाय चतुर नृप मांगा । नोड कशल मोहि अनि प्रिय लागे ॥
प्रभु परन्तु सुनि होनि दिवाई । जसपि भगत हिन तुन्हाहि सोहाई ॥
तुम्ह द्रव्यादि जनक जग स्वामी । द्रव्य सकल सर अंतरजामी ॥
अन समुसैठ मन नमय होई । कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥
के निज भगत नाय तब अहहीं । जो सुख पार्वहि जो गनि लहहीं ॥

बोहा - सोइ सुख सोइ गनि सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु ।

सोइ विवेक सोइ रहमि प्रभु,।हमहि कृपा करि देहु ॥१५० ॥

शब्दार्थ—अमोले = अमूल्य । एवमस्तु (ऐसा ही हो) । तनय = पुत्र ।
- होव = होऊँगा । सोहाई = अच्छी लगती है । प्रवान = सत्य । अहही = हैं ।
लहही = पाने है ।

भावार्थ—(भगवान् राजा मनु और रानी शतरूपा को वर प्रदान कर रहे हैं) करुणा-निधान भगवान् ने राजा का प्रेम देख कर तथा उसके अमूल्य वचनों को सुन कर कहा—‘ऐसा ही हो’ । हे राजन ! मे अपने-जैसा अन्य कहाँ जाकर खोजूँ इसलिए मे स्वय ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा । तदनन्तर भगवान् ने शतरूपा को हाथ जोड़े देख कर कहा—हे देवि ! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर मागलो । हे कृपालु भगवन ! जो वर चतुर राजा ने मागा है, वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा । परन्तु हे प्रभो ! यह बहुत ढिठाई हो रही है और भक्त हितार्थ यह आपको अच्छी ही लगती है । आप ब्रह्मा आदि के उत्पन्न करने वाले हो तथा ससार के स्वामी हो, और सब के हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हो ।

इस प्रकार समझते हुए (कि आप ब्रह्म है और हमारे पुत्र रूप मे अवतरित होगे) मन मे सदेह होता है । फिर भी हे प्रभो ! आपने जो कुछ कहा है, वही प्रमाण (सत्य) है । हे नाथ ! मैं तो आपसे यह माँगती हूँ कि आपके जो निज जन (भक्त) हैं और वे जो सुख पाते हैं और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं, वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों मे प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन सहन हे प्रभो ! आप कृपा करके हमे दीजिए ।

विशेष—उपमा, अनुप्रास और लाटानुप्रास अलंकार ।

मूल—सुनि मृदु गूढ रचिर वर रचना । कृपा सिधु बोले मृदु वचना ॥

जो कछु रचि तुम्हरे मनमाहीं मैं सो वीन्हु सब संसय नाहीं ॥

मातु विवेक अलौकिक तोरे । कवहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ॥

बन्दि चरन मनु फहेड वहोरी । अवर एक वितती प्रभु मोरी ॥

सुत बियइक तव पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ कहै किन कोऊ ॥

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । ममजीवन तिमि तुम्हहि अधीना ॥

अस ब्रह्म नांगि चरन गहि रहेऊ । एदमस्तु कवनानिधि कहेऊ ॥
 अब तुम मम अनुसासन मानो । बसहु पाइ सुरपति रजधानी ॥

तीरठा—तौ फरि भोग बिसाल, तात गएँ कछु काल पुनि ।

होइहुहु अवध भुआल, तब मेँ होव तुम्हार सुत ॥१५१॥

शब्दार्थ—रवि = मनोहर । वर रचना = मुन्दर वाक्य रचना । रुचि = इच्छा । तोरे = तुम्हारा । बहोरी = फिर । अबर = और । फनि = माप । अनुसामन = आज्ञा । सुरपति राजधानी = अमरावती । भुआल = राजा ।

भाशार्थ—(रानी के) कोमल, गुड और परम मुन्दर वचनो की रचना सुनकर तृप्ता के समुद्र भगवान् कोमल वचन बोले कि तुम्हारे मन मे जो कुछ इच्छा है, वह सब मने सुनचो दिया, इनमे कुछ नश्येह नहीं ।

हे माला ! मेरी कृपा से तुम्हारा अनौकिक जान कभी नष्ट नहीं होगा फिर मनु ने भगवान के चरणो की वन्दना करते हुए कहा—हे प्रभो ! मेरी एक विनयी और हे ।

(हे प्रभो !) आपके चरणो में मेरी बँसी ही प्रीति हो जँसी पुत्र के लिए पिता की होती है, नके ही कोई मुझे बडा भारी मूसर क्यो न रहे । जँसे मणि के जिना माप और जल के दिना मठली नहीं रहे मकनी बँसे ही मेरा जीवन आपने अधीन रहे ।

ऐसा वर माँग राजा चरण पर वर रहे नये, तब क्या निदान भगवान ने कहा—ऐसा ही हो । अब तुम मेरी आज्ञा मानकर मुन्दरी मे आज्ञा निदान करो ।

हे नाम ! क्या मनु ने माँग भोगन और कुछ ताँ दीन जान पर तुम अवध न मानो हो । तब मेँ तुम्हारा पुत्र होऊँगा ।

विशेष—अनुसामन, विनोदित धार उपाय आना ।

मू—इच्छासक नश्येय संवारो । होइहुहु प्रगट निकेन तुम्हारो ॥

धंसल मरिचि देर परि लाना । कन्हिहुँ चरित भगव मुन्दराना ॥

मे मरि मादर वर बड भागो । मय तरिगिनि मपना मय द्याणी ॥

आरि मरिचि देरि जग उपजाया । मोर अर रिनि नारि क्य नाया ॥

पुरउव मे धमिलाप तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
 पुनि-पुनि अस कहि कृपानिधाना । अतरधान भए भगवाना ॥
 दंपति उर'घरि भगत कृपाला । तेहि आश्रम निवमे कछु काला ॥
 समय पाइ तनु तजि अनदासा । जाइ फौन्ह अमरावति वासा ॥

दोहा — यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृष केतु ।

भरद्वाज सुतु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

शब्दार्थ — निकेत = घर । पुरउव = पूरी करूंगा । अनयासा = बिना किसी कष्ट के । अपर = अन्य दूसरा ।

भावार्थ — अपनी इच्छा से मनुष्य रूप धरकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊंगा और हे तात । मैं अपने अशो-सहित शरीर धारण कर भक्तों को सुख देने वाला चरित्र करूंगा ।

जिनको आदर से नुनकर भाग्यशाली मनुष्य ममता और पद त्यागकर ससार से तर जायेंगे । आदि शक्ति सेरी यह माया भी जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी ।

मैं तुम्हारी धमिलापा पूर्ण करूंगा । मेरा यह वचन सत्य है, सत्य है, सत्य है । बार-बार ऐसा कहकर कृपानिधान भगवान् अन्तर्धान हो गये ।

वे दोनों स्त्री पुरुष भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् को हृदय में धारण कर कुछ काल तक वहा रहे । फिर उन्होंने समय पाकर बिना किसी कष्ट के ही शरीर त्याग कर इन्द्रपुरी में जाकर निवाम किया ।

इस अत्यन्त पावन इतिहास को शिवजी ने पार्वतीजी से कहा था । (याज्ञवल्क्यजी कहते हैं) हे भरद्वाज ! अब श्रीराम के जन्म का दूनरा चरण सुनो ।

विशेष — अनुमान, जाटानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार ।

मूल — शत्रु मुनि क्या पुनीत पुरानी । जो गिरिजा पति सभु बखानी ॥
 विश्व त्रिवित एक कैफय देसु । सत्य केतु तहें बसइ नरेसु ॥
 धरम धुरधर नीति -निधाना । तेज प्रताप सील बलवाना ॥
 तेहि कें भए जगल सुत वीरा । सब गुन ध्यान महा रनधीरा ॥

राज घनी जो जेठ सुत आही । नाम प्रताप भानु अस ताही ॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा । भुजबल अतुल अचल संग्रामा ॥
भाइहि भाइहि परम समोती । सकल दोष छल वरजित प्रीति ॥
जेठे सुतहि राज नृप दोन्हा । हरि हित आपु गवन वन कोन्हा ॥

दोहा—जब प्रतापरवि भयल नृप, फिरि दोहाइ वेस ।

प्रजा पाल अनि वेदविधि, कतहुं नहीं अध लेस ॥१५३॥

शब्दार्थ — पुनीत = पवित्र । जुगल = दो । वीरा = वीर । राजघनी -
राज्य का उत्तराधिकारी । आही — था । ताही — उसका । अपर — दूसरा ।
समोति — मेल । वरजित — रहित । प्रतापरवे — प्रतापभानु ।

भावार्थ — हे मुनिराज । वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो शिव
जी ने पार्वतीजी से कही थी । विश्व में विख्यात एक कंकय देश है, जहाँ
मत्यञ्जु नाम का राजा रहता था ।

वह धर्मधुरधर, नीति की खान, तेजस्वी, प्रतापी, शीलवान और
बली था । उनके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणों के भण्डार और बड़े ही
रपाधीर थे ।

राज्य का उत्तराधिकारी जो बड़ा पुत्र था, उसका नाम प्रतापभानु था ।
दूमरे बेटे का नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओं में अपार बल था और युद्ध में
बटल था ।

(परस्पर) नाई-नाई में बड़ा मेल था और सब दोषों तथा छलो से
रहित मन्त्री प्रीति थी । गजा ने जेठे पुत्र को राज्य दे दिया और आप भग-
वान का भजन करने के लिए वन में चला गया ।

जब प्रतापभानु राजा हुआ तब देवमर में उनकी दुहाई फिर गयी ।
वह धर्म की उत्तम नीति में प्रजा का पालन करने लगा, जिससे उसके राज्य में
पाप का लेश भी नहीं रहा ।

श्लोक — छेकानुप्राण, लाटानुप्राण अलवार ।

मूल—नृप हितकारक सच्चि सयाना । नाम धरमन्त्रि सुकृ समाना ॥
सच्चि सयान चपु बन्धीरा । आपु प्रताप पुंज रन घोरा ॥
मेन नग धनुरग अपारा । अमित सुभट मद्य समर ज्ञातारा ॥
मेन विन्धीर राट हन्याना । अरु बाजे गहगहे निसाना ॥

विजय हेतु कटकई बनाई । सुदिन साधि नृप चलेउ वजाई ॥
जहँ तहँ परी अनेक लराई । जीते सकल भूप वरि आई ॥
सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे । लँ लँ वंड छाडि नृप दीन्हे ॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला । एक प्रतापभानु महिपाला ॥

दोहा—स्ववस विस्व करि बाहुबल, निजपुर कीन्ह प्रवेसु ।

अरथ घरम कामादि सुख, सेवइ समयें नरेसु ॥१५४॥

शब्दार्थ—सचिव = मंत्री । सयाना = बुद्धिमान । सुक्र = शुक्राचार्य ।
सुभट = योद्धा । जूसारा = जूझ मरने वाले । गहगहे = घमाघम (जोर-शोर
से) । निसाना = नगाडे । कटकई = सेना । वरिआई = बलपूर्वक । अवनि =
पृथ्वी ।

भावार्थ — राजा का हित और शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान धर्म-
रचि नामक उसका मंत्री था इस प्रकार चतुर मंत्री तथा शूरवीर भाई के साथ
राजा भी स्वयं बड़ा ही प्रतापी और रणधीर था ।

साथ में अपार चतुरङ्गिनी सेना थी, जिसमें अनगिनती योद्धा थे, जो
सबके सब लडाई में जूझ मरने वाले थे । अपनी सेना को देखकर राजा बहुत
ही हर्षित हुआ और घमाघम नगाडे बजने लगे ।

विजय के लिए सेना सजाकर, राजा शुभ दिन साधकर और डका बजा
कर चला । जहा-तहा अनेक लडाइयाँ लड़ी और (अन्त में) उसने सब राजाओं
को अपनी शक्ति से जीत लिया ।

उसने अपनी भुजाओं के बल से सातों दीपों को वश में कर लिया और
वहा के राजाओं से दण्ड ले-ले कर उन्हें मुक्त कर दिया । उस समय समस्त
भूमण्डल का एकमात्र प्रतापभानु ही राजा था ।

अपनी भुजाओं के बल से समार को वश में करके राजा ने अपने नगर
में प्रवेश किया और समयानुसार धर्म, अर्थ, काम आदि के सब सुखों का सेवन
करने लगा ।

मूल—नृप प्रतापभानु बल पाई । कामधेनु भँ भूमि सुहाई ॥

सब दुख वरजित प्रजा सुखारी । धरम सील सुन्दर नर नारी ॥

मन्त्रि धरम रुचि हरिपद प्रीती । नृप हित हेतु सिखव नित नीती ॥
 गुर सुर संत पितर महिदेवा । करइ मदा नृप सब कं सेवा ॥
 भूप धरम जे वेद बखाने । सकल करइ सावर सुल माने ॥
 दिन प्रति देइ विविध विधि दासा । सुनइ सास्त्र वर वेद पुराणा ॥
 नाना घापी कूप तडागा । सुमन बाटिका मुन्दर बागा ॥
 विप्रभवन सुरभवन सुहाए । सब तीरयन्ह विचित्र बनाए ॥
 बोहा—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग ।

बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग ॥१५५॥

गव्दार्य—कामधेनु = मनचाही वस्तु देने वाली । भ्रं = हो गई । महि-
 देवा = ब्राह्मण । घापी = वावडिया । सुर भवन = देव-मन्दिर । जाग = यज्ञ ।

भावार्थ.—(राजा प्रतापमानु के दान, धर्म आदि का वर्णन किया
 जा रहा है) राजा प्रतापमानु का बन्द पाकर भूमि मुन्दर कामधेनु हो गई उसके
 राज्य में प्रजा सब दुल्लो ने रक्षित होकर सुखी बन गई और नव स्त्री-मुख्य
 मुन्दर और धर्मात्मा थे ।

मन्त्री धर्मरुचि की हरि के चरणों में प्रीति थी । वह राजा के हित के
 लिए मदा उमको नीति सिखाया करता था । राजा मदा गुण, देवता, सत्त
 पितर और ब्राह्मण-इन सबकी सेवा करता था ।

वेद में जो राजाओं के धर्म बताए गए हैं, उन सबको वह आदर पूर्वक
 और मुत्त मान कर करता था । प्रतिदिन वह अनन्त प्रकार के दान देता था
 और उनमें शान्त्य, वेद और पुण्य सुनना था ।

उपने बहून-भौ वावडिया, बुएँ, तालाब, पुष्पवाटिकाएँ और मुन्दर
 दगीने, ब्राह्मणों के लिए घर तथा मुन्दर देव-मन्दिर सब तीर्थों में बनवा दिये ।

वेद पुण्यों में जिनने प्रकार के यज्ञ किये गये हैं, राजा ने उन सब
 के उन सबको हजार-हजार दान बडे प्रेम के साथ कर दाले ।

विशेष—अनुमान, लालच-प्राप्त तथा पुनश्चिन् प्रकाश करवाने ।

मूल—हरदयें न कछु फल अनुसंधाना । नृप विवेकी धरम मज्जाना ॥
 करइ जे धरम धरम मन जानी । शामुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥
 चाँद वर दानि बार एक राजा । सुगया कर नर नाजि नमाया ॥
 विध्याबन्ध मनोर दन गयळ । मृग पतिन द्रु माग्न नयळ ॥

फिरत विपिन नृप दीख बराहू । जनु वन दुरेड मसिहि प्रसि राहू ॥
 बड़ विषु नहि समात मुख माहीं । मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥
 कोल कराल दसन छवि गाई । तनु विसाल पीवर अधिकाई ॥
 घुघधुरात हय आरौ पाएँ । चकित विलोकत कान उठाएँ ॥

दोहा—नील महीवर सिखर सम, देखि बिसाल बराहू ।

चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाकि न होइ निबाहू ॥१५६॥

शब्दार्थ—अनुसधाना = टोह, कामना । वाजि = घोड़ा । मृगया = शिकार । पुनीत = पवित्र, उत्तम । बराहू = सूअर । दुरेड = छिप गया । विषु = चन्द्रमा । कोल = मूँअर । कराल = भयकर । दशन = दाँत । पीवर = भरा-पूरा मोटा । हय आरौ = घोड़े की आहट । महीघर = पर्वत । चपरि = शीघ्र, वेग से । सुटुकि = चाबुक मार कर । सुजाना = ज्ञानी । हाकि = ललकार कर ।

भावार्थ—राजा ने हृदय में (उन यज्ञों के) फल की कुछ भी कामना नहीं की । वह परम चतुर और ज्ञानी था । मन, वाणी और कर्म से वह ज्ञानी राजा जो कुछ भी धर्म (कर्म) करता था, उन्हें भगवान् वासुदेव के अर्पण करके करता था ।

(१) एक बार वह राजा सुन्दर घोड़े पर चढ़कर और शिकार का सब सामान सेजाकर विन्ध्याचल के घने जंगल में गया और वहाँ उसने बहुत से पवित्र (निषेध-रहित) पशुओं को मारा ।

राजा ने उस वन में घूमते हुए एक सूअर को देखा, जो ऐसा मालूम होता था मानो चन्द्रमा को प्रसन्न कर राहू वन में आ छिपा हो । (उसके मुँह से निकले हुए दाँत ऐसे मालूम होते थे) मानो चन्द्रमा बड़ा होने से उसके मुँह में समाता नहीं है और द्राघवश होने से वह उसे उगलना भी नहीं है ।

मैंने उस भयानक सूअर के डरावने दाँतों की शोभा कही । उस का शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था । घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर चकित हो देखने लगा ।

नीचे पर्वत के सिखर के समान उस विशाल सूअर को देखकर राजा घोड़े को चाबुक लगाकर तेजी से चला और उसने सूअर को ललकारते हुए कहा कि भय तेरा बचाव नहीं हो सकता ।

विशेष—अमुप्रान, उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार ।

मूल—भावत देखि अथिक् ख बाजी । चलेउ बराह मरुत गति भाजी ॥
 तुरत कीन्ह नूप सर संवाता । भहि मिलि गयउ विलोकत बाता ॥
 तकि तकि तीर महीस चलावा । करि छल सुभर जरीर बचावा ॥
 प्रगटत दुरत जाई मृग भागा । रिम बस भूप चलेउ संगे लागा ॥
 गयउ दूरि घन गहन बराह । जहँ नाहिन् गज बाजि निवाह ॥
 अति अकेल बल बिपुल कलेसु । तदपि न मृग मग तजइ चरेसु ॥
 कोल विलोकि भूप बड़ धीरा । भागि पैठ गिरिगुहां गंभीरा ॥
 अगम देखि नूप अति पछिताई । फिरेउ महावन परेउ भुलाई ॥
 दोहा—खेद खिन्न छुदित तृपित, राजा बाजि समेत ।

खोजत ध्याकुल सरित सर, जल विनु भयड अचेत ॥१५७॥

शब्दार्थ—ख = शब्द (टापो की आवाज) । बाजी = घोड़ा । मरुत = हवा । अनेन = अनेला । कोल = सूअर । गिरिगुहा = पहाड़ की गुफा । परेउ भुलाई = रास्ता भूल गया । खेद खिन्न = अत्यधिक श्रम से थका हुआ । छुदित = भूजा ।

भावार्थ—घोड़े को बहुत शब्द करते हुए (बहुत तेजी से अपनी ओर) आता देखकर सूअर पवन वेग से भाग चला । राजा ने शीघ्र ही बाण चढ़ाया जिसे देखते ही वह धरती में दुबक गया ।

राजा तब-तब कर तीर चलाता था । पर नूअर छल करके शरीर बचाना था । वह मृग कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भाग चला, राजा भी शीघ्र से बड़ होकर उनसे साम हो लगा चला गया ।

मृग बड़न दून ऐसे घने वन में चला गया, जहाँ शायी घोड़े का निर्माण न था । (मरुत) नाम अनेन का और वन में कल्पेय भी बहुत था, तो भी अनेन मृग का पीछा नहीं होता ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

नूल--फिरत विपिन आश्रम एक देखा । तहें बस नृपति कपट मुनिवेषा ॥
जासु देस नृप लीन्ह छडाई । समर सेन तजि गयउ पराई ॥
समय प्रतापभानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी ॥
गयउ न गृह मन बहूत गलानी । मिला न रजहि नृप अभिमानी ॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा । विपिन बसइ तापस के राजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा । यह प्रताप रवि तेहि तव चीन्हा ॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना । देखि सुवेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा । परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥

दोहा—भूषित तृषित विलोकी तेहि, सरवर दीन्ह देखाइ ।

मञ्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरपाइ ॥१५८॥

शब्दार्थ—लीन्ह छडाई = छीन लिया था । पराई गयेउ = भाग गया था । चीन्हा = पहचान लिया । तुरग = घोडा । हय = घोडा ।

भावार्थ—वन में फिरते-फिरते प्रतापभानु ने एक आश्रम देखा जहाँ एक राजा कपट से मुनि का वेश धर कर रहता था, जिनका कि देहा राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो सेना को छोड़कर बुद्ध से भाग गया था । उस समय प्रतापभानु का अच्छा और अपना बुरा समय समझ कर उनके मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई । इससे वह न तो घर गया और न वह अभिमानी राजा प्रतापभानु से ही मिला (उससे भी अभिमान-बग मेल नहीं किया ।)

वह राजा दरिद्र की भाँति शोध को मन ही में रख कर तपस्वी के वेश में वन में रहता था । राजा प्रतापभानु जब उनके समीप गया, तब उसने तुरन्त पहचान लिया कि यह राजा प्रतापभानु ही है । प्रतापभानु प्यान से बहुत व्याकुल था, अतः उसने उसको पहचाना । उसके तपस्वी के सुन्दर वेश को देखकर राजा ने उसे महामुनि समझा । उसने धीरे से उतर कर उसकी प्रणाम किया । राजा परम चतुर था, अतः उसने उसको अपना नाम नहीं बताया ।

मुनिवेषी राजा ने प्रतापभानु को प्यान उतार कर नगेवर दिगन्त दिया । राजा ने हृषित होकर छोड़े रहित उसने स्नान और तप किया ।

विशेष—अनुप्रास और उपमा अलंकार ।

मूल—गै अन्न सकल सुखो नृप भयक । निज आश्रम तापस ले गयक ॥
 जानन दीन्ह अस्त रवि जानी । पुनि तापन वोखड महु बाती ।
 को तुम कस बन फिरहु अकेले । सुन्दर जुदा जीव परहेले ॥
 चक्रवर्ति के लच्छन तोरे । देखत दया लागि अति मोरे ॥
 नाम प्रनापमानु भवनीना । तासु सचिव ने सुनहु नूनोसा ॥
 फिरत अहेरे परेड भुलाई । वडे भाग देखउ पद आई ॥
 हम कहू दुर्लभ दरम तुम्हारा । जानत हौ कछु भल होनिहारा ॥
 कह मनि तात भयड अधियारा । जोजन सत्तरि नागद तुम्हारा ॥

दोहा—निमा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान ।

बनहु आजु अन जानि तुम्ह, जाएहु होत बिहान ॥१५८॥ (क)

तुलसी जनि भवतधमता, तैसी मिलइ सहाइ ।

बापुनु आवइ ताहि पाहि, ताहि तहाँ ले जाइ ॥१५९॥ (ख)

शब्दार्थ—तापन = तपस्वी । जुदा = जुवक । जीव पर हेले = हथेली पर प्राण लिये, जीवन की परवाह न करके । भवनीसा = राजा । अहेरे = भिनार के लिए । जोजन = योजन (चार कोस का एक योजन होता है) । बिहान = नवेरा । भवितव्यता = होनिहार । सहाइ = सहामता । पहि = पास ।

भाषार्थ—स्व धकावट दूर हो गई और राजा (स्नान एवं जलपान कर) सुझा हुआ, तब वह तपस्वी उन्हे अपने आश्रम में ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर (इंतने के लिए) आसन दिया, फिर वह तपस्वी जोमल बापी से बोला—

होने वाला है। मुनि बोला—हे तात ! अघेरा हो गया और तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन (२८० कोस) पर है।

हे सुजान ! सुनो, घोर अघेरी रात है, गहरा जगल है और रास्ता सूझता नहीं है, यह जानकर आज तुम यहीं रहो, सबेरा होते ही चले जाना।

तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है, वैसी ही उसे सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है या उसको वहाँ ले जाती है।

मूढ—भलेहि नाथ आयसु घरि सीसा । बाधि तुरग तब बँठ महीसा ॥
 नृप बहु भाँति प्रससेउ ताही । चरन बधि निज भाग्य सराही ॥
 पुनि बोलेउ मूढु गिरा सुहाई । जानि पिता प्रभु करउं ढिठाई ॥
 भीहि मुनीस सुत सेवक जानी । नाथ नाम निज हरहुं बखानी ॥
 तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना । भूप सुहृद सो कपट समाना ॥
 बेरी पुनि छत्री पुनि राजा । छल बल कीन्हुं चहइ निज काजा ॥
 समुझि राजसुख दुखित आरती । अवाँ अनल इव सुल गइ छाती ॥
 संरल वचन नृप के सुनि काना । बयर संभारी हृदयँ हरयाना ॥

दोहा—कपट बोरि बानी मूढुल, बोलेउ जुगुति समेत ।

नामु हमार भिखारि अब, निर्घन रहित निकेत ॥१६०॥

शब्दार्थ—भलेहि = बहुत अच्छा । आयसु = आज्ञा । तुरग = घोड़ा । सो = वह । सुहृद = साफ दिल वाला । अराती = शत्रु । बयर = बैर । संभारि = स्मरण करके । बोरि = डुबोकर । जुगुति = युक्ति । निकेत = घर ।

भावार्थ—राजा ने कहा—हे नाथ ! बहुत अच्छा (आज रात यहीं रह जाऊँगा), ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर पर धारण करे राजा घोड़े को पैठ से बाध कर बैठ गया। राजा ने उस तपस्वी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वन्दना कर अपने भाग्य की सराहना की।

फिर सुन्दर कोमल बाणी से कहा—हे प्रभो ! (मैं आपने) पिता समझकर एक ढिठाई करता हूँ। हे मुनिराज ! मुझे अपना पुत्र और सेवक समझकर हे स्वामी ! अपना नाम (धाम) विस्तार से कहिये।

राजा ने उसे नहीं पहिचाना, पर वह (तपस्वी) राजा को पहिचान गया था। क्योंकि राजा तो शुद्धहृदय था और वह कपट में चतुर था। एक

तो वह बैरी, दूसरे जाति का क्षत्रिय और तीसरे राजा—इसी से वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था ।

वह शत्रु राज्य का सुख स्मरण करके दुखी हो रहा था और उनकी छाती कुम्हार के आँच की आग के समान दृग्ग नहीं थी । राजा के सरल बचन कान से सुनकर उसने अपने बैर को याद किया और हृदय में प्रसन्न हुआ ।

फिर वह बड़ी युक्ति से ऋपट में सानकर कोमल चाणी बोला—अब हमारा नाम भिलारी है क्योंकि हम निधन और घर-रहित हैं ।

विशेष—अनुप्रास और उपमा अलंकार ।

भूल—कह नृप जे विग्यान निधाना । तुम्ह सारिखे शलित अभिमाना ॥
सदा रहहि अपनपौ दुराए । सब विधि कुसल कुवेप बनाए ॥
तेहि तें कर्हाह सत अति टेरें । परम अकिचन प्रिय हरि करैं ॥
तुम्ह नम अधन भिलारि अगेहा । होत विरवि सिवाहि सदेहा ॥
जोमि सोसि तव धरन नमानो । सो पर कृपा करिअ अब स्वामो ॥
सहज प्रीति नूपति के देखो । आपु विषय त्रिस्वाप्त विसैपो ॥
सब प्रकार राजहि अपनाई । बोलैअ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सतिभाउ कहहु महिपाला । वहाँ बसत बीते बहु काला ॥

बोहा—अब लीग मोहि न मिलेउ कोउ, मं न जनावउ काहु ।

लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु ॥१६१॥ (क)

सोरठा—सुलसो देखि सुवेपु भूलिठ मूड न चतुर नर ।

सुन्दर केकिहि पैलु, बचन सुधा सम असन अहि ॥१६१॥ (ख)

शब्दार्थ—सारांश—सदृश । अपनपौ = अपने स्वरूप को । दुराए = छिपाये रहते हैं । टेरें = पुकार कर । अकिचन = गरीब । अगेहा = घर रहित । विरवि = व्रद्धा । जोमि सोमि = आप जो कोई भी हो । विसैपो = अधिक । अपनाई = अपने वश में करके । सनिभाउ = सत्य । जनावउ = प्रकट करता है । लोकमान्यता = लोक की प्रतिष्ठा, मानमर्षादा । अनल = अग्नि । कानन = वन । केकिहि = मोन को । पैलु = देखा । असन = नाचन, आहार । अहि = सर्प ।

भावार्थ—राजा प्रतापभानु ने कहा—हे मुनीश्वर ! जो आप जैसे विज्ञान के निधान है तथा सर्वथा अभिमान रहित हैं, वे सदा अपने वास्तविक रूप को छिपाये रहते हैं, क्योंकि कुवेप धारण कर रहने में ही सब तरह का कल्याण है (अथवा वे सब तरह से चतुर होते हैं; परन्तु दिवाने को बुरा वेप बनाये रखते हैं, जिससे उन्हें कोई पहचान न सके) ।

इसीलिए तो सत और वेद पुकार-पुकार कर कहते हैं कि हरि को वे ही प्रिय होते हैं जो अति दीन होते हैं (जिनके पास कुछ भी नहीं होता) । आप जैसे नर्धन भिखारी और गृह-विहीनो को देखकर ब्रह्मा और शिवजी को भी सदेह हो जाता है कि ये वास्तव में सत हैं या णिखारी ।

राजा कहता है—आप जो कोई भी हो, मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ । हे स्वामी ! अब आप मुझ पर कृपा कीजिए ।

मुनि-वैपी शत्रु-राजा ने, जब राजा की, अपने ऊपर स्वामाविक प्रीति और अपने विषय में उसका अत्यधिक विश्वास देखा तब उसने यह जानकर कि राजा सब प्रकार से अपना वन गया है अर्थात् वश में हो गया है, अत्यधिक स्नेह जताकर कहा—हे राजन् ! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ- मुझे यहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया ।-

अब तक मुझ से न कोई मिला और न मैंने ही अपने-आपको कभी किसी पर प्रकट किया; क्योंकि लोक में जो मान (सम्मान या प्रतिष्ठा) प्राप्त होता है, वह अग्नि के समान है जो तपरूपी वन को भस्म कर डालता है । (लोको द्वारा मान्यता प्राप्त कर साधु को अहंकार हो जाता है और अहंकार तप को नष्ट कर देता है) ।

तुलसीदास जी कहते हैं—मुखों की बात ही जाने दो, मुन्दर वेप देख कर चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं । सुन्दर मोर को देखो, वचन तो बोलता है अमृत के समान और निगल जाता है साँप को भी (मयूर का रूप-रंग सुन्दर और वाणी अमृतोपम किन्तु आहार साप का) ।

विशेष—उपमा और अलंकार ।

मूल - तातें गुप्त रहचँ जग माहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाही ॥
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ । कहहु कवनि सिधि लोक रिशाएँ ॥

बुम्ह सुवि सुपनि परम प्रिय मोरे । प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे ॥
 अब जौ तान बुरावउ तोहि । दारन धोप घटइ अति मोहि ॥
 जिमि जिमि तापसु क्यइ उदासा । तिमि निमि नृपहि उपज बिन्दासा ॥
 देगा 'स्वदस कर्म मन जानी । तब बोला तापस वगध्यानी ॥
 नाम हमार एक तनु नाई । सुनि नृप बोलेउ पुनि सिर नाई ॥
 शहू नाम पर अरय बसानी । मोहि सेवक अति आपन जानी ॥
 दोहा—आदि मृष्टि उपजी जवहि, तब उतपति भं मोरि ।

विशेष—अनुप्राण अलंकार ।

मूल—जनि आचरजु फरहु मन माहीं । सुत तप ते दुर्लभ फछु नाहीं ॥
तप बल ते जग सृजइ विघाता । तपबल विष्णु भये परित्राता ॥
तदबल संभु करहि संघारा । तह ते अगत न कछु ससारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अनि अनुरागा । कथा परातन फहे सो लाग्गा ॥
करम धरम इतिहास अनेका । फरइ निरूपन विरति विवेका ॥
उदभव पालन प्रलय कहानी । फहेसि अमित आचरज वखानी ॥
सुनि महोप तापस वस भयळ । आपन नाम कहन तव लयळ ॥
कह तापस नृप जानठ तोही । कीन्हेउ फपट लाग भल मोही ॥

सोरठा—सुन महींस अति नीति, जहे तहे नाम न कहहि नृप ।

मोहि तोहि पर अति प्रति, सोइ चतुरता विचारि तव ॥१६३॥

शब्दार्थ—परित्राता = पालन करने वाला । पुरातन = पुरानी ।

भावार्थ—हे पुत्र । मन मे आश्चर्य मत करो, तप से कुछ भी दुर्लभ नहीं है । तप के बल से ही विघाता विश्व को बनाता है और तप के बल से ही ही विष्णु ससार का पालन करने वाले बने हैं ।

तप के बल से ही शिवजी (जगत का) नाश करते हैं । इस प्रकार ससार मे कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो तप से न मिल सके । यह सुन राजा को बड़ा प्रेम हुआ । तब वह तपस्वी पुरानी कथाएँ कहने लगा ।

वह कर्म धर्म, अनेकी प्रकार के इतिहास और जान एवम् वैराग्य का निरूपण करने लगा । उसने सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और सहार की अनेक आश्चर्यजनक कथाओं का विस्तार से वर्णन किया ।

(उपर्युक्त कथाएँ) सुनते ही राजा तपस्वी के वश मे हो गया और तब वह अपना नाम बताने लगा । तपस्वी ने कहा—हे राजन् । मे तुम्हें जानता हूँ । तुमने मेरे से कपट किया, पर वहे मुझे अच्छा लगा ।

हे राजन् । सुनो, ऐसी नीति है कि राजा लोग जहा-तहा अपना नाम नहीं कहने हैं । तुम्हारी उसी चतुरता को देखकर मेरी तुम पर बहुत प्रीति हो गयी है ।

मूल—नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा । सत्यकेतु पिता नरेसा ॥

गुरु प्रसाद सब जानिअ राजा । कहिअ न आपन जानि अकाजा ॥

देति तात् तव सहज सुघाई । प्रीति प्रतीत नीति निपुताई ॥
 उपजि परी ममता मन तोरे । कहूँ कया निज पूछे तोरे ॥
 अब प्रसन्न मैं मंतय नाहीं । माँगु जो भूप भाय मन माहीं ॥
 मुनि सुवचन भूपति हरयना । गहि पद विनय कौन्हि विधि नाना ॥
 कृपासिधु मुनि दरसन तोरें । धारि पदारथ करतल मोरें ॥
 प्रभुहि यथापि प्रमन्न बिलोकी । माँगि अगम वर होउँ अत्तोकी ॥
 बोहा—जरा मरन कुल रहित तनु, समर जित जनि कोड ।

एक छत्र रिपुहोनमहि, राज कल्प सत होउँ ॥१६४॥

शब्दायं—प्रताप विनसा = प्रतापमानु । अनाजा = हानि । मुघाई =
 सीधापन । तोरे = तरे, तुम्हारे । नाव = अच्छा लगे । अगम = दुर्लभ ।

भावार्थ—हे राजन् ! तुम्हारा नाम प्रतापमानु है और मत्प्रेते तुम्हारे
 पिता के । हे राजन् ! तुम को दृष्टा से मैं मन्त्र जानता हूँ, पर अपनी हानि
 समझकर तुम कहता नहीं ।

हे तात् ! तुम्हारी स्वामाविक सरलता, प्रेम, विद्वान और नीति-
 निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे लिए मन्त्रता उत्पन्न हो गयी है, इसीसे मैं
 तुम्हारे पृच्छने पर अपनी तथा कहता हूँ ।

मैं अब प्रसन्न हूँ, इसने मन्त्रेह नहीं । हे राजन् ! जो तुम्हारे मन में
 अच्छा लगे लो माँगो । मुनि के अन्दर वचन सुनकर राजा हर्षित हुआ और
 सन्ने (मुनि ने) पर पद पर अनेक प्रकार में विनती की ।

हे दयामागर मुनि ! आपके दर्शन से (धर्म अर्थ, काम और मोक्ष)
 चारों पदार्थ मेरी मुट्ठी में आ गये (मुझे प्राप्त हो गये) । तो भी स्वामी को
 प्रसन्न देखकर मैं कौरे दुर्लभ वर मागना शोक-रहित क्यों न हो जाऊँ ।

मेरा शरीर दुःख-रहित, मृत्यु और दुःख से रहित हो मुझे मुझे कोई
 शोक न रहे । मेरा शत्रुहीन एकछत्र राज्य भी कल्प तक पुच्छी पर रहे ।

द्वितीय—अनुवाद अन्वय ।

मूल - एक तपन नृप ऐमैह होऊ । भारत एक बडिज मुनु मोऊ ॥
 कान्ठ नुत्र पर नाइहि मोला । एक शिप्रपुल छाही महीमा ॥
 अरु वरु विदु मरा बरि आग । निरु के शोप न होड रणवारा ॥
 गौ विरुगु अम करहु नरेगा । लो तुल्ल अम विधि विरुनु महेमा ॥

चल न ब्रह्मकुल सन वरिआई । सत्य कहूँ दोउ भुजा उठाई ॥
 ब्रिप्र श्राप विनु सुनु महिपाला । तोर नास नहि कवनहु काला ॥
 हरषेज राज बचन सनि तासू । नाथ न होइ सोर अब नासू ॥
 तव प्रताप प्रभु कृपा निघाना । मो कहूँ सब काल कल्यान ॥

दोहा—एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटील बहोरि ।

मिलव हमार भुलाव निज, कहहुत हमहि न खोरि ॥१६५॥

शब्दार्थ—वरि आरा = बलवान । वरिआई = जोर-जबरदस्ती । कवन-
 नेहूँ = किसी भी । तासू = उसके । एवमस्तु = ऐसा ही हो । भुलाव = राह भूल
 जाना । खोरि = दोष ।

भावार्थ—(कपटी मुनि राजा प्रतापभानु से कह रहा है) तपस्वी बोला
 —हे राजन । ऐसा ही हो, किन्तु इसमें एक बड़ी भारी अडचन है, उसे भी
 सुनलो । हे पृथ्वीपति । एक ब्राह्मण-कुल को छोड़कर काल तक तेरे चरणों में
 सिर झुकायेंगे ।

तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान् हैं, उनके क्रोध से रक्षा करनेवाला
 कोई नहीं है । हे नरेश ! यदि तुम ब्राह्मणों को अपने वश में करलो, तो ब्रह्मा
 विष्णु और महेश भी तुम्हारे वश में हो जायेंगे ।

ब्राह्मण-कुल के साथ जोर-जबरदस्ती नहीं चल सकती, यह सत्य बात-
 में दोनों भुजा उठाकर कहता हूँ । हे पृथ्वी-पालक ! सुनो, बिना ब्राह्मण के
 शाप के तुम्हारा नाश किसी भी काल में नहीं होगा ।

राजा उसके वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला हे नाथ !
 अब मेरा नाश नहीं होगा । हे कृपानिधि प्रभु ! आपकी कृपा से सदा मेरा ही
 कल्याण ही होगा ।

‘ऐसा ही हो’ ऐसा कह कर वह कपटी दुष्ट मुनि फिर बोला—हे
 राजन् ! मेरे मिलने और अपने मार्ग भटकने की बात किसी से न कहना, यदि
 कह दोगे, तो हमारा दोष नहीं ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

मूल - तातें नें तोहि वरजउ राजा । कहें कया तव परन अकाजा ॥

छठे श्रवत यह परत कहानी । नास तुम्हार सत्य मन बानी ॥

यह प्रकटे अथवा द्विज आया । नास तोर सुनु भागु प्रतापा ॥
 आन उपायें निघन तब नहीं । जौ हरिहर कोपहि मन नहीं ॥
 सत्य नाथ पव गहि नृप भादा । द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥
 राखइ गुर जौ कोप विधाता । गुर विरोध नाँह कोउ जगजाता ॥
 जौ न चलव हम कहे तुम्हारे । होउ नास नाँह सोउ हमारे ॥
 एकाँह डर डरपत मन मोरा । प्रभु महिदेव आप अति घोरा ॥
 दोहा—होँहि विप्र बस कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ ।

तुम्ह तजि दीनदयालु निज, हिलू न देखउँ कोउ ॥१६६॥

शब्दार्थ—वरजउं = मना करता हूँ । कहें कथा = इस प्रसंग को अन्यत्र कहने परं । अकाजा = हानि । निघन = मृत्यु । भापा = कहा । सोउ = वह भी ।

भावायें—हैं राजन् । मैं इसलिए तुमसे मना करता हूँ क्योंकि यह बात कह देने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी छठे वान में इन कहानी के पढ़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा—मेरी यह वाणी सत्य है ।

हे प्रतापमानु ! सुनो, या तो इस गान के खुलने से या ब्राह्मणों के शाप से तुम्हारा नाश होगा । यदि भगवान् विष्णु और महादेव भी अपने मन में क्रोध करें तो किसी अन्य उपाय से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ।

राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा—हैं स्वामी ! मृत्यु ही है । ब्राह्मण और गुरु के कोप से भला कौन रक्षा करता है । यदि विधाता भी क्रोध करें तो गुरु बचा लेता है, परन्तु गुरु से विरोध करने पर अपार के जोड़ भी बचाने वाला नहीं है ।

जो मैं आपके कहने पर नहीं चलूँगा, तो मेरा नाश हो जाय । इसका सोच मुझे नहीं है । लेकिन हे प्रभो ! मेरा मन तो एक ही भय ने डर रहा है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है ।

वे ब्राह्मण किन प्रकार वग में हों, व्रथा उनके वह भी कहेंगे । हे दीनदयालु ! आपको छोट अन्य किसी को मैं अपना हितकामे नहीं मनाना ।

विशेष—अनुक्रम तथा 'डर डरपत' में सार्थक-निरर्थक 'डर' शब्द की आवृत्ति से यमक अलंकार ।

मूल - सु नृप विविच जतन जग माहीं । कष्टसाध्य पुनि होहि कि नाहि ॥
 अहइ एक अति सुगम उपाई । तहां परन्तु एक कठिनाई ॥
 मम आधीन जुगत नृप सोई । मोर जाव तव नगर न होई ॥
 आजु लगो घच जब ते भयऊं । फाहू के गृह ग्राम न गयऊं ॥
 जो न जाउं तव होइ अफाजू । वना आइ असमंजस आजू ॥
 सुनि महीस बोलेउ मृदु धानी । नाथ निगम असि नीति बलानी ॥
 बडे सनेह लघुन्ह पर करहीं । गिरी निज सिरनि सदा तृन घरहीं ॥
 जलधि अगाध मौलि वह फेनू । संसत धरनि धरत सिर रेनू ॥

दोहा - अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होहु कृपाल ।

मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

शब्दार्थ—जतन = यत्न, उपाय । कष्टसाध्य = बड़ी कठिनता से सिद्ध होने वाले । अहइ = है । जाव = जाना । असमंजस - दुविधा । मौलि = मस्तक पर । वह = धारण करता है । फेनू = फेन, क्षांग ।

भावार्थ—(तपस्वी बोला) हे राजन् ! सुना, ससार में उपाय तो बहुत है, परन्तु वे सभी कष्टसाध्य हैं और फिर उनकी सफलता भी निश्चित नहीं है, वे सिद्ध हो या न हो । हा, एक उपाय बहुत सरल है, परन्तु उसमें भी एक कठिनाई है ।

हे राजन् ! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर तुम्हारे नगर में मेरा जाना नहीं हो सकता । जबसे मैं पैदा हुआ हूँ, तब से आज तक किमी के घर या ग्राम में नहीं गया हूँ ।

यदि मैं (तुम्हारे साथ) नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम विगड़ता है । आज कैसा असमंजस आ पड़ा है ? यह सुन राजा कोमल वाणी से बोला—
 हे नाथ ! वेदों में ऐसी नीति कही है—

बड़े छोटो पर स्नेह करते हैं । (इसलिए) पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण किए रहते हैं । अथाह समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करते हैं और पृथ्वी सदा अपने सिर धूल को धारण करती है ।

हे स्वामी ! कृपा कीजिए—ऐसा कहकर राजा ने मुनि के चरण पकड़ लिये । हे प्रभो ! मेरे लिए इतना कष्ट सहिये, क्योंकि आप वड़े सज्जन और दीनदयालु हैं ।

विशेष—अनुप्रास और दृष्टान्त अलंकार ।

मूल—जानि नृपहि आपन आधीना । वोला तापस कपट प्रवीना ॥
 सत्य कहउ भूपति सुनु तोही । जग नाहिन दुलभ कछु मोही ।
 अवसि काज मं करिहउ तोरा । मन तन बचन भगत तं मोरा ।
 जोग जुगति तप मंत्र प्रनाड । फलइ तर्वाहि जव करिअ दुराऊ ॥
 जो नरेश मं करौ रसोई । तुम्ह परसहु मोहि जानन कोई ॥
 अन्न सो जोई जोई भोजन करई । सोई सोई तव आयसु अनुसरई ॥
 पुनि तिन्ह के गृह जेवंइ जोऊ । तव वस होइ भूप सुनु सोऊ ॥
 जाइ उपाय रचहु नृप एह । संवत भरि सकल्प करेहू ॥

दोहा - नित नूतन द्विज सहज सत, वरेहु सहित परिवार ।

मे तुम्हारे सकल्प लगि, दिनहि करवि जेवनार ॥१६८॥

भावार्थ—(कपटी मुनि राजा प्रतापमानु को ब्राह्मणों को वश में करने का उपाय बता रहा है) राजा को सब तरह से अपने वश में जानकर वह चतुर कपटी तपस्वी बोला—हे राजन् ! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि ससार में मेरे लिए कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा, क्योंकि तू मेरा मन, वचन, कर्म से भक्त है। किन्तु योग, युक्ति, तप और मन्त्रों का अभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपकर किये जाते हैं ।

हे राजन् ! यदि मैं रसोई बनाऊँ और तुम परोसो, और मुझको कोई न जाने, तो जो-जो उस अन्न खायेगा, वह तुम्हारे वश में हो जायगा। फिर उन लोगों के घर में जो भोजन करेगा, हे राजन् सुनो, वह भी तुम्हारे वश में हो जायगा। हे राजन् ! तुम घर जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर ब्राह्मणों को भोजन कराने का सकल्प कर लो ।

तुम नित्य नये एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब सहित निमन्त्रित करना और मैं तुम्हारे सकल्प-काल तक अर्थात् एक वर्ष तक भोजन बना दिया करूँगा ।

मूल—एहि विधि भूप कपट अति थोरें । होइहहि सकल विप्र वस तोरें ॥
 करिहहि विप्र होम मख सेवा । तोह प्रसग सहजेहि वस देवा ॥
 और एक वोहि कहउ लखाऊ । मे एहि वेध न आडवा फाऊ ॥
 तुम्हारे उपरोहित कहूँ राया । हरि आनव मं करि निज माया ॥

तपबल तेहि करि बापु समाना । रविहउँ इहां बरस परवाना ॥
 मैं धरि तासु वेपु सुनु राजा । सब विधि तीर सँवारन काजा ॥
 गँ निसि चहुत सयन भव कीजे । मोहि तोहि नूप भेंट दिन तीजे ॥
 मैं तपबल तोहि तुरग समेता । पहुँचँहउँ सोचतहि निकेता ॥
 दोहा—मैं आचव सोइ वेपु धरि, पहिचानेहु तब मोहि ।

जब एकांत बोलाइ सब, कथा सुनावौं तोहि ॥१६९॥

भावार्थ—हे राजन् ! उस प्रकार थोड़े ही कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे वग मे हो जायेंगे । ब्राह्मण होय, यज्ञ और भगवान् की सेवा-पूजा करेंगे, इस प्रसंग से सब देवता भी महज मे ही वग मे हो जायेंगे ।

एक बात और भी तुमसे कहता हूँ कि मैं इस रूप मे कभी नहीं आऊँगा । हे राजन् ! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर ले जाऊँगा ।

तप के बल से उसे अपने समान करके एक वर्ष तक यहा रक्खूँगा, और हे राजन् ! सुनो, मैं उसका वेप धरकर सब तरह से तुम्हारा काम करूँगा ।

रात बहुत बीत गई, अब सो जाओ । हे राजन् ! मेरा और तुम्हारा मिलना तीसरे दिन होगा । मैं तप के बल से तुम्हें षोडे-सहित सोते ही सोते घर पहुँचा दूँगा ।

मैं वही (पुरोहित) का वेप धारण करके आऊँगा । जब मैं एकान्त मे तुम्हें बुलाकर सब कथा सुनाऊँ, तब तुम भ्रुक्षे पहिचान लेना ।

मूल—सयन कोन्ह नूप आयसु मानी । आसन जाइ बैठ छल रयानी ॥
 धमिंत नूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
 कालकेतु निसिचर तहँ आधा । जेहि सूकर होइ नूपहि मुलावा ॥
 परम मित्र तापस नूप केरा । जागइ सो अति कपट घनेरा ॥
 तेहि के सत अरु दस भाई । खल अति अजय देव दुखबाई ॥
 प्रथमहि नूप समर सब गारे । विप्र संत सुर देखि दुखारे ॥
 तेहि छल पाछिल वयर संभारा । तापस नूप मिले मंत्र विचारा ॥
 जेहि रिपु छय लोइ रचेन्हि उपाऊ । भायी वस न जान कछु राऊ ॥
 दोहा—रिपु तेजसी अकेल अपि लघ करि गनिअ न ताहु ।

अजहँ देत दुख रवि समिहि, सिर अघसेपित राहु ॥१७०॥

शब्दार्थ-मयन = मयन (मोना) । छत्र मानी = कपट जानी । श्रमिन् = यका हुआ । मुलावा = भटनाया था । पाटिञ्च मयन = पिटला बर । मभारा = स्तरण किया । मय विचारा = पटय रचा । छत्र = नाग, धप । गरु = राजा । तेजनी = तेजन्वी । गनिअ = ममज्ञता चाहिए । सिर अक्केपित = सिर मात्र बचा हुआ ।

भावार्य - कपटी मृत्ति की आज्ञा मान कर राजा ने मयन किया और वह कपटजानी अपने बानन के ऊपर जा बैठा । राजा धरा हुआ था, इसलिए उसे खूब नोद आ गई, किन्तु वह (कपटोजानी) देने मोना देने तो (बदला लेने की) वृत्त चिन्ता हो रही थी ।

उसी समय वहाँ कालवैतु नामका राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजा को भटकाया था । वह तपस्वी राजा का बच्चा मित्र था और खूब छल-प्रपञ्च जानता था । उसके सौ पुत्र और दस भाई थे जो बड़े दुष्ट थे, जितनी से न हारने वाले और देवताओं को दुःख देने वाले थे । ब्राह्मणों, सत्तों और देवताओं को दुखी देखकर राजा प्रतापमानु ने उन सबको पहले ही कुछ भे मार डाला था ।

इस दुष्ट ने भी, अपनी पुरानी शत्रुता को याद किया और उसने तपस्वी राजा से मिलकर सलाह की (पड्यत्र रचा) और जिस प्रकार शत्रु का नाश हो, वही उपाय रचा । होमहार-वम राजा प्रतापमानु कुछ भी न ममज्ञ सका ।

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं मनझना चाहिए । जिसका सिर मात्र बचा था, वह राहु आज तक भी नूर्य-जन्म को दुःख देता है ।

विशेष—अनुप्रास और अर्थान्तरन्याय अलंकार (सामान्य का विशेष से समर्थन) ।

मूल - तापस नृप निज सखहि निहागे । हरपि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥
मित्रहि कह सब कथा सुनाई । जातुघान बोला सुख पाई ॥
अब साधेउ रिपु सुनहु नरेना । जो तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई । विनु औपव विआधि विधि सोई ॥

कुल समेत रिपु मूल बहाई । चौथे दिवस मिल्नव में आई ॥
तापस नृहहि बहुत परितोषी । चला महा कपटि अति रोषी ॥
भानु प्रताप बाजि उभेता । पहुँचाएसि छन भाँसि निकेता ॥
नृपहि नारि पहि सधन कराई । हम गृहें वाँघेमि बाजि बनाई ॥

दोहा - राजा के उपरो हितहि, तिह हरि लं गयउ बहोरि ।

लं राखेमि गिरि खोह महुँ, माया करि मति भोरि ॥ १७१ ॥

शब्दार्थ—मखहि = मित्र को । निहारी = देखकर । जातुवान = राक्षस (कालकेतु) साधेउ = फावू में कर लूँगा । विआधि = व्याधि, बीमारी । मूल = जड़ । बाजि = घोडा । छन भाँस = क्षण भर में । पहि = पास । ह्यगृहें = घुड़साल में । बनाउ = अच्छी तरह से । बहोरि = फिर । गिरि खोह = पहाड की गुफा । भोरि = भ्रम में डाल कर ।

तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ । उसने मित्र को सब कथा कह सुनाई (जिसे मुनकर कालकेतु) राक्षस मुख पाकर बोला—

हे राजा ! मुनों, जो तुमने मेरे बहने के अनुसार काम किया, तो (समझो) अब वेने को बध में कर लिया । तुम अब चिन्ता छोड़कर सो जाओ, क्योंकि विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया ।

कुल-सहित यशु को जड़-मूल से बहाकर मैं आज में चौथे दिन तुमसे आकर मिलूँगा । (इस प्रकार) तपस्वी राजा को बहुत ढाढस बधाकर, वह महाकम्ठी और अत्यन्त शोधी राक्षस चला ।

उमन राजा प्रतापभानु को घोड़े-सहित क्षण भर में घर पहुँचा दिया । राजा को रानी के पास सुला कर घोड़े को घुड़साल में बाध दिया ।

फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया और उसे पर्वत की खोह में रक्ता और (अग्नी) माया से उसकी बुद्धि को भ्रम में डाल दिया ।

मूल—आपु विरचि उपरोहित रूप। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ॥
जागेउ नृप अनभएँ विहाना । देखि भवन अति अचरजु माना ॥

मुनि महिमा मन महें अनुमानी । उठेउ गर्बेहि जेहि जान न रानी ॥
 कानन गयउ वाजि चढ़ि तेहीं । पुर नर नारि न जानेउ केहि ॥
 गए जाम जुग भूपति आवा । घर घर उत्सव वाज बघावा ॥
 उपरोहितहि देख सब राजा । चकित विलोकि सुमिरि सोइ काजा ॥
 जुग सम नृपहि गए दिन तीनी । कपटी मुनि पद रह मति लीनी ॥
 समय जानि उपरोहित आवा । नृपहि मते सब कहि समुझावा ॥

दोहा— नृप हरषेउ पहिचानी गुरु, भ्रम बस रहा न चेत ।

बरे तरत सत सहत बर, विप्र कुटुंब समेत ॥१७२॥

शब्दार्थ—विरचि = वनाकर । अनूपा = अनुपम, सुन्दर । अनभए = न होने पर । विहाना = सवेरा । गर्बहि = घीरे से । जाम जुग = (याम युग) दो पहर । मते = मत्रणा के अनुसार । बरे = निमन्त्रण दे दिया ।

भावार्थ—फिर आप पुरोहित का रूप वनाकर उसकी सुन्दर सेज पर जा लेटा । राजा सवेरा होने से पहले ही जाना और अपने को महल में देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ ।

मुनी की महिमा का मन में अनुमान करके राजा चुपके से उठा, जिससे रानी न जानले । फिर उसी घोंडे पर चढ़ कर वन को चला गया । नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष ने नहीं जाना ।

दोपहर बीत जाने पर राजा (नगर में) आया, तब घर-घर में उत्सव होने लगे और बघावा बजने लगा । जब राजा ने पुरोहित को देखा, तो उस कार्य का स्मरण कर चकित हो उसे देखने लगा ।

राजा को तीन दिन एक युग के समान बीते और उसकी मति कपटी मुनि के चरणों में लगी रही । उचित समय जानकर पुरोहित (वना हुआ राजा) आया और उसके सब मत (भावी कार्यक्रम) कह कर राजा को समझाया ।

राजा गुरु को पहचानकर प्रसन्न हुआ और भ्रम में होने के कारण उसे कुछ चेत (ज्ञान) नहीं रहा । उसने शीघ्र ही एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब-सहित निमन्त्रण दे दिया ।

मूल—उपरोहित जेवनार वनाई । छरस चारि विधि जसि श्रुति गाई ॥
 माया मय तेहि कीन्ह रसोई । विजन बहु गनि सकइ न कोई ॥
 विविध भूगन्ध कर आमिष रांधा । तेहि महुँ विप्र मांसु खल सांधा ॥
 भोजन कहुँ सब विप्र बोलाए । पद पखारि सादर बैठाए ॥
 पकसन जवाँहि लाग महिपाला । भँ अकास बानी तेहि काला ॥
 विप्रचून्ड उठि उठि गृह जाहू । है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू ॥
 भयउ रसोई भूसुर मांस । सब द्विज उठे मानि विस्वासू ॥
 भूप विकल मति मोहँ भुलानी । भावी बस न आव मूख बानी ॥

दोहा - बोले विप्र सकोप तब, नहिँ कछु कीन्ह विचार ।

जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ सहित परिवार ॥१७३॥

शब्दार्थ - उपरोहित = पुरोहित । जेवनार = भोजन-सामग्री, रसोई ।
 जसि = जैसा । विजन = व्यञ्जन, भोज्य पदार्थ । भूगन्ध = पशुओं का । आमिष =
 मांस । खल = दुष्ट । सांधा = मिला दिया । भूसुर = ब्राह्मण । मूढ - मूर्ख ।

भावार्थ - पुरोहित वने कालकेतु ने छ रस और चार प्रकार
 की भोजन-सामग्री वनाई, जैसा कि वेदो में वर्णन किया गया है । उसने माया-
 मयी रसोई तैयार की और इतने प्रकार के व्यञ्जन बनाये कि जिनकी गणना
 नहीं की जा सकती ।

उसने अनेक प्रकार के पशुओं का मांस पकाया और उसमें उस
 दुष्ट ने ब्राह्मणों का मांस मिला दिया । राजा मानुप्रताप ने सब ब्राह्मणों को
 भोजन के लिए बुलाया और चरण घोकर आदर-सहित बैठाया ।

जब राजा परोसने लगा तब (कालकेतु कृत) आकाशवाणी हुई—हे
 ब्राह्मणों ! तुम उठ-उठ कर अपने घर चले जाओ, यह अन्न मल खाओ, इसके
 खाने में बड़ी हानि है, रसोई में ब्राह्मण मांस पका है ।

इस आकाशवाणी को विश्वसनीय (प्रमाण) मानकर सब ब्राह्मण उठ
 खड़े हुए । राजा की बुद्धि मोह में भूली हुई थी, अतः वह बहुत व्याकुल था
 होनहार-वश उसके मुख से एक वात भी न निकली ।

तब ब्राह्मणों ने कुछ भी विचार न करके क्रोध-पूर्वक कहा—हे मूर्ख
 राजा ! तू अपने कुटुम्ब सहित राक्षस हो जा ।

विशेष - (1) छ रस—खट्टा, मीठा, कटुवा, कपायल, चरपरा, नमकीन ।

(11) चार प्रकार के भोजन—तला हुआ, राधा हुआ, भूना हुआ और विना पका (फल आदि) ।

मूल—छत्र बधु तै विप्र दुलाई । घालै लिए सहित समुदाई ।
ईस्वर राखा धरम हमारा । जेहसि तै समेत परिवारा ॥
सवत मध्य नास तब होऊ । जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ॥
नूप सुनि श्राप विकल अति त्रासा । भँ बहोरि वर गिरा अकासा ॥
विप्रह श्राप विचारि न वीन्हा । नहि अपराध भूष बछु वीन्हा ॥
अकित विप्र सब सुनि नभ धानी । भूष गयउ जहँ भोजन खानी ॥
तहँ न असन नहि विप्र सुआरा । फिरेउ राउ मन सोच अपारा ॥
सब प्रसग महिसुरन्ह सुनाई । त्रसित परेउ अवनी अकुलाई ॥
बोहा—भूपति भावी मिटइ नहि, जवपि न वूषन तोर ।

किएँ अन्यथा होइ नहि, विप्र श्राप अति घोर ॥१७४॥

शब्दार्थ—छत्रदन्धु = नीच क्षत्रिय । तै = तुने । घालै लिए = नष्ट करना चाहता । जेहसि = नष्ट होगा । त्रासा = भय । भँ = हुई । गिराअकासा = आकाशवाणी । भोजन खानी = रसोई । असन = भोजन । सुआरा = रसोइया । फिरेउ = लौट आया । त्रसित = भयभीत । अवनी = पृथ्वी ।

भावार्थ—(ब्राह्मण राजा को शाप दे रहे हैं—तू परिवार सहित राक्षस हो जा) रे नीच क्षत्रिय । तुने ब्राह्मणों की सकुटुम्ब बुलाकर नष्ट करना चाहता, किन्तु ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की । अब तू परिवार सहित नष्ट होगा ।

एक वर्ष के भीतर ही तेरा नाश हो, तेरे वश मे कोई जल देने वाला भी न रहे । शाप सुनकर राजा भय के मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया । फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई ।

'हे ब्राह्मणों ! तुमने विचार कर शाप नहीं दिया । राजा ने कुछ भी अपराध नहीं किया' । इस आकाशवाणी को सुनकर सब ब्राह्मण अकित हो गये । तब राजा बहा गया जहाँ रसोई बनी थी ।

बहा जाकर देखा तो वहा न भोजन था और न रसोइया ब्राह्मण ही । राजा मन म बहुत सोच करता हुआ लौट आया । उसने आकर ब्राह्मणों को पिछला सब वृत्तान्त कह सुनाया और वह वहा ही भयभीत और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पडा ।

(तब ब्राह्मणों ने कहा) हे राजन् ! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है—यह कभी झूठा नहीं हो सकता।

मूल - अस कहि सब महिवेच सिधाए । समाचार पुर लोगन्ह पाए ॥
 सोचहि दूषन दंवहि वेहीं । विरचत हंस काग किय बेहीं ॥
 उपरोहितहि भवन पहुँचाई । असुर तापसहि खबरि जनाई ॥
 तेहि लल जहँ तहँ पत्र पठाए । सजि सजि सेन भूप सब धाए ॥
 घेरेहि नगर निसान बनाई । विविध भाति नित होइ लराई ॥
 जज्ञे सकल सुभट करि करनी । बन्धु समेत परेउ नृप धरनी ॥
 सत्यकेतु कुल फोड नाहि बाँधा । विप्र थाप किमि होइ असाँचा ॥
 रिपु जिति सब नृप नगर वसाई । निज पुर गवने जय जसु पाई ॥
 रोहा—भरद्वाज सुनु जाहि जय, होइ धियाता वास ।

रूरि मेरु सम जनक जम, ताहि व्याल सम दाम ॥ १२५ ॥

शब्दार्थ—-मिनाए = नले गये । केही = जिनमे । निमान = नगाडा, टा। जूजे = लडकर मर गये। बाधा = प्रधा। वाम = विपरीत। जम = यम-राज। व्याल = साप। दाम = रस्मी।

भावार्थ—-ऐसा कह कर सब ब्राह्मण तो चले गये, किन्तु जब नगर-वासियों को यह सब समाचार मिला, तब वे चिन्तान्तर विधाता को दोष देने लगे, जिसने इस बनाने-बनाते षीआ कर दिया। (ऐसे पुण्यात्मा राजा को रासस बना दिया)।

(सायकेतु ने यह सब उत्प करके) पुरोहित को उसके घर पहुँचा दिया और अपने सन्धियों मित्रों को सब बातों से अवगत रना दिया। उन दुष्ट राजा ने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिनमें सब गुरु राजा जानी-अपनी नेना जगन्नाथ को पत्रे।

याज्ञवल्क्य ने कहा—हे भरद्वाज ! मुनी, विधाता जब जिसके विपरीत होता है, तब उसके लिए धूल सुमेरु के समान (भारी), पिता यमराज के समान (कालरूप) और रस्सी साप के समान (काटने वाली) हो जाती है ।

विशेष—अनुप्राण तथा उपमा अन्कार ।

मूल—फाल पाइ मुनि सुनि सोइ राजा । भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
 दस सिर ताहि बीस भुजवंडा । रावन नाम धीर वरिवडा ॥
 भूप अनुज अरिमर्दन नामा । भयउ सो कुंभकरन बलघामा ॥
 सचिच जो रहा घरमरचि जासू । भयउ विमात्र वंघु लघु तासू ॥
 नाम विनीपन जेहि जग जाना । विष्णु भगत विग्यान निधाना ॥
 रहे जे सुत सेमक नृप केरे । भए निसाचर घोर धनेरे ॥
 कामरूप लल जिनस धनेका । कुटिल भयकर विगत विवेका ॥
 रूपा रहित हितक सव पापी । बरिन न जाहि विस्व परितापी ॥

दोहा—उपने जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनृप ।

तदपि महीसुर श्राप यस, भए सकल अवरूप ॥१७६॥

शब्दार्थ — वरिवटा = प्रचन्द । अनुज = छोटा भाई । विमात्रवधु = सौतेला भाई । घोर = प्रचड, भयानक । कामरूप = मनमाना रूप धारण करने वाले । जिनम = जाति या प्रकार । विस्व परतापी = मसार भर को दुख देने वाले । महीसुर = ब्राह्मण । अवरूप = पापरूप ।

भावायं — हे मुनि ! मुनी, समय पाकर वही राजा अपने-परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ । उनके दस सिर और बीस भुजायें थी तथा वह बहुत ही प्रचंड शून्वी था ।

राजा का छोटा भाई जिनका नाम अरिमर्दन था, वह महा बलवान शून्वी हुआ और जो उसका मंत्री धर्मरुचि था, यह विमात्रा से उसका छोटा भाई हुआ ।

हिसक थे तथा जगत को ऐसा दुख देने वाले थे कि उसका वर्णन नहीं हो सकता ।

यद्यपि वे पुलस्त्य मुनि के पवित्र, निर्मल और उपमारहित कुल में उत्पन्न हुए थे, तो भी ब्राह्मणों के शाप से वे सभी पापरूप हुए ।

मूल—कीन्ह विविध तप तीनिहूँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
 गयउ निकट तप देखि विधाता । मागहु वर प्रसन्न हैं, ताता ॥
 करि विनती गहि पद इससीसा । बोलेउ वचन सुनहुँ जगदीसा ॥
 हम काहू के मरिह न मारें । वानर मनुज जाति बुझ वारें ॥
 एवमस्तु तुम्ह बढ तप कीन्हा । मैं ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा ॥
 पुनि प्रभु कु भकरन पहि गयऊ । तेहि विलोकि मन विसमय भयउ ॥
 जौ एहि खल नित करव अहारू । होईह सब उजारि संसारू ॥
 सारद प्रेरि तामु मति केरी । मागेसि नौद मास षट केरी ॥

दीहा—गए विभीषन पास पुनि, फहेउ पुत्र बर माँगु ।

तेहि मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥

शब्दार्थ—उग्र = कठिन, प्रचंड । वारें = छोड़ कर, बचाकर । पहि = पास ।
 एहि = यह । करव = करेगा । सारद प्रेरि = सरस्वती की प्रेरणा करके ।

भाषार्थ—तीनों भाइयों ने अनेक प्रकार की तपस्या की—ऐसी प्रचंड जिसका वर्णन नहीं हो सकता । उनके तप को देख कर ब्रह्मा जी उनके पास गये और बोले—हे तात ! मैं प्रसन्न हूँ, वर मागो ।

रावण ने विनय करके चरण पकड़ लिये और बोला—हे जगदीश्वर ! सुनिए, वानर और मनुष्य इन दो जातियों को छोड़ कर हम और किसी के मारे न मरें ।

(शिवजी पार्वती से कहते हैं कि) मैंने और ब्रह्मा ने मिल कर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने वडा तप किया है । फिर ब्रह्मा कु भकर्ण के पास गये । उसे देख कर उसके मन में बड़ा भारी आश्चर्य हुआ । उन्होंने विचार किया—यदि यह दुष्ट नित्य आहार करेगा तो सारा ससार ही उजाड़ हो जायगा । ऐसा सोच कर ब्रह्मा ने सरस्वती को प्रेरणा दी और उसने उनकी बुद्धि फेर दी, जिससे उसने छ महीने की नौद मागी ।

इन्के बाद ब्रह्मा की विभीषण के पास गये और बोले—है पुत्र । बर
भागो । उनने भगवान् के चरण कमलों में निष्काम और अन्त्य प्रेम मंगा ।

विशेष—‘पद कमल’ में निरग रूपक अलंकार ।

मूल - तिनूहि वेइ बर ब्रह्म निघाए । हरिपति ते अपने गृह आए ॥
मय तनुजा भवोवरि नामा । परम सुदरी नारि ललामा ॥
सोइ मय दीन्हि रावनहि स्यानी । होइहि जातुघानपति जानी ॥
हनुषित भयव नारि नलि पाई । पनि दोर बंधु विवाहैसि जाई ॥
गिरि त्रिकूट एक निघु मसारी । विनि निनिंत दुगंम कति भारी ॥
नोइ मय दानव बहुरि संवारा । कनक रचित ननि भवन उपारा ॥
भोगावित जसि अहिष्टुल बाना । अमरावनि जनि सक्र निवासा ॥
निन्है अनिक रम्य कति, कका । जग विरथान नाम तेहि लंका ॥

दोहा—जाईं तिघु गनोर अनि, चारिहु दिनि फिरि आव ।

कनक फोट मनि लचित दृढ, वरनि न जाइ वनाव ॥१७८॥ (क)

हरि प्रेरिद जोहि कल्प जोइ, जातुघानपति होई ।

सूर प्रतापी अतुल बल, बल समेत बस नोइ ॥१७९॥ (ख)

शब्दार्थ - निघाए = बले गये । मय तनुजा = मय दानव की पुत्री
(मंदोदरी) । नारि ललामा = स्त्रियो में शिरोमणि । जानुघान पति = राक्षसों
का राजा । विअहैसि = विवाह कर दिया । मसारी = मे । संवारा = सजा
दिया । वासा = रहना । सक्र निवासा = इन्द्र के रहने की । लचित = अढा
दृश ।

अमरावती से भी यह नगरी अधिक सुन्दर और वाँकी थी और ससार में जो लका के नाम से विख्यात हुई।

उमके (लकाके) चारों ओर मगध की अत्यन्त ऊँची खाई थी और मजबूत भण्डियों से जड़े हुए इसके परकोटे थे, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता।

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा होता है, वह बड़ा दूरबीर, प्रतापी और अतुलित बली होता है और अपनी सेना सहित वहाँ (उन पुरी में) बसता है।

विशेष—अनुप्रास और व्यक्तरेक अलंकार।

मूल—रहे तहाँ निसिन्धर भट भारे । ते सब सुरग्ह सघारे ॥
 अब तहें रहहि सन्न के प्रेरे । रच्छक कोटि जच्छपति केरे ॥
 वसमुख फतहें खबरि असि पाई । सेन साजि गड घेरेसि पाई ॥
 देखि विकट भट बडि कटिकाई । जच्छ जीव लं गए पराई ॥
 फिरि सब नगर वसानन देखा । गयउ सोच सुख भयउ वितेषा ॥
 सुवर सहज अगम अनुमानी । कीन्हि तहाँ रावन रजधानी ॥
 नेहि जस जोग बाटि गृह दोन्है । सुखी सकल रजनीचर कीन्है ॥
 एक बार कुबेर पर घावा । पुष्पक जान जाति लं आवा ॥

दोहा—कौतुकीं कलास पुनि, लीन्हैसि जाइ उठाइ ।

मनुहुँ तीलि निज बाहुवल, चला बहुत सुख पाइ ॥१८९॥

भावार्थ—वहाँ। बड़े-बड़े भारी राक्षस योद्धा रहते थे, जिन्हें लड़ाई में देवताओं ने मार डाला था। अब वहाँ इन्द्र की प्रेरणा से कुबेर के एक करोड़ रत्नक रहते हैं।

रावण ने कहीं से यह खबर पाकर और सेना सजाकर लका के किले को जा घेरा। उस बड़े, विकट योद्धा और उसकी विशाल सेना को देखकर, यज्ञ अपने-अपने प्राण लेकर भाग गये।

रावण ने सारे नगर को घूम-फिरकर भली प्रकार देखा। इमने उसकी चिन्ता भिन्न गयी और उसे परम हर्ष हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही

सुन्दर और बाहर वाले के लिए दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी बनाई ।

जो जिसके लायक था उसे वंसा ही घर देकर रावण ने सभी राक्षसों को सुखी किया । एक बार उसने कुबेर पर चढ़ाई की और उसका पुष्प विमान जीतकर ले आया ।

फिर एक बार खिलवाड़ में ही जानकर उसने कैलाश पर्वत को उठा लिया मानो अपनी भुजाओं का दल तालकर और बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चल दिया ।

भूक—सुख सम्पत्ति सुत सेन मलाई । जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई ॥
 नित नूतन सब वादन जाई । जिनि प्रतिलाम लोभ अधिकाई ॥
 अतिबल कुंभकरन अस धाता । जेहि कहुँ नहि प्रतिभट जग जाता ॥
 करइ पान मोबइ पट माता । जागत होइ तिहुँ पुर आता ॥
 जीं दिन प्रति अहार कर सोई । विस्व बेगि सब चौपट होई ॥
 समरधीर नहि जाइ बखाना । तेहिंसम अमित चीर धलवाना ॥
 वारिदनाद जेठ सुत तासू । नट महुँ प्रथम लोक जग जासू ॥
 जेहि न होइ रन सनमुख कोई । सुरपुर निर्ताहि परावन होई ॥

बोहा—कुमुख अकम्पन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय ।

एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥१८०॥

शब्दार्थ—सहाइ = सहायक । वादत जाई = बढ़ते जाते थे । प्रतिभट = जोड़ का योद्धा । जाता = उत्पन्न हुआ । पान करइ = मदिरा पीता था । आसा = मय, सहलका । जीं = यदि । वारिदनाद = मेघनाद । लोक = नम्बर, गणना । परावन = भगदड़ । कुमुख = दुमुँह । कुलिसरद = वज्रदंत । निकाय = समूह ।

भावार्थ—(रावण एक उसके परिवार का वर्णन किया जा रहा है) सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, महायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई—सब रावण के दिल में नये इन प्रकार बटते जाते थे, जिस प्रकार प्रत्येक लाभ पर लीन बटना है । अन्यथा बखानू दुम्भर्ण ने ममान उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा मसार में पैदा नहीं हुआ । वह (कुम्भकर्ण के) मदीरा

पीकर छ. महीने सोया करता था। जब वह जगता था, तब तीनो लोको मे तहलका मच जाता था। यदि वह प्रतिदिन आहार लेता भोजन करता) तो सम्पूर्ण विन्व शीघ्र ही चीपट हो जाता। वह समर भूमि मे इतना घीर था कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। उमके (कु भकर्ण के) ममान लका मे असत्य बलवान् वीर ये।

रावण का बटा लडका मेघनाद था, जिसका ससार के योद्धाओ मे प्रथम स्थान था। युद्ध मे उसका सामना करने वाला कोई न था। स्वर्ग मे तो उसके भय के मारे प्रतिदिन भगदड मची रहती थी।

इनके अतिरिक्त दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदत्त, घूमकेतु, अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत् को जीत सकते थे।

विशेष — वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास और पुनरिक्तिप्रकाश अलकार।

मूल—कामरूप जानाहि सब माया। सपनेहुँ जिन्ह के घरम न दाया ॥
 दसमुख बँठ सभाँ एक वारा। देखि अमित अपना परिवारा ॥
 सुत समूह जन परिजन नाती। गर्न को पार निसाचर जाती ॥
 सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला वचन फ़ोध मद सानी ॥
 सुनहु सकल रजनीचर जूया। हमरे वरी विबुध बरूया ॥
 ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥
 तेन्ह कर मरन एक विधि होई। कहहुँ वुझाइ सुनहु अब सोई ॥
 द्विज भोजन मख होम सराधा। सबके जाइ करहु तुम्ह वाधा ॥

दोहा—छुधाछीन धलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहाई आइ।

तब मारिहुँ किछाडिहुँ भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

शब्दार्थ—कामरूप = मनमाना रूप धारण करने वाले। दाया = करुणा। जन = सेवक। परिजन = कुटुम्बी। जूया = दल। विबुध बरूया = देवदाओ का समूह। वुझाइ = समझाकर। मख = यज्ञ। सराधा = थाढ़। अपनाई अपने आधीन करके।

भावार्थ—सभी राक्षस इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले एव आसुरी माया जानने वाले थे। स्वप्न मे भी वे धर्म या दया को न जानते थे। एक वार सभा मे बैठे हुए रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा—ढेर-

सारे पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और सेवक थे। राजनों की इतनी जानिदा थी कि उन्हें कान गिन मकता था। अपनी मेना की देखकर स्वभाव में ही अभिमानी रावण क्रोध और गव ने ननी हुई वाणी बोला--हे राजनों ! तुम नव लोग सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर तो शूद्र करते नहीं ! बलवान शत्रु को देवकर वे भाग जाते हैं। उनके मरने का एक ही उपाय है, उसे मैं तुम्हें उमझा कर कहता हूँ, तुम सब ध्यान से सुनो। उनके बल को बढ़ाने वाले ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध हैं--तुम इन नव ने जाकर विघ्न खड़ा करो।

जब देवता भूख से क्षीण (दुबले पतले) और बलहीन हो जायेंगे, तब वे सत्त्व ही ने आकर भुक्ष से मिलेंगे। तब मैं उनको मार डालूँगा, या उनको अच्छी तरह से अपने बंध में कर के छोड़ दूँगा।

मूल--मेघनाथ गह्व पुनि हंकरावा। बीन्ही सिख बलु वयस बडावा ॥
 जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह के लरिवे कर अभिनाना ॥
 तिन्हि जीति रन आनेसु बांधी। उठि सुत पितु अनुसासन कांधी ॥
 एहि विधि सब ही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही ॥
 चलतदमानन डोलति अवनी। गर्जंत गर्भ त्रवाहं सुर रवनी ॥
 रावन आवत सुनेहु सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ॥
 दिगपालन्ह के लोक सिधाए। सुने सकल दमानन पाए ॥
 पुनि पुनि सिघनाद करि भारी। देह देवतन्ह गारि पचारो ॥
 रन मर मत्त फिरइ जग घावा। प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा ॥
 रवि ससि पवन बरुन बनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥
 किनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथाहि लागा ॥
 ब्रह्म सृष्टि जह लगि तनुधारी। दसनुष बनवतौ नरनारी ॥
 आयसु करहि सकल भयमोता। नबाहि आइ नित चरन तिनोता ॥

दोहा—नुजबल विस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।

मडलोक मनि रावन, राज फरइ निज मंत्र ॥१८२॥ (क)

देव जचठ गंधर्व नर, किनर नाग कुमारि।

जीति वरौ निज बाहु बल, बहु सुन्दर रर नारि ॥१८३॥ (ख)

शब्दार्थ—हँकरावा = बुलवाया । द्यरु = शत्रुता । वाँधी आनेसु = वाँध लाना । अनुसासन काँधी = आज्ञा को शिरोधार्य किया । अवनी = पृथ्वी । स्रवाहि = गिर जाते हैं । सुर रवनी = देव-रमणियाँ । सकोहा = क्रोध-महित । खोहा = गुफा । पचारी = ललकार कर । पथहि लगा = पीछे पड गया । वसवर्ती = अधीन । आयसु करहि = आशा का पालन करते थे । राखेसि = रखा । निज मत्र = अपनी इच्छा के अनुसार । जच्छ = पक्ष । वरो = व्याह लिया । वर = उत्तम, सुन्दर ।

भावार्थ—फिर रावण ने मेघनाद को बुलावाया । उसने उसको शिक्षाएँ देकर उसका बल बढ़ाया तथा देवताओं के प्रति वैरभाव की उत्तेजना दी । (तदन्तर उसने कहा)-हे पुत्र ! जो देवता युद्ध में वीर और बलवान हैं और जिन्हें लड़ने का अभिमान है, उन सबको तुम युद्ध में जीतकर बाध लाना । उठकर पुत्र ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया । इसी तरह रावण ने सब आज्ञा दी और वह स्वयं भी हाथ में गदा लेकर चल दिया ।

रावण के चलने में पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी घोर गर्जना को सुनकर देव-रमणियों के गर्भ गिर गये । क्रुद्ध रावण को आते हुए सुनकर देव-ताओं ने सुमेरु पर्वत की गुफाओं में जा छिप कर आश्रय लिया ।

जब रावण दिक्पालों के लोको में गया, तब उसने उन्हें सूना पाया । वह बार-बार भारी सिंह गर्जना करके देवताओं को ललकार-ललकार कर गालियाँ देने लगा ।

रक्षा-मद में मतवाला होकर रावण अपनी जोड़ी का योद्धा योजता हुआ ससार में दौड़ता फिरा, किन्तु उसे खोजने पर भी अपनी जोड़ी का योद्धा न मिला । सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुवेर, अग्नि काल और यम आदि सब अधिकारी, इन्द्र, मिथु, मनुष्य, देवता और नाग--वह सभी के पीछे हठ पूर्वक पड गया अर्थात् उसने इनको कभी शांति से नहीं बँधने दिया । ब्रह्मा की रथी सृष्टि में जितने शरीरधारी थे, वे सब नर-नारी रावण के अधीन हो गये । डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और प्रतिदिन आकर उसके चरणों पर विनय-पूर्वक झुकते थे ।

रावण ने अपने भुज-दल से सारे दिग्ब को अपने वश में कर लिया, उसने किसी को भी स्वतन्त्र नहीं रहने दिया । इस प्रकार वह महलीव राजाओं

का गिरोमणि बनकर नारदभौम सत्राट् के रूप में अपनी इच्छा के अनुसार राज्य करने लगा ।

देवता, यक्ष गवर्ग, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तक बहुत-सी अन्य मुन्दरियों को उमने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर व्याप्तिया ।

विशेष—अनूप्राप्त और पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार । रावण के बल की प्रनाप का कवि ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है ।

मूल—इन्द्रजोन सन जो कष्ट कहेऊ । सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ ॥
 प्रथमहि जिन्ह कहूँ आयसु दीन्हा । तिन्हकर चरित सुतहु जो कीन्हा ॥
 देखत नोमरूप सब पायो । निसिचर निकर देख परितापी ॥
 करहि उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप घरहि करि माया ॥
 नेहि विधि होइ धर्म निर्मूला । सो सब करहि वेद प्रतिकूला ॥
 जेहि जेहि देस धेनु द्विज पार्वहि । नगर गाउँ पुर आगि लगावहि ॥
 सुम आचरन कतहु नहि होई । देव बिप्र गुण मान न कोई ॥
 नहि हरि भगति जग्य तप ग्याना । मपनेहुँ सुनिज न वेद पुराना ॥

श्रिनागी—

जप जोग धिरागा तप मस्र भाग श्रवन सुनइ दससौता ।
 आपनु चठि धावइ, रहै न पावइ धरि सब घालइ क्षीमी ॥
 अम भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिज नहि काना ॥
 तेहि बहू विधि आमइ देस निफासइ जो कहूँ वेद पुराना ॥

मोरठ—

मेघनाथ से उसने जो कहा वह सब मानो उसने पहले से ही कर रक्खा था (अर्थात् रावण के कहने भर की देर थी, मेघनाथ उसे इतनी शीघ्रता से करता था मानो वह कार्य पहले से ही कर रक्खा हो)। रावण ने (मेघनाथ से) पहले ही जिन्हें आज्ञा दी थी, उनकी करवत सुनो कि उन्होंने क्या किया ?

सब राक्षसों के झुण्ड देखने में बड़े भयानक, पापी और देवताओं को दुःख देने वाले थे। वे सब असुरों के समूह उपद्रव करते और माया करके भाँति-भाँति के रूप धरते थे।

वे सब वेद के प्रतिकूल ऐसे कर्म करते थे, जिनसे धर्म का जड़ से नाश हो। वे जिस-जिस देश में गौ और ब्राह्मण पाते थे उसी शहर, गाँव और पुर में आग लगा देते थे।

(उनके डर से) कहीं भी शुभ कर्म नहीं होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नहीं मानता था। न तो भगवान् की भक्ति थी और न ही यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न में भी सुनाई नहीं देते थे।

रावण जहाँ कहीं कानों से जप, योग, वैराग्य, तप और यज्ञ कर्म होने के विषय में सुनता, तो स्वयं उठ दौड़ता था। कुछ भी रहने नहीं देता था और खिसियाया हो सब विध्वंस कर डालता था। ससार में ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानों से भी सुनाई नहीं देता था। जो कोई वेद और पुराण कहता उसे वह बहुत तरह से दुःख दे-देकर देश से निकाल देता था।

राक्षस जो घोर अनीति करते, उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिनकी हिंसा पर बहुत प्रीति हो, उनके पापों की क्या मीमा हो सकती है ?

मूल—बाढ़े खल बहु घोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा ॥
 मानाँह मातु पिता नाँह देवा। साधुनह सन करवावाँह मेवा ॥
 जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥
 अतिसय देसि धर्म के ग्लानी। परम समीत धारा अकुलानी ॥
 गिरि सरि सिंधु भार नाँह भोही। जस मोहि गरअ एक परद्रोही ॥
 सकल धर्म देखइ विपरोता। कहि न सकइ रावन भयभीता ॥
 घेनु रूप धनि हृदये बिचारी। गई तहां जहें सुर मुनि शारी ॥
 निज संताप सुनाएति रोई। काहू तें कष्ट वाज न होई ॥

छन्द—सुर मुनि गधवाँ मिलि करि सर्वाँ गे विरचि के लोका ।
 नंग गोलतुधारी नृमि विचारी परम विकल भय सोको ॥
 ग्रहा सब जाना मन अनुमाना मोर कछु न बताई ।
 जा करि तँ दामो सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई ॥

सोरठा—घरनि घरहि मन धीर, कह विरचि हरि पद सुमिरि ।
 जानत जन की पीर, प्रनु भजिहि दाखन विपति ॥१८४॥

शब्दार्थ—वाडे = बट गये । जुआरा = जुआरी । लखट = मन चलाने वाले । जानेहु = ममत्तो । गळअ = आरी । झारी = झूठ, भ्रम । विरचि के लोका = मय्य लोक । वसाई = वश चलना । जानरि = जिसकी । सहाइ = सहायक । घरनि = पृथ्वी । दाखन = कठिन ।

भावार्थ—बहुत से दुष्ट, चोर और जुआरी बह गये जो पराये धन पर मन चलाने वाले थे । लोग माना पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं से सेवा करवाने थे ।

(शिवजी कहते हैं) हे पार्वती ! शिवका ऐसा आचरण है उन सब प्राणियों को राक्षस ही जानो । धर्म के प्रति मनुष्यों के हृदय में भारी अनास्था देखकर पृथ्वी बहुत ही भयभीत एवं व्याकुल हो गयी ।

(श्रीग मन में मोचने लगी) पहाड़, नदी और समुद्र का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ना, जितना भारी बोझ एक परजोही का लगता है । सभी धर्म को विपरीत हुआ देखते हैं, पर रावण के डर के बारे कह नहीं सकते ।

हृदय में मोक्ष-विचारकर पृथ्वी गीता रूप धारण कर वहाँ गयी जहाँ सब देवता और मुनि थे । पृथ्वी ने रोकर उन्हें अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना ।

देवता, मुनि और रक्षक सब मिलकर ब्रह्मलोक को गये । उनके साथ भद्र और शोक ने व्याकुल देवता पृथ्वी भी गोता रूप धरे चली । ब्रह्माजी ने सब जानकार मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ काम नहीं चल सकता । (तब उन्होंने दुःखी ने कहा) जिसकी तु दामो है, वही अविनाशी माना हुआ और तेरे सहायक है ।

ब्रह्माजी ने भगवान् के चरणों का स्मरण करने कहा—हे पृथ्वी ।

मन मे धैर्य धारण करो। प्रभु भक्तो की पीडा को जानते हैं। वे ही हमारी कठिन विपत्ति का नाश करेगे।

बिज्ञेप—अनुप्रास अलंकार।

मूल—बैठे सुरु सब करहि विचारा। कहें पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
 पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि वस प्रभु सोई ॥
 जाके हृदय भगति जसि प्रीति। प्रभु तह प्रगट सदा तेहि रीती ॥
 तेहि समाज गिरिजा में रहेऊं। अवसर पाइ वचन एक फहेऊ ॥
 हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहि मैं जाना ॥
 देमकाल विसि विविसिह माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
 अग जगमय सब रहित विरागां। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिनि आगी ॥
 मोर वचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

दोहा—सुनि विरचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह सौर।

अस्तुति करत जोरि कर, सावधान गति धीर ॥ १८५ ॥

शब्दार्थ—पयनिधि = क्षीर-सागर। जसि = जैसी। रहेऊं = था।

अग = जो गमन न कर सके, अचर। जग = जो चल फिर सके, चर। अग जगनय = चराचर में व्याप्त।

भावार्थ,—सब देवता बैठकर विचार करने करने लगे कि भगवान् को कहाँ पावें ताकि उनके सामने पुकार करें। कोई वैकुण्ठपुरी में जाने को कहता था और कोई कहता था कि वे प्रभु क्षीरसागर में रहते हैं।

जिनके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति है, भगवान् वहाँ सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। (निवजी कहते हैं कि) हे पार्वती! उस समाज में मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही—

भगवान् तो सब जगह समान रूप से व्यापक हैं और प्रेम से प्रकट हो जाते हैं, इस बात को मैं जानता हूँ। देश, काल, दिशाओं और विदिशाओं में, कहीं ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु नहीं हैं।

प्रभु इस अग और जग (चर अचर) में व्याप्त होते हुए भी सबसे रहित और विरक्त हैं। भगवान् प्रेम से ऐसे प्रकट हो जाते हैं जैसे अग्नि (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु साधन करने पर यह प्रकट हो जाती है, वैसे ही प्रभु भी सर्वत्र व्याप्त हैं, लेकिन प्रेम से प्रकट हो जाते हैं)। मेरी बात सभी को प्रिय लगी और ब्रह्माजी ने साधु-साधु कहकर मेरी प्रशंसा की।

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी के मन में हर्ष हुआ, शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्माजी सावधान होकर हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति करने लगे।

भगवान् चराचरमय है, सब जगह व्याप्त होते हुए भी वे सबसे दूर हैं और उनकी कहीं भासक्ति नहीं है। जैसे अग्नि सब जगह अव्यक्त रूप से व्याप्त है, किन्तु अरणिमथनादि साधन किये जाने पर वह वहाँ प्रकट हो जाती है, उसी तरह भगवान् भी, जो सर्वत्र व्याप्त हैं, प्रेम से प्रकट होते हैं। मेरी बात सब देवताओं को पसन्द आई। ब्रह्माजी ने 'साधु, साधु' कह कर मेरी प्रशंसा की।

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी के मन में बड़ा हर्ष हुआ। उनका शरीर रोमांचित हो गया और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। इसके बाद धीरबुद्धि वाले ब्रह्माजी ने सावधान होकर हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति वही पर इस प्रकार की।

मूल—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रणत-पाल भगवन्ता ।

गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिधु सुता प्रिय कन्ता ॥

पालन सुर धरनी अदभुत करनी मरम न जानइ कोई ॥

जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥

शब्दार्थ—प्रणतपाल = शरणागत की रक्षा करने वाले। सिधु-सुता = लक्ष्मी। कता = स्वामी, पति। मोई = वेही। अनुग्रह = कृपा।

भावार्थ—ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति कर रहे हैं—हे देवताओं के स्वामी ! हे सेवकों को नुच देने वाले ! हे शरणागत-पालक भगवन् ! आपकी जय हो, जय हो।

हे गो ब्राह्मणों का हित करने वाले ! हे असुरों का विनाश करने वाले ! हे मरुतों के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो। हे देवताओं जी-पृथ्वी का पालन करने वाले ! आपकी करनी बड़ी अदभुत है, उसका भेद नहीं जानता।

जो प्रभु जो स्वभाव में ही कृपालु जी-दीनों पर दया करने वाले हैं, वे ही हन पर दया करेंगे।

विशेष—अनुमान और पुनर्कित-प्रणत अलग-अलग।

मूल - जय जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा ।
 अद्विगत गोतीतं चरित पुनीत माया रहित मुकुन्दा ॥
 जेहि जागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह भुनिवृन्दा ।
 निसि वासर ध्यावाहं गन गन गार्वाहं जयति सच्चिदानदा ॥

शब्दार्थ—परमानन्द = परम आनन्द स्वरूप । अविगत = अज्ञेय ।
 गोतीत = इन्द्रियो के ज्ञान से परे । पुनीत = पवित्र । मुकुन्दा = मोक्षदाता ।
 विरागी = विभवत । वासर = दिन । सच्चिदानन्दा = सत् चित् और आनन्द
 रूप ।

भाषार्थ—हे अविनाशी । हे सबके हृदय में निवाम करने वाले अर्थात्
 अन्तर्यामी । हे सर्वव्यापक और परम आनन्द स्वरूप । हे अज्ञेय । हे इन्द्रियो
 के ज्ञान से परे । हे पवित्र चरित्र वाले । हे माया से रहित एव मुक्तिदाता ।
 आपकी जय हो । जय हो ।

जिन भगवान् को समार से विरक्त एव मोह से सर्वथा दूर ज्ञानी मुनि
 प्रेम के साथ दिन-रात ध्याते हैं और उनके गुणों का गान करते हैं, उन सच्चि-
 दानन्द की जय हो ।

मूल - जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई सग सहाय न हुआ ।
 सो फरह अघारी चित हमारी जानिय भगति न पूजा ॥
 जो भव भय भजन मुनि मन रजन गजन विपति बरुथा ।
 मन बच फम बानी छाडि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥

शब्दार्थ—उपाई = उत्पन्न कर उपादान कारण बन कर । त्रिविध =
 त्रिगुण रूप, त्रिगुणात्मक । अघारी = (अघ + अरि) पापों का नाश करने वाले ।
 चित = चिन्ता । रजन = प्रसन्न करने वाले । बरुथा = झुंड समूह । गजन = नाश
 करने वाले । सयानी = चतुराई । सुरजूथा = देवताओं का समूह ।

भाषार्थ—बिना किसी दूसरे सगी या सहायक के त्रिमने अकेले ही तीन
 प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की (स्वयं अपने को ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप बनाकर
 त्रिगुणात्मक सृष्टि की रचना की) । वही भगवान्, जो पापों को नाश करने
 वाला है, हमारी चिन्ता को दूर करेगा, क्योंकि हम न पूजा विधि जानते हैं
 और न भक्ति । जो समार के भयो को नष्ट करने वाला, मुनियों के मनको

वानन्द देने वाला और विपत्तियों के समूह को नष्ट करने वाला है। मन, वचन, कर्म और वाणी की चतुराई छोड़कर सब देवता जिनकी शरण में आये हैं।

मूल—नारद धृति शेषा रिषय असेपा जा कहूँ छोड नहि जाना ।
नेहि दीन पिबारे ब्रह्म पुकारे द्रव्य सो श्री भगवाना ॥
भव चारिधि मदर सब विधि सुन्दर गुन मदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत माघ पद कजा ॥

शब्दार्थ—नारद = सरस्वती । असेपा - सम्पूर्ण । द्रव्य = दया करे ।
भव चारिधि मन्दर = मनार रूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराक्षर पर्वत ।
सुखपुंजा = नृत्यो की गति । पद कजा = चरण कमल ।

भावार्थ—उत्त (भगवान्) को सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी नहीं जानता । जिसको दान लोग प्रिय हैं, ऐसी वेद पुकार कर कहते हैं, वही भगवान् हम पर कृपा कर हे मनार रूपी समुद्र के मथने के लिए मंदराक्षर रूप, मंत्र प्रकार ने सुन्दर गुणों के वाम और नृत्यो राशि नाय । आपके चरण-कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय में अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं ।

विशेष—'भव चारिधि मदर' में परम्परित रूपक अलंकार ।

दोहा - जगति समय सुर भूमि सुनि वचन समेत सनेह ।

गगन गिरा गंभीर भइ, हरन सोक सदेह ॥ १८६ ॥

भावार्थ—देवताओं और पृथ्वी की भयातुर जानकर तथा उनके प्रेम-परिपूर्ण वचनों को सुनकर शोक और सदेह को मिटाने वाली-आकाश से गभीर वाणी हुई।

विशेष - अनुप्रास अलंकार ।

मूल—जनि टरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हूहि लागि धरिहउ नर बेसा ।।
अमन्ह नहिन्नु अवतारा । सेहउ दिन्दकर बस उदारा ॥
कम्प्य अदिन्ति महानप कीन्हा । तिन्हा कहुँ भे पूरव वर दीन्हा ॥
ते दनरथ कीसल्या रूपा । कोसलपुरी प्रगट नर नूपा ॥
सिन्हे के गृह अवतरिहउ जाई । रघुल तिलक सो चारिच भाई ॥
नारद वचन सस्य सब करिहउ । परन सन्ति समेत अवतरिहउ ॥
हन्दिह सकल भूमि गर जाई । निनय होहु देव समुदाई ॥

गगन ब्रह्मवाणी सुनि काना । तुरत फिरे मुर हृदय जुडाना ।
 तव ब्रह्मा धरनिहि समुझाया । अभय भई भरोस जिये आवा ॥
 दोहा - निज लोकाहि विरंचि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ ।
 वानर तनु धरि धरे महि, हरि पद सेवहु जाइ ॥ १८७ ॥

शब्दार्थ - लागि = लिए, खातिर । सुरेसा = देवताओं के स्वामियों ।
 लेहउ = लूंगा । दिनकर = सूर्य । पूरव = पहले ही । परमशक्ति = लक्ष्मी, आद्या
 शक्ति । गरु आई = भार । ब्रह्मवाणी = भगवान् की वाणी । जुडावा = चीतल
 हो गया । धरनिहि = पृथ्वी को । इहइ = यह ।

भावार्थ - हे मुनि सिद्ध और श्रेष्ठ देवताओं ! तुम इरो मत, मे
 तुम्हारे लिए मनुष्य का रूप धारण करूंगा और पवित्र सूर्यवंश में अपने
 अक्षो सहित मनुष्य का अवतार लूंगा ।

कश्यप और अदिति ने महान् तप किया था और उन्हें मैं
 पहले ही वरदान दे चुका हूँ । वे ही दशरथ और जिनत्या के रूप में मनुष्यों
 के राजा होकर अयोध्यापुरी में प्रकट हुए हैं ।

मैं उन्हीं के घर जाकर रघुकुल में श्रेष्ठ चार भाइयों के रूप में
 अवतार लूंगा । मैं नारद भी के सब वचन सत्य करूंगा और परम शक्ति
 सहित अवतार लूंगा ।

मैं भूमि का सब भार हूँगा । हे देववृन्द ! तुम निडर हो जाओ ।
 अपने कानों से आकाश में ब्रह्मवाणी सुनकर सब देवता तुरन्त लौट गये और
 उनका हृदय चीतल हो गया । फिर ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया । वह
 निर्भय हुई और उसमें जी मैं भरोसा आ गया ।

ब्रह्माजी देवताओं को यह समझाकर अपने तोक को चले
 गये कि तुम जाकर पृथ्वी पर बन्दरों का शरीर धारण कर भगवान् के चरणों
 की सेवा करो ।

प्रश्न २ — गोस्वामी तुलसीदास का आधिभक्ति हिन्दी-साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट करते हुए गोस्वामीजी के जीवन वृत्त पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

गोस्वामीजी जन्म के समय की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उनके जीवन की घटनाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर — गोस्वामी तुलसीदासजी के जन्म के समय की परिस्थितियों का सत्यतया वर्णन डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है। उनका इस मन्त्रग्रन्थ में उद्धृत है कि "जिन युग में तुलसीदास जन्म हुआ था, उन युग के समाज के शान्ति के अभाव में आदर्श नहीं था। समाज के उच्च स्तर के लोग विलासिता के पथ में उन्मीलित हो गए थे जिस प्रकार कुछ वर्ष पूर्व मूरदास ने देखा था। निम्न स्तर के लोग दरिद्र, अशिक्षित और रोग ग्रस्त थे। वैराग्य धारण करना एक मायावश की बात थी। घर की सम्पत्ति नष्ट होने पर अथवा स्त्री की मृत्यु हो जाने पर मरार में कोई आश्रय नहीं होने के कारण सन्यास धारण करना निया जाता था। 'अन्त' की आवाज गर्म थी, यद्यपि वे अन्त में जाने वाले कुछ स्थिति नहीं मजने थे। निम्न स्तर की जातियों में कुछ पढ़ने हुए महात्मा न मिलते थे, जिनमें बाल्य-विद्यया का सुचारु तो था परन्तु शिक्षा और मर्यादा के अभाव में इसी बाल्य-विद्यया ने गर्व का रूप धारण कर लिया। समाज में नव की मर्यादा बंद रही थी। पण्डितों और शानियों के

मार अपने ऊपर लेकर उसको यथोचित मार्ग का प्रदर्शन कराता है। इसी प्रकार जन समाज का वेडा भी भदसागर मे किसी विशेष व्यक्ति के आविर्भाव द्वारा ही प्रचण्ड परिस्थितियों के ग्रास मे पड़कर भी सरक्षित रहता है।” गोस्वामी जी ऐसे ही लगर के समान थे जिन्होंने भारतीय समाज की सुरक्षा की।

उन्होंने ‘रामचरितमानस’ द्वारा भारतीय जनता को कर्तव्य का पाठ पढाकर निराशा के समुद्र मे डूबने से बचाया। समाज मे नई चेतना व आदर्शों का संचार हुआ। धर्म, समाज और राजनीति का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत कर उन्होंने भारतीय सस्कृति की रक्षा की। अपनी समन्वय भावना के बल पर उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे समन्वय कर जनता का पथ-प्रदर्शन किया। इसीलिए वे लोकनायक भी कहलाये। इन प्रकार उनका आविर्भाव हिन्दी साहित्य मे एक महत्वपूर्ण घटना हो गई।

जीवन वृत्त—तुलसीदास ‘स्वान्त सुखाय’ रचना के पक्ष मे ये और यशोलिप्तु नहीं थे। अपने विषय मे कुछ कहना उन्हें पसन्द न था। इसी कारण उनके जीवन की घटनाओं का पूर्णरूप से (सत्य) पता नहीं लग सका है। ऐसी स्थिति मे उनके जीवन चरित के लिए हमे दो प्रकार की मामूली पर निर्भर रहना पडता है।

अन्त साक्ष्य व बाह्यसाक्ष्य—गोस्वामीजी ने स्वरचित ग्रन्थों मे अपने समन्वय मे प्रसंगत्रय जो सकेत दिये हैं वे अन्त साक्ष्य हैं और बाह्यसाक्ष्य मे वे बातें आती हैं जो वेणीमाधवदास के गोसाई-चरित्र, दादादाम के भगतमाल आदि ग्रन्थों मे उनके विषय मे लिखी हैं। रहीम टोडर आदि उनके नम कालीन कवियों और लेखकों की रचनाओं मे कवि सम्वन्धी बातें और चिन्तन-चिन्तियाँ भी बाह्यसाक्ष्य मे ही गिनी जायेंगी। इन्हीं दोनों प्रकार की सामग्रियों को लेकर हमे उनके जीवन चरित्र पर विचार करना है।

जन्म सवत—गोसाई चरित के अनुसार उनका जन्म सवत १५४४ विक्रमी धावण शुक्ला सप्तमी माना जाता है। जार्ज ग्रिपसॉन और प्रसिद्ध रामायणी पण्डित रामगुलाम टिबेदी उनके जन्म सवत १५२६ विक्रमी मानते हैं गोसाई चरित के अनुसार उनकी उम्र १२६ वर्ष और इन दिवानों के अनुसार ६१ वर्ष ठहरती है। गोसाई चरित वाली दात मान लेने पर गोस्वामी और

मोगवाई के पत्र व्यवहार की अर्थार्थता सिद्ध हो जाती है क्योंकि मीरा की मृत्यु स० १६० वि० में हुई थी। यदि गोस्वामीजी का जन्म स० १५८६ में माने तो वे १४ वर्ष के बच्चे ठहरते हैं और पत्र लिखने में असमर्थ भी। पन्तु १५५४ जन्म अवत मान लेने पर वे ४० वर्ष के ठहरते हैं जिसमें पत्र लिखा जाना सम्भव भी है लेकिन गोमाई चरित्र की अप्रामाणिकता भी सिद्ध हो चुकी है जिनसे १२६ वर्ष की आयु मानने का आधार ही नष्ट हो जाता है। फिर १५५४ जन्म अवत मानने पर रामचरित मानस का लिखा जाना ७७ वर्ष की आयु में ठहरता है जो शारीरिक और मानसिक क्षमता की अवस्था है। ऐसे अत्रक ग्रन्थ के इतनी बड़ी उम्र में लिखे जाने में विज्ञान करने में कल्पना को कुछ अधिक कष्ट देना पड़ता है। विषय विवादास्पद है और कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता।

जन्म स्थान—जन्म अवत की भाँति गोस्वामी के जन्म स्थान के सम्बन्ध में दो मत हैं। ला० सीताराम और प० रामगणेश त्रिपाठी उन्हें सोरो का मनाह्य ब्राह्मण बताते हैं। इसका आधार गोस्वामी गोकुलनाथ का दो सौ वादप वस्त्रवन की वार्ता है। दूसरे मत के अनुसार वे राजापुर के सरयू पानी ब्राह्मण ठहरते हैं। यही गौडा से जिले का सूकर क्षेत्र जहा गोस्वामीजी अपने गुरु से मानस का श्रवण किया था पास है (मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसूक्त खेत) कुछ लोग सोरो (एटा) को ही सूकर क्षेत्र मानते हैं। यद्यपि अभी तक अधिकांश उन्हें राजापुर का ही मानते हैं तथापि अब कुछ विद्वान् शंकर भी मुँके हैं।

नाम और वंश परिचय—इनका नाम रामबोला था (रामको गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम) तुलसी चरित में उन्हें तुल्याराम भी लिखा है। इनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम अत्माराम बुद्धे था। अशुभ नक्षत्र में पैदा होने के कारण उन्हें बचपन ही में माता पिता का विद्योग सहना पड़ा। क्विताकली और विनय पत्रिका के मात पिता जण जाइ तउगी। और तज्यो मातपिता हूँ, जनरु जननि तज्यो जनानि आदि से स्पष्ट है।

शिक्षा—नरहरिदास जी इनके गुरु बूढ़े जाते हैं उन समय के प्रसिद्ध विद्वान् शेष सुनानन से भी गोस्वामीजी ने शास्त्रों का अध्ययन किया था।

अपनी प्रतिभा से थोड़े समय में ही इन्होंने सब शास्त्रों का ज्ञान कर लिया था ।

विवाह—कुछ लोग व्याह न बरेखी जाति-पाँति न चहत हौं' के आधार पर कहते हैं कि ग स्वामीजी अविवाहित थे । लेकिन यह ठीक नहीं । उनका विवाह हुआ था उनकी स्त्री का नाम रत्नावली था, बुद्धिमती था । स्त्री की ही 'लाज न लागत' वाली प्रेमभरी फटकार ने उन्हें विरक्त बनाकर सर्वश्रेष्ठ कवि बनाया था ।

वैराग्य—स्त्री की फटकार से विरक्त होकर वे काशी आकर रहने लगे । उनके बाद जगन्नाथपुरी ब्रह्मीशास्त्रम, रामेश्वर, द्वारिका आदि सब तीर्थों में भ्रमण करते रहे । अयोध्या में तो उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा समय बिताया । उन्हें सबसे अधिक ममता चित्रकूट पर थी । अपने भ्रमणकाल में सत्सग से उन्होंने बड़ा ज्ञान प्राप्त किया था ।

साहित्य सेवा—इन्होंने रामलला नहछू जानकी मङ्गल, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य सन्दीपनी, रामचरितमानस, पार्वती मङ्गल, गीतावाली, कृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली से १२ ग्रंथ लिखे । उनमें रामचरितमानस, कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली आदि अधिक प्रसिद्ध हैं ।

अन्तिम समय और मृत्यु—वचन की भाँति अन्तिम समय में भी गोस्वामीजी को बड़ा कष्ट सहना पड़ा । कलियुग से दुखी होकर इन्होंने विनय-पत्रिका लिखी । उनकी प्रसिद्धि से विरोधी बड़े जलते थे । विशेषकर इसलिए कि इन्होंने सस्कृत छोड़ भाषा (हिन्दी) में 'रामायण बयो' लिखा ? इन्होंने भगवान् के भरोसे सब प्रकार के विरोधों का मुकाबला किया । उनको बहु पीडा से भी अत्यन्त कष्ट सहना पड़ा । उनके प्लेग की गिल्टी भी निश्चली थी । कवितावली के उत्तर काष्ठ में इन्होंने अपने इन दुर्दिनों का बड़ा कसप वर्णन किया है । उनकी मृत्यु के विषय में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है ।

सम्बत सोलह सौ बसो, असी गग के तीर ।

श्रावण श्यामा तीज सनि, तुलसी तज्या क्षरीर ।

कुछ दिन पहले तक 'श्रावण श्यामा तीज सनि' के स्नान पर 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' पाठ चला आता था । परन्तु अब उसकी निस्तारता निन्द हो

गई है। दोहे वाली 'श्रावण तीज सनि' तिथि ही ठीक है क्योंकि उनके मिथ टोडर के वंशज इसी तिथि को उनके नाम का सीधा अब तक देते हैं।

उपसंहार—इन प्रकार तुलसी के जीवन सम्बन्धी तीन साक्ष्य उपस्थित होते हैं—अन्त साक्ष्य बहिसाक्ष्य और जनमृति। इन सबसे अधिक प्रामाणिक अन्त साक्ष्य के प्रमाणों में भी जकाये उत्पन्न करदी हैं। परन्तु जनश्रुति की अप्रामाणिकता व परिवर्तनशीलता और बाह्यसाक्ष्य की अपेक्षा अन्तसाक्ष्य ही अधिक प्रामाणिक है। अब तक जितनी सामग्री उपलब्ध होती है उसके परीक्षण से विद्वानों ने तुलसी की जन्मभूमि का निर्धारण ता सोरो के पक्ष में ही किया है। जब तक गवेषणापूर्ण कार्यों का अन्तिम परिणाम उपलब्ध नहीं होता तब तक अन्त साक्ष्य की सामग्री को ही प्रामाणिक मानना उचित है।

प्रश्न ० - तुलसीदास के काव्य-ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी काव्य-कला की समीक्षा कीजिये।

अथवा

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का संक्षेप परिचय दीजिये।

उत्तर—महाकवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थों के विषय में भी उनके जीवन की भाँति ही कुछ मतभेद प्रचलित हैं। इस मतभेद का कारण तुलसी की रचनाओं में अन्त साक्ष्य का अभाव है। क्योंकि तुलसी राम-भक्त थे और उन्हें सात्त्विक यश आदि काव्य के प्रयोजनों ने कोई प्रयोजन नहीं था और उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना भी "स्वास्त मुखाय" ही की थी, अतः ऐसे ग्रन्थों में अन्त साक्ष्य का अभाव आवश्यक था। इस कारण यह मतभेद संख्या व रचनाकाल दोनों की दृष्टियों में है। उनकी कुछ रचनाओं में तो पाठभेद और शेषक की समस्याएँ भी प्रस्तुत हो जाती हैं।

काव्य-ग्रन्थों की संख्या—काव्यग्रन्थों की संख्या की दृष्टि से कुछ विद्वानों के मतानुसार तुलसी द्वारा रचित अठारह ग्रंथ हैं और कुछ के मतानुसार पन्चीस ग्रन्थ। नागरी प्रचारिणी मन्षा, काशी के मतानुसार तुलसी ने मैत्रीय ग्रन्थ लिखे परन्तु इनमें से द्वादश ग्रन्थ ही पं० रामचन्द्रबुल, लाला ज्ञानात्मा आदि अधिकांश विद्वानों ने प्रामाणिक स्वीकार किये हैं। प्रामाणिक ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) रामचरितमानस (२) वैराग्य सदीपनी (३) राम लला नहछू
 (४) वरवैरामायण (५) पार्वतीमगल (६) जानकीमगल (७) रामआजा प्रश्न
 (८) दोहावली (९) कवितावली (कविता रामायण) (१०) गीतावली (११) कृष्ण
 गीतावली (१२) विनय पत्रिका ।

रचना-काल—की दृष्टि से तुलसी के काव्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्ता, प० रामनरेश त्रिपाठी आदि विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। परन्तु ठोस प्रमाणों के अभाव में इन ग्रन्थों के निश्चित कार्य-क्रम का निर्णय करना कठिन है। इतना होते हुए भी उपर्युक्त बारह ग्रन्थों की प्रामाणिकता अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार की है, चाहे उनका रचना-काल अनिश्चित ही क्यों न हो।

संदिग्ध-ग्रन्थ—इनकी संदिग्ध रचनाओं में अकावली, वजरगवाण, भरतामिलाप, हनुमान चालीसा, हनुमान पंचक, हनुमान बाहुक, गीता भाषा, छप्पयराभाषण, तुलसी सतसई, कुण्डलिया रामायण आदि हैं। नागरी प्रचारिणी सभा ने भी अपनी रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया है कि तुलसी नामधारी अनेक व्यक्तियों ने भी ग्रन्थों की रचना की है न कि गोस्वामी तुलसीदास ने।

है। नक्किभाव की प्रचुरता तथा व्यंशों की महानता के सहयोग से यह ग्रन्थ धार्मिक नामाङ्कित, साहित्यिक आदि सभी दृष्टियों में तुलसी की बली-किन्नी कृति प्रतीत होता है। इसका रचना काल सन् १६-१ माना जाता है।

२ बैराग्य सदीपनी—बासठ छन्दों के इस छोटे से ग्रन्थ का रचना काल सन् १६३२ माना जाता है। इसमें दोहा, चौपाई तथा मोरठा छन्द में साधु-सन्तों के लक्षण, स्वभाव और उनकी महिमा का वर्णन है। भाषा ठेठ अवधी है और रस गात्त।

३ रामलला नहछू—बीस मोहर छन्दों की इस रचना का समय सन् १६४३ माना जाता है। इसमें राम के विवाह के समय का नहछू वर्णन है। मोहर-छन्द आनन्दोत्सव या विवाह के अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। श्रुती में प्रवाह है तथा कोमल-काना पदावली है। यह प्रबन्धात्मक काव्य है परन्तु काव्य की दृष्टि में नाधारण है। कथा-भाग में मृत्याओ का रूप वर्णन और दशरथ की शृ गार-प्रधान परिहान-प्रियता उच्छ्र्वल जान पड़ती है, परन्तु यह सब लोक जीवन के माध्यम से समझाने की देखने का प्रयत्न मात्र था। नहछू का अर्थ है—नह (नाचून) छू अर्थात् छूना, पूर्वी प्रतीति में यह प्रचलन है कि वगत के पूर्व, चौक पर बैठने के समय नाचन नाचून छूना है या महावर लगाती है।

४ सरवैरामायण—जैसा कहा जाता है कि गोन्वामी ने इसकी रचना सन् १६३२ में अपने मित्र अष्टुल ग्नीम खानखाना के अनुमते पर की थी। ६३ अंश नामक छन्दों में मान काठों में समचरित का वर्णन है। जलशरों का प्रयोग प्रयोग है। भाषा अवधी है। गृणाङ्गिता की प्रविष्टता में कुछ ऐसे तुलसी-रचित मानने में मन्देह करते हैं।

उठो मन्वी हूँसि मिस गरि बहि मृदु ब्रन ।

मिय ग्धुवर के भये उर्नदि नन ॥

५. पार्वतीमंगल—पार्वती मंगल 'कल्याण काज उछाह व्याह' में 'स्नेह सहित' गाने के लिए सवत् १६४३ की रचना माना जाता है। इसमें १६४ अरुण और हरिगीतिका छन्दों में शिव-पार्वती के विवाह की कथा का वर्णन पूर्वा अवधी भाषा में किया गया है। इसमें मंगल-विधान की पूर्ण मासग्री है और भावों की व्यञ्जना अत्यन्त कोमल ढंग से हुई है तथा उचित वैचित्र्य भी विशेष सुन्दरता युक्त है। हृद्य-वर्णन की ओर कवि का पूरा ध्यान है और अलङ्कृत पदावली का स्वाभाविक व विलक्षण प्रयोग हुआ है।

६. जानकी मंगल—सवत् १६४३ में रचित इस ग्रंथ में २१६ सोहर छन्द हैं। जानकी-राम का विवाह प्रधान विषय है और कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। कथा में हृदयग्राही प्रसंगों की भरमार है। विवाह के निमित्त किये गये आयोजन के समय लोगों के जो विचार हो सकते हैं उनका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इसमें है। अलंकारों का सफल प्रयोग है। अनुप्रास का प्रवाह व सौन्दर्य तो तुलसी की लेखनी से लिपटा पडा है। जैसे-जैसे कवि की लेखनी चलती है वैसे-वैसे ही उसके पीछे अनुप्रास का मनोहर प्रवाह है। इसकी रचना अवधी में हुई है।

७. रामाज्ञा प्रश्न—इसकी रचना गोस्वामी जी के मित्र पंडित गगाराम ज्योतिषी के आग्रह पर हुई। सवत् १६६९ के लगभग रचित इस ग्रंथ में सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग में ४९ दोहे हैं। वाल्मीकीय रामायण से प्रभावित राम-कथा का ब्रज मिश्रित अवधी भाषा में वर्णन है।

८. दोहावली—सवत् १६४० के लगभग रचित इस ग्रंथ में ५७३ स्फुट दोहे हैं। भगवद्भवित व उपदेशपरक दोहों का प्राधान्य है। इसमें कुछ दोहे ऐसे हैं जो रामचरितमानस और रामाज्ञा प्रश्न में भी आये हैं। अतः यह ग्रंथ स्वतंत्र न होकर गोस्वामी जी की विभिन्न रचनाओं से लिये गये दोहों का संग्रह है।

९. कवितावली—इसका दूसरा नाम कवित्त रामायण है इसमें तुलसी ने राम के ऐश्वर्य को प्रधान स्थान दिया है। गोस्वामी जी की सहृदयता और मर्मज्ञता जैसा सुन्दर परिचय इसमें मिलता है वैसे ही उनकी वर्णन कुशलता भी दर्शनीय है। एक ओर इसमें राम के बाल रूप की माधुरी और वन-गमन का मार्मिक चित्रण है तो दूसरी ओर लका-दहन के समय तथा युद्धक्षेत्र में

प्रदर्शित हनुमान के रणकौशल और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन है। कवित्त, सर्वथा घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्दो की इसमें ३४५ सत्या है। रचना मंगली उत्कृष्ट भाव परिभाषित और साहित्यिक है। गीतावली में छोड़ी हुई पौरुष घटनाओं की पूर्ति तथा रामचरित मानस में सक्षेप दर्शित प्रसंगों का इनमें विशद वर्णन हुआ है।

१० गीतावली - सवत् १६२७ में रचित इस ग्रंथ में विभिन्न राग-रागिनियों का समावेश है। अष्टछाप के कवियों की गीत शैली है और कथा-प्रसंग कुछ अन्तर के साथ रामायण से मिलता है। सात काण्डों में वर्णित इस ग्रंथ के ३३० छन्दों में शृ गार, ऋण और वास्तव्य आदि कोमल भावनाओं का प्राचुर्य है।

११ श्रीकृष्ण गीतावली - सवत् १६२३ में रचित ६१ पदों के इस ग्रंथ में कृष्ण-कथा का वर्णन है। इसके कुछ पद सुर के भ्रमर गीत से मिलते हैं। भाषा ब्रज है।

१२ विनय पत्रिका - पाण्डित्य और मस्कृत गभित ब्रजभाषा में रचित यह ग्रंथ भक्तों के हृदय का सर्वस्व है और भक्ति की पूर्ण पद्धति इसमें वर्णित है। तुलसी ने कलिकाल के विरुद्ध श्री राम के दरवार में अर्जो पेश की है जिसमें दरवारी शिष्टाचार का बहुत ध्यान रखा गया है। भावनाओं की अन्विष्टि की दृष्टि ने निस्तन्देह यह उच्चकोटि का ग्रंथ। शान्त रस की प्रधानता है।

१. अन्त. नास्य के अभाव में मत भेद।

२. काव्य ग्रन्थों की सत्या व मतभेद तथा प्रामाणिक बार्ह ग्रंथ।

३. रचना काल सम्बन्धी मतभेद।

४. नदिग्र ग्रन्थ।

५. ग्राम गिर बार्ह ग्रंथों का परिचय व काव्यता।

प्रश्न ३—भारतदर्प या ओजसाह ली हो सक्ता है जो समन्वय कर सके। दुर्ददेव समन्वय पारी थे, गीता में समन्वय को केप्टा है और तुलसी भी समन्वयकारी थे।" तुलसी की इस समन्वय कला पर प्रकाश डालिये।

अथवा

तुलसीदास हिन्दी के समन्वयकारी प्रतिनिधि कवि हैं। इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिये।

अथवा

—“तुलसीदासजी ने काव्य में प्रचलित सभी शैलियों तथा व्रज और अवधी दोनों भाषाओं में रचना की है और तत्कालीन समाज में समन्वय का प्रयास किया है।” उपर्युक्त कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर—भारतवर्ष में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी सस्कृतियाँ, साधनायें, विचार और धर्मसिद्धांत प्रचलित रहते हैं। तुलसी ने इन सामाजिक क्षेत्रों के साथ ही साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी अपनी समन्वय भावना का परिचय दिया है—अतः वे लोकनायक माने जाते हैं। डॉ० ग्रियर्सन इन्हें बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक और स्मिथ मुगलकाल का महानतम व्यक्ति मानते हैं। इसका कारण यह है कि तुलसी ने लगभग १२०० वर्षों से चली आ रही धार्मिक व सामाजिक विषमताओं का परिष्कार किया और समाज को ऐसे आदर्श मर्यादा के बंधन में बाँध दिया जो समन्वय की भावना पर आधारित था। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में समन्वय करने के अतिरिक्त उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में भी समन्वय-भावना को अपनाया।

समन्वय से तात्पर्य विरोधी तथा विपरीत भावों, पदार्थों व्यक्तियों तथा तत्वों के समीकरण तथा एक हो जाने से है। हमारा समाज सब दिन से उदार तथा समझौता वादी रहा है। अतिवादियों को वह कभी मान नहीं देसका है। स्थूल दृष्टि से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धदेव का लोकनायकत्व उनके समन्वयात्मक क्रिया-कलापों पर आधारित न होकर उनके विद्रोहात्मक कार्यों पर निर्भर है। उन्होंने सनातन रदियों के विरुद्ध विद्रोह किया परम्परागत धार्मिक विरवासी को उल्ट-खण्ड कर नवीन धर्म की स्थापना की, जानि-पाँति स्पृश्या-पृथ्व्य के भेद भावों को चुनौती दी बर्षाश्रम को भग किवा हिना पूर्ण यज्ञादि पूजा पाठ तीर्थ व्रत जैसे लीन नमाद्वय प्रदाओं पर प्रहार कर तत्कालीन लोक पाली को आश्रय दिया और इस प्रकार उनका सारा आचरण समन्वय की—निद्धि में नहीं बरन् समाज के विरुद्ध तान्त्रिकी पूर्ति में नियोजित हुआ। पर हमें नूलना नहीं चाहिये कि 'नहात्मा बुद्ध' का

भाग "मध्यम भाग" के नाम में विभूषित है। "मध्यम भाग" की प्राप्ति की सीधी सम्बन्ध होती है। महात्मा बुद्ध ने "अलि" पर पहुँचे हुए तत्कालीन मनाज को सम्बन्ध की और मुकाने का प्रयत्न किया और अपनी नफरतों द्वारा इतिहास में अपना नाम स्वर्गाक्षरों में लिखा गया।

बुद्ध और तुलसी के बीच भारत की विभूतियाँ—

अशोक - बुद्ध के पञ्चात् और तुलसी के पूर्व भारत में कई विभूतियाँ पैदा हुईं। सम्राटों में अशोक जैसा सम्राट् हमी बीच हुआ जो विश्व के "महान्" उपाधि-धारी थोड़े में सम्राटों में से एक है और जिनकी प्रशस्ति में एक विदेशी इतिहासकार एच० जी० वेल्स ने अपने 'विश्व इतिहास की रूपरेखा' में लिखा है - "इतिहास के पृष्ठों पर भीड़ करने वाले सहस्रों राजाओं की नामावली तथा अनेक ठाठ वाट और दान पुण्यो के बीच अशोक का नाम एक नक्षत्र की भाँति चमकता है। कान्मटेम्दाइन या पाल्ले मेन के नाम जितने लोगो ने सुने हैं उनमें कहीं अधिक मनुष्य अशोक की स्मृति की पूजा करते हैं।" अशोक की यह ख्याति उनकी व्यक्तिगत महानता के कारण भी ही समझी है, पर हम जानते हैं कि इसका प्रधान कारण महात्मा बुद्ध के उपदेशों का उसने द्वारा ईमानदारी से प्रचार व प्रसार है। उनके द्वारा कोई सम्बन्ध नष्टित नहीं हुआ।

था। कहते हैं उसने सभी धर्मों का समन्वय करना चाहा और इसी उद्देश्य से "दीन-इलाही" चलाया पर इतिहास साक्षी है कि उसका यह प्रयत्न उन्मुक्त हृदय के नहीं हुआ था और उसकी कूडनीति का छद्म-आवरण ही हुआ। अकबर को लोकनायक किसी ने नहीं माना। कर्नल स्मिथ ने अपने इतिहास में कही लिखा है कि सम्राट अकबर के समय में यही समझा जाता रहा होगा कि तुलसीदास अकबर के युग में हुए हैं। पर उम समय किसी को क्या पता रहा होगा कि ज्यो-ज्यो वर्ष दशक व शताब्दियाँ बीतती जायेंगी लोग यह कहते पाये जायेंगे कि अकबर तुलसीदास के युग में हुआ था। अकबर अपने समय का सम्राट भले ही रहा हो पर उस समय का लोकनायक कवि था तो वह महात्मा तुलसीदास ही थे। वह युग तुलसी का था अकबर का नहीं।

समन्वयकारी लोकनायक—तुलसी दासजी के इस लोक नायकत्व का रहस्य सचमुच उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा में निहित है। समन्वय के इस महान् उद्देश्य में तुलसीदास जानबूझ कर प्रवृत्त हुए थे। उनमें सामाजिक चेतना उत्प्रेरक का कार्य कर रही थी। वह नितान्त एकान्त नैवी भक्त नहीं थे। उन्होंने अपने ममर को राजनीतिक सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं की तीन अवस्था का अनुभव किया और उसमें परिवर्तन लाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। राजनीतिक अधिकार उस समय यवनों के हाथ में था। तुलसी दास ने अपनी आलंकारिक भाषा में स्थान-स्थान पर रावण राज्य के अत्याचारों के व्याज में तत्कालीन राजनीतिक दशा का वर्णन किया। पर उन्होंने कहीं भी मुसलमानों से हिन्दुओं के समन्वय का स्पष्ट उपदेश नहीं किया। यवन राज्य ने अनहयोग उनकी नीति थी। कोई आलोचक चाहे तो तुलसी दास के समन्वयात्मक 'मिश्रण' में यह श्रुति उ गितकर नकता है उनका समन्वय का उद्देश्य हिन्दु नमाज की परिधि तक सीमित था। हिन्दु नमाज के विभिन्न मतों दार्शनिक विचार धाराओं देवी देवताओं अवतारों और मान्यताओं के बीच उन्होंने समन्वय स्थापित किया। पक्षपात उन्होंने किसी के प्रति नहीं दियाया पर अत्याचार अनाचार, अनीति पांडेय का उन्होंने खुलकर विरोध किया। तुलसीदास ने विरोधी मतों, सम्प्रदायों विचार धाराओं को मिलाते का प्रयत्न अत हृदय में किया। वह हिन्दू नमाज के सच्चे उपकारक थे, उन्हें सगठित सघुषत व दृढ स्याई देवना चाहते थे। प्रत्युपकार की इच्छा उनमें

नहीं थी। क्योंकि वह सत्तार-त्यागी महात्मा थे। पर सत्तार अपने उपकारी को भी नहीं भूल सकता। यही कारण है कि तीन सौ वर्ष बीत जाने पर भी हम तुलसी के महत्त्व को भुला नहीं सके हैं और अपने समय के तो ये लोक-नायक थे ही।

सर्वदेव समन्वय—यहा महात्मा तुलसीदास की रचनाओं से उनकी समन्वय कारिणी प्रवृत्ति के प्रतिपादन में कुछ उदाहरण देना आवश्यक है। यह सर्व विदित है कि तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे पर उन्होंने सभी देवी देवताओं के प्रति सम्मान प्रकट किया है। यथा—

(१) गाई ये नरपति जगवन्दन, शकर सुवन भवानी-नन्दन।

(२) दीन दयालु दिवाकर देवा, कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥

(३) जय जय जननि, सुर नर मुनि असुर सेवि।

भक्ति युक्ति दायक भय हरणि कालि का।

(४) जय जय सुरसरी जग दाखिल-पावनी।

यह अवश्य है कि सबके प्रति विनय-भाव प्रकट करते हुए भी तुलसी दास अपनी राम-भक्ति की अनन्यता को अक्षुण्य रखते हैं। वह देवी-देवताओं से राम-भक्ति की याचना करते हैं।

चरण बन्दि विनयो सब का हू।

देहु राम पद नेह निवाहु ॥

शिव विष्णु समन्वय—तुलसीदास का युग शैवों और वैष्णवों के परस्पर विग्रह के लिए कुख्यात था। तुलसी वैष्णव थे पर उन्होंने शिव के प्रति जो नीति अपनाई उसमें उस युग की एक बड़ी ममत्ता के समाधान में मदद मिली। और छिन्न निम्न हिन्दू नमाज एकता के पाश में आ गया निम्न के अन्तर दानासन श्री नारायण करते हुए महाकवि की उक्ति है।

नी जानि मन्दु तजि धान।

गम और निव गी एन्ता उन्होंने अनोमे टंग में स्थापित की राम ने गिव की स्तुति वरवार और गिव ने राम की। गम बहते हैं—

जिबद्रोही मम दान फहावै।

सोनर रूपनेहु मोहि न भावै ॥

शिव गिरिजा को रामभक्ति का उपदेश देते हुए करते हैं ।

ते सिर कट्टु तु वरि समतुला । जे न नमत हरि गुरपद मूला ॥

न्हि हरि भगति हृदय नही आनि । जीवत सत्र समान तेही प्राणी ॥

वास्तव में शिव और राम की एकता स्थापना कार्यं तुलसी की समन्वय भावना की सबसे बड़ी विजय थी । यह उम नमय के हिन्दू समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता थी ।

भक्ति, ज्ञान, कर्म समन्वय—तुलसी प्रथमतः भक्त थे पर उन्होंने मार्गियों का विरोध नहीं किया, उनका कथन है कि ।

ज्ञान हि भक्ति हि नहि कछु भेदा ।

उमय हरहि भव सभव खेदा ॥

साथ ही कर्मवाद का समर्थन वह यह कह कर करते हैं ।

करम प्रधान विध्व करि राखा ।

जो अस करहि सो तस फल चाखा ॥

इस प्रकार तुलसीदास में भक्तियोग, ज्ञानयोग-और कर्म-योग का समन्वय मिलता है ।

निगुण सगुण समन्वय—निगुण और सगुण का विवाद भी उसी समय खूब ही चल रहा था । भक्तों का समाज इस प्रश्न को लेकर कई दलों में विभक्त था । गोस्वामी जी ने सबको मिश्रण का प्रयत्न किया ।

जिनका मन था कि—

“सगुनहि अगुनहि नहि कहू भेरा, गावहि मुनि पुरान बुधवेदा ॥

अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेम वश सगुन सो होई ॥

जो गुनरहित सगुन सोई कैसे, जलुहिम उथल विलगु नहि जैसे ॥

(वालका. चौ ११६)—

ब्रह्म-माया समन्वय—शंकराचार्य ने जिस भाषा के सिद्धान्त से जगत् को भ्रम में डाल दिया था गोस्वामी तुलसी ने उसका समन्वय जगत् जननी जानकी से कर उस भ्रम को मिटा दिया ।

श्रुति सेतु पालक राम, जगदीज तुम, माया जानकी ।

जो स्रजति जग पालति, हरति रुख पाय कृपानिधान की ॥

मन्त्रि क्षेत्र में समन्वय—सामाजिक जीवन में तुलसीदास का वर्णाश्रम का समर्थक होना सभी को विदित है। पर भक्ति के क्षेत्र में सारी असमानताएँ मिट जानी हैं और राम भक्ति का समान अधिकार सुर, नर मुनि, राक्षस, वानर, सभी को गोस्वामी जी प्रदान कर देते हैं। फल स्वरूप मोक्ष का द्वार भी सभी के लिए समान रूप से खुला। कुम्भकर्ण की मुक्ति सभी को अक्षम में डाल देती है—

ता सुतेव प्रभु वदन समाना।

सुर नर मुनि सर्वहि अचभा माना ॥

शबरो की मुक्ति की कथा कम आश्चर्य जनक नहीं है—

जाति हीन अब जन्म महि, मुक्ति कीन्ह असवारि ॥

जटायु की अपने लोक भेजने की कथा भी सभी जानते हैं।

कौन नहीं जानता की “राम ब्रह्मपरमार्थ रूपा” है? पर वही राम कहते हैं।

“अ जन सहित मनुज अवतारा, लँहो दिनकर बरा उपारा”

(बाल चौ० १८७)

यहा ब्रह्मत्व व नरत्व का समन्वय दिखाना उद्देश्य है ?

‘असुभ होई जिनके सुमिरैत वानर, रीछ विकारी’

ऐसे वानर व रीछों को भी अपना सेवक मानकर राम ने मानो देवत्व व पशुत्व के समन्वय का आदर्श उपस्थित किया है।

सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और मानवैतर क्षेत्रों में तुलसीदास ने जिस प्रकार समन्वय स्थापन का प्रयत्न किया है उसे दिखाने के लिए इतना विवेचन पर्याप्त है।

साहित्यिक समन्वय —साहित्यिक क्षेत्र में भी गोस्वामी जी इसी समन्वय भावना में भोत-प्रोत थे। उन्होंने तत्कालीन दोनों भाषाओं—अवधी व ब्रज—को अपनी रचना का माध्यम बताया। समान के लिए अवधी को अपना वर गीतावली रचिनावली विनय पत्रिका का निर्माण उन्होंने ब्रज में किया तुलसीदास के पूर्व काव्य रचना की दोहा-चौपाई, छप्प, भन हरण आदि की जिनकी शैलिया प्रचलित थी उन सबका समन्वय हम महा कवि में पाते हैं।

उपसंहार—उपसंहार में हम कह सकते हैं कि तुलसीदास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय के सिद्धान्त को अपना मार्ग प्रदर्शक बनाकर चले। अतिवाद का सहारा उन्होंने कभी नहीं लिया यही कारण है कि वे विशाल भारतीय जन समाज के इतने निकट पहुँच सके। तुलसी के लोकनायकत्व का रहस्य उनकी समन्वय भावना में है। निस्संदेह अपने समय के वे सबसे बड़े लोकनायक थे।

स्मरण—संकेत

(१) बुद्ध ने समन्वय-भावना के आधार पर “मध्यम मार्ग” को अपनाया।

(२) बुद्ध और तुलसीदास के बीच में अशोक, शंकराचार्य, अकबर जैसी महान् विभूतियाँ हुईं—पर समन्वय भावना के अभाव में वे लोकनायक नहीं बन सके।

(३) समन्वय-प्रतिभा के बल पर बुद्ध के पश्चात् तुलसी ही लोकनायक हुये।

(४) तात्कालिक युग की आवश्यकताओं को समझकर तुलसी ने जीवन के विविध क्षेत्रों में समन्वय किया।

(५) सर्वदेव, विष्णु—शिव, भक्ति—ज्ञान—कर्म, नियुंण—सर्गुण, माया—ब्रह्म, साहित्यिक आदि अनेक प्रकार का समन्वय तुलसी ने किया।

(६) समन्वय भावना के बल पर लोकनायक बन सके।

प्रश्न-४—‘राम अनन्त गुण अमित कथा विस्तार।

सुनि आचरजु न मानिहहि जिन के बिल विचार ॥’

—बालकाण्ड की उक्ति के आधार पर राम-जन्म के विविध कारणों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

“राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्व रहित सब उर पुर वासी।

नाया धरेउ नरतनु केहि हेतु। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतु ॥”

बालकाण्ड में पार्वती के इस प्रश्न का जो उत्तर शिव जी ने दिया उस पर प्रकाश डालिये।

अथवा

राम भगवान हैं परन्तु मनुष्य शरीर धारण करते हैं । राम के अवतार लेने के कारणों पर वालकाण्ड के माध्यम में विचार कीजिये ।

उत्तर—‘रामचरित्र मानस’ तुलसी के हृदय में निःसृत भक्ति की वह पतित पावनी सुरसरिता है जिसमें अवगाहन करने से त्रिविध तापो से सतप्त प्राणी को अलौकिक सुख प्राप्त होता है । इसमें तुलसी ने राम के अनन्त रूपों और ‘नेति नेति’ के आधार पर अपना गुणों के साथ ही राम-कथा के अमित विस्तार की ओर संकेत किया है । उन्होंने वाल काण्ड में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि—

“ रामकथा कै मिति जग नाही ।

अस्ति प्रतीति तिन्ह के मन माही ॥

नाना भाति राम अवतारा ।

रामायन सत कोटि अपारा ॥ (वाल का चौ ३२)

श्रोता व वक्ता के आधार से रामकथा के इन कल्प-जनित भेदों का वास्तव में वारापार नहीं है । राम-कथा अनन्त है परन्तु राम चरित्र में माना-पार्वती राम के ईश्वरत्व में श्रद्धा रखती हुई भी शिवजी से प्रणन करती हैं—

“ राम ब्रह्म चिनमय अविनासी ।

सब रहित सब उर पुर वासी ॥

नाथ-घरेड-नरतनु के-हि हेतु ।

मोहि समुझाइ कसहु अपकेतू ॥ (वाल का. चौ. १२०)

इसके उत्तर में शिव जी कहते हैं कि भगवान् के अवतार-लेने के अपना कारण हैं उनका इदमित्य नहीं है—

“ हरि अवतार हेतु जेहि होई ।

इदमित्य कहि जाइ न सोई ॥” (वाल का चौ १२१)

परन्तु फिर भी सतो, मुनियो, वेदो पुरानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इन हेतुओं की परिकल्पना की है । इन कारणों को दो विभागों में

विभक्त किया जा सकता है । प्रथम सामान्य कारण और द्वितीय विशेष कारण ।

सामान्य कारण— राम-जन्म हेतु ठीक वही है जिसे भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब धर्म अम्युत्थान के लिये, साधुओं के परित्राण के लिये और दुष्टात्माओं के विनाश के लिये मैं अवतार लिया करता हूँ—

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अम्युत्थान धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणं साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मं संस्थापनार्थाय, सम्भ्रामि युगे युगे ॥

रामचरित्र मानस के बालकाण्ड में भी शिव ने पार्वती से राम के जन्म के इस हेतु का वर्णन इस प्रकार किया है—

“जब जब होइ धरम का हानी ।

वाढाहि असुर अधम अभिमानी ॥

कराहि अनोति जाइ नहि वरनी ।

सदिहि विप्र धेनु सुर धरनी ॥

तब तब प्रभु धरि विविष सरीरा ।

हराहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥” (बालका चौ. १२१)

विशेष कारण— रामचरित्र मानस के बालकाण्ड में भगवान् के अवतार लेने के अन्य विशेष कारणों का भी उल्लेख है । इन कारणों में जय-विजय बराहावतार, जलन्धर, नारद शाप, मनु-शतरूपा, सत्केतु आदि की कथा में आधार हैं ।

प्रथम कारण— प्रथम कथा है कि विष्णु के जय विजय नामक दो द्वारपाल थे । उनको एक ब्राह्मण ने शाप दे दिया कि वे राक्षस हो जावें और तीन जन्मों में उनकी मुक्ति हो । भगवान् ने हिरण्याक्ष को बराह रूप धर कर तथा हिरण्यकश्यप को नरसिंह रूप धर कर मारा । वे ही कुम्भकरण और रावण हुए । तब मनु और शतरूपा ने दशरथ-कौशल्या के रूप में जन्म लिया और वहाँ राम ने अवतार लिया । (बालका. चौ १२२)

द्वितीय कथा-जलन्धर--- एक कल्प में जलन्धर नामक राक्षस से समस्त देवता हार गये यहा तक कि शिव जी भी उसे नहीं मार सके, क्योंकि जलन्धर की पत्नी वृन्दा महान् सती थी । भगवान् ने छल कर के वृन्दा के सतीत्व को डिगाया और जलन्धर मारा गया । इस सती के घाप में मुक्त होने के लिये भगवान् ने राम का रूप धारण किया और जलन्धर ही रावण बना । (वा० १२४)

नारद शाप-हेतु - ऋषि नारद ने बहुत तपस्या की । इन्द्र का आसन चलायमान हुआ उसने कामदेव को भेजा । परन्तु उसका कोई वश नारद पर नहीं चला । नारद के मन में कामदेव को जीतने का अहंकार आगया । उन्होंने आपवीती कथा शिव जी को सुनाई । तब शिव जी ने कहा कि हे नारदजी आप यह कथा भगवान् विष्णु से न कहें । परन्तु अभिमान वश नान्द जी ने ब्रह्मा ने तो कह ही दिया, इसके उपरान्त विष्णु को भी यह कथा सुना दी । फिर क्या था ? हरि-स्त्रीला से प्रेरित एक सुन्दर नगरी में राजा की कन्या विश्वमोहिनी का स्वयंवर होते देख नारद भी उस कन्या पर आसक्त हो गये । उन्होंने भगवान् से उनका रूप मांगा भगवान् ने रूप दे दिया नारद स्वयंवर में पहुँच गये । वहा कन्या ने इनके गले में वरमाला न डाल कर राजा का रूप धारण किये हुए भगवान् के गले में माला डाल दी । तब नारद को क्रोध आया । उस अवसर पर शिव जी के दो गण (सेवक) वहा उपस्थित थे । उन्होंने नारद से अपना गृह वन्दर (हरि) का सा नजर आया तो उत्तका क्रोध बढ़ गया और उन्होंने शिव के दोनो सेवकों को राक्षस होने का शाप दे दिया । साथ ही भगवान् को भी शाप देते हुए कहा—

“वचेहु मोहि जवनि-घरि देहा ।

सोइ तनु घरहु श्राप मम ऐहा ॥

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी ।

करि हहि कीस सहाय तुम्हारी ॥

मम अपकार कीन्ह तुम भारी ॥

नारि विरहें तुम होव दुखारी ॥’ (वाल्. १३७)

श्रु ने नारद शाप को स्वीकार कर राम रूप में उससे भुक्ति पाई ।

मनु-शतरूपा — राम जन्म का एक विशेष कारण मनु व शतरूपा की तपस्या भी है। मनु और उनकी पत्नी शतरूपा ने भगवान् की भक्ति के लिए कठिन तपस्या की। तपस्या के परिणाम स्वरूप उन्होंने भगवान् को सदेह देखने की इच्छा व्यक्त की। उनकी इच्छा पूर्ण हुई और भगवान् ने राम-सीता के रूप में उनको दर्शन दे दिये और वरदान माँगने को कहा। मनु-शतरूपा ने यह वरदान माँगा कि आप पर हमारी भक्ति ऐसी हो जैसी पिता और माता की होती है। साथ ही बेरा (मनु) शरीर आपके देखे बिना न रह सके। इस वरदान के कारण भगवान् ने राम रूप में जन्म लिया और मनु-शतरूपा क्रमशः दशरथ-कौशल्या बने।

(बालक. चौ १४२ से ..१५२)

सत्यकेतु-प्रतापमानु हेतु—राम जन्म का एक कारण यह क्या भी है कि कैकय देश के राजा सत्यकेतु के दो पुत्र थे। एक था प्रतापमानु और दूसरा अरिमर्दन। जब प्रतापमानु राजा हुआ तो उसने अपने धर्मरुचि नामक मंत्री को मह्यता से दिग्बन्धन की। इस विजय में उसने जिस राज्यों को हराया था उनमें से एक कलक के भय से साधु बत गया। एक बार जंगल में शिकार खेलने गये हुए प्रतापमानु को प्यास लगी। वह एक सूअर का पीछा करते करते उसी साधु के पास पहुँच गया। साधु का मित्र एक राक्षस था। जिसने सूअर रूप धारण किया था। साधु ने राजा को पहचान लिया और उसे अपनी बातों में फँसा लिया तथा साथ ही इस बात पर राजी कर लिया कि यदि वह इस साधु के हाथ का बनाया भोजन ब्राह्मणों को करावे तो उसका राज्य चिरकाल तक रह सकता है। राजा राजी हो गया। राक्षस ने राजा को घोड़े के साथ महल में पहुँचा दिया। निश्चित दिन उपरोहित के रूप में साधु वहाँ पहुँच गया और उसने भोजन में माँस के साथ ब्राह्मणों का माँस भी मिला दिया। जब राजा ब्राह्मणों को भोजन परसा तब आकाशवाणी हुई और ब्राह्मणों ने राजा को शाप दिया कि तुम्हारे कुल का नाश होगा। देखते-देखते साधु व राक्षस के साथी राजाओं ने प्रतापमानु को सपरिवार मार दिया। यह प्रतापमानु रावण, उसका छोटा भाई अरिमर्दन कुम्भकरण व मंत्री धर्मरुचि विभीषण बने। रावण के अत्याचारों से घबरा कर पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया और भगवान् से उद्धार की प्रार्थना की तब भगवान् ने राम के रूप में जन्म लेकर रावण का सहार किया।

इन् प्रकार रामचरित मानस राम के जन्म सम्बन्धी सामान्य व विशेष हेतुओ पर प्रकाश डाला गया है। सामान्य हेतु सासारिक धर्म पर आधारित है और विशेष हेतु मे अनेक पौराणिक आत्मानों को आधार बनाया गया है। अन्त मे उपनहार स्वरूप रामचरित मानस की निम्नलिखित पंक्तियाँ ही उद्धरण स्वरूप दी जाती हैं—

“एहि विधि जनम करम हरि केरे ।
 सुन्दर सुखद विचित्र धनरे ॥
 कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतारहि ।
 चारु चरित नाना विधि करहि ॥
 तब तब कथा भुनीसन्हु गाई ।
 परम पुनीत प्रवन्ध बनाई ॥
 विविध प्रसंग अनुप वज्राने ।
 करहि न मुनि आचरजु सयाने ॥
 हरि अतन्त हरि कथा अन्तता ।
 कहहि सुनहि बहुविधि सब संता ॥

(बालकाण्ड चौपाई-१४०)

प्रश्न ५—तुलसीदास जी के ‘रामचरितमानस’ के बालकाण्ड में आये हुए ‘मानसरूपक’ को अपने शब्दों में लिखकर ‘मानस रूपक’ के महत्व पर प्रकाश डालिये ।

(रा० वि० १९६६)

अथवा

‘रामचरितमानस’ के नामकरण से औचित्य पर प्रकाश डालिये ।

उत्तर—कवि-कुल-कमल-दिवाकर गोस्वासी तुलसी दास ने, हिन्दी साहित्य-नाटिका मे अनेक प्रथम-पुष्पों का उत्पादन करके भक्त-भ्रमरो और साहित्य मे अपनी अमर वाणी के द्वारा शीतल शक्ति का स्थान प्राप्त किया। परन्तु इस अमर कवि को साहित्य-नाटिका सार्वधिक सुन्दर, मधुर और सुगंधित पुष्पराज ‘रामचरितमानस’ ही है। इन मानस शब्द का अर्थ मानसरोवर लेकर तुलसीदास ने इनके प्रथम मंग बालकाण्ड मे मानस रूपक की रचना की है। यह रूपक बहुन लम्बा, परन्तु सुन्दर है और सागर-रूपक का मंत्रोच्छ उदाहरण

है। कवि ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के बल पर रामचरित की उत्पत्ति, भक्ति और समस्त प्रमुख घटनाओं अर्थात् 'रामचरितमानस' शीर्षक पुस्तक-रत्न के समस्त अनुभवों पर आरोप मान सरोवर का आरोप किया है।

रूपक की परिभाषा—लक्षणों के अनुसार 'रोपारोपनरूपकम्' अर्थात् अभेद आरोप को रूपक कहा जाता है। तुलसी ने रामचरितमानस के समस्त अंगों पर मानसरोवर का अभेद आरोप किया है जिससे यह सागरूपक सिद्ध हुआ है।

रूपक स्पष्टीकरण—रामचरितमानस वास्तव में मानसरोवर है जिसमें शोधु रूपी मेघ राम के यश रूपी निर्मल जल की वर्षा करते हैं। वह पवित्र जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिर कर कान के मार्ग से प्रवाहित होकर मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान में भरकर वही स्थिर हो गया।

घाट—इस कथा में मुकुण्डि-गरुड, शिव-पर्वती याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास-सतो के चारों सवाद सरोवर के चार मनोहर घाट हैं।

“सुठि सुन्दर सवाद घर बिरचे बुद्धि विचारी ।

ते एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥” (वा० दो० ३६)

सीपियाँ व जल की गहराई—रामचरित मानस के सात काण्ड मानस रूपी सरोवर की सात सीपियाँ हैं और राम की महिमा का वर्णन इस जल की प्रवाह गहराई है।

“सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना ।

ग्यान नयन निखरत मन माना ॥

रघुपति महिमा अग्रुन अवाधा ।

वरवन सोई बर वारि अगाधा ॥

जल की लहरें, कमलिनी व सीपियाँ—मान सरोवर के जल की लहरों के रूप में मानस में उपमाये हैं, कमलिनियों के रूप में सुन्दर चौपाइयाँ हैं और रुधिरा का मुक्तिर्या सीपियाँ हैं।

उभमा बोच विलास मनोरमा ।

पुरदन सघन चार चौपाइ ॥

जुगति मजु मनि सीप सुहाई ।

जुगुति मजु मनि सीप सुहाई ॥

कमल, मकरन्द, भ्रमर, हृत् व मछली — रामचरितमानस के दोहे सोरठे आदि छन्द बहुरंगे कमल हैं, सुन्दर भावों का मकरन्द है, सत्कर्म भँरे हैं, विचार हंस हैं और कविता के गुण मछलियाँ हैं—

“छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा । सोइ पराग, मकरन्द, सुवासा ॥
सुकृतपुञ्ज मञ्जुल अलिमाला । ग्यान विराग विचार मराला ॥
धनि अवरेक कवित्त गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भाति ॥”

जलचर—जीव, पक्षी, बसन्त—धर्म अर्थ, भोक्ष नामक चारो पुरुषार्थों का विचारपूर्वक कथन, नौ रस, जप, तप, वैराग्य आदि के प्रसंग इस मानस के जलचर जीव हैं और पुण्यात्मा, साधुओं व राम का गुणगान जलपक्षी हैं तथा सती की समा चारो ओर की अमराइयाँ हैं एवं श्रद्धा ही बसन्त ऋतु है ।

लता, फूल फल, रस आदि—इस मानस में वर्णित अनेक प्रकार की भवित्त व मानवीय गुण लताओं के मण्डप हैं । यम और नियम उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और भगवत्प्रेम इस फल का रस है ।

तोते, कोयल, वाटिका, माली—मानस के अन्य कथा प्रसंग बहुरंगी तोते और कोयलें हैं तथा पुलक रूपी वाटिका है और निर्मल मन ही माली है ।

“अँरउ कथा अनेक प्रसंगा ।

तेइ सुक पिक बहुवस विहगा ॥

सिंघाई व रक्षा—इस रामचरित रूपी मानसरोवर का माली प्रेम रूपा जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा वाटिका को सींचना है और इसको सावधानी से गाने वाले सरोवर के चतुर रक्षक हैं ।

“जे गावहि यह चरित सनारे ।

तेइ एहि ताल चनुर रन्ववारे ॥”(बाल. दो ३८)

विशेषता—महाकवि तुलसीदास ने इस सांगत्यक को और भी नौदम प्रदान करने के लिए आगे यह कहा है कि इन ‘मानस’ में वगुले, मेडक, घोघे आदि रहीं हैं । इनका मार्ग बीहड़ है और जिनके पास श्रद्धा रूपी राह ने नवर्ष

नहीं है, सन्तों का साथ नहीं है और भगवत्प्रेम नहीं है उनके लिए यह मानस अगम है —

“जे श्रद्धा सबल रहित नहि सन्तन्ह कर साथ ।

तिन्ह कहू मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥

(बाल दो ३८)

श्रद्धा, सत्संगति और रामभक्ति से सम्पन्न व्यक्ति ही इस सरोवर में स्नान कर सकते हैं, अन्य नहीं। इस सम्बन्ध में तुलसी ने स्पष्ट कहा है —

“जो नहाइ वह एहि सर भाई ।

सो सत्संग करउ मन लाई ॥

मानस-रूपक का महत्व — इस मानस-रूपक का महत्व अत्यन्त विगद है। साहित्यिक दृष्टि से यह रूपक पूर्ण, सुन्दर व अद्वितीय है, साथ ही रामचरित के साथ मानस शब्द जोड़कर इस ग्रन्थ को ‘रामचरितमानस’ के नाम से अनिहित करने में तुलसी के प्रयोजन व प्रतिभा का परिचायक है। तुलसी उच्चतम व्यञ्जना द्वारा यह व्यञ्जित कर देते हैं कि वे परमभक्त थे उन्होंने श्रद्धा, सत्संगति व रामप्रेम के बल पर ऐसे मानस-सरोवर को हृदय के नेत्रों से देखा, जिससे उनकी बुद्धि निर्मल हो गई और उनके हृदय का प्रेम, आनन्द और उल्लास कविता रूपिणी सरयू नदी के माध्यम से थह निकला। कवि ने मानस से सरयू को प्रवाहित कर रामकथा के प्रधान पात्रों और घटनाओं का बड़े कौशल से उल्लेख कर दिया, जिसे महाकाव्य में नाटकीय सन्धियों की पतिष्ठापना हो जाती है। धार्मिक व लौकिक दृष्टि से इसका महत्व यह है कि तीनों तापों का इससे गमन होता है एव जीवन का नार — भगवत्प्रेम प्राप्त होता है।

नामकरण — तुलसी ने इस रामकथा अर्थात् रामचरित का नामकरण ‘मानस’ शब्द के योग में ‘रामचरित मानस’ किया है। उपयुक्त नामन-रूपक इसका एक कारण है। जिस कथा में मानस अर्थात् मानसरोवर का पूर्ण स्फुरोपण व गुणसाम्य उपलब्ध हो वह ‘मानस’ कहलाने की अधिकारिणी कथो नहीं हो सकती है ?

औचित्य — आदि कवि वात्मीक की रामायण से लेकर आज तक राम-कथा अनेक भाषाओं के कवियों द्वारा कही गई है। केवल ने अपनी राम-

क्या का नाम राम चद्रिका रखा. गुप्त जी ने माकेत और किसी ने राम चरित चितामणि परन्तु तुलसी ने इसका नाम 'रामचरित मानस' रखा जो नवैया उचिन व सार्थक है । तुलसी भक्त थे और भक्त नानातरिक विषय भोगों ने दूर रहता है अत वे इसे 'स्वान्त. सुखाय' रचना चाहते थे । जत्र मन रूपी हाथी विषय रूपी दावानल में जल रहा हो तो उसे चद्रिका या चितामणि की आवश्यकता न हो कर 'मानस' की आवश्यकता होती है-- इसलिये तुलसी ने इसे मानस नाम दिया । इसके अतिरिक्त यह श्रुतिमधुर भी है -

“रामचरित मानस एहि नामा ।

सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ॥

मन करि विषय अन्त वन जरई ।

होइ नुस्री जो एहि सर परई ॥”

(बाल. चौ. ३५)

अन्य— इससे समग्ररूप या एक अन्य कारण भी तुलसीदास ने दिया है, वह उनकी समग्रव्यास प्रतिभा का दौगल है । वे स्पष्ट कहते हैं कि श्री महादेव जी इसे रचकर अपने मानस में रखा और मुद्रवसर पाकर पार्वती जी ने रचा । इसी में त्रिव जी ने इसे अपने हृदय में देकर और प्रमत्त होकर सुन्दर 'रामचरित मानस' नाम दिया -

प्रथम—“भोरे मत बड़ नाम गूह तेँ ।” —तुलसी के इत कथन के आधार पर सिद्ध कीजिये कि राम नाम सगुण व निगुण ब्रह्म से बड़ा है ।

अथवा

बालकाण्ड के आधार पर “राम नाम व उसकी महिमा” पर एक निबंध लिखिये ।

उत्तर—तुलसीदास भक्त कवि थे । उन्होने समन्वय भावना का आश्रय लेकर राम चरितमानस की रचना की थी । उस समय एक और निगुण धारा के अनेक सत ‘अलख’ अर्थात् निगुण ब्रह्म की आवाज को बूलन्द कर रहे थे और कुछ प्रेममार्गी सूफी सत भारतवर्ष में प्रचलित आख्यानो के आधार पर सूफी मत के सिद्धांतों का प्रतिपादन कर रहे थे । सूर ने तो इस निगुण को अग्रह्य वता कर सगुण उपासना का आश्रय लिया था । इस प्रकार धार्मिक व वैचारिक क्षेत्र में तनातनी बढ़ रही थी । उस समय तुलसी ने राम नाम रूपी जहाज का सफल भवसागर पार करने को लिया । राम नाम के सम्बन्ध में उन्होने जो बुद्धि समस्त तर्क रामचरित मानस के बालकाण्ड में दिये हैं वे स्तुत्य हैं ।

१ कविता का प्राण—राम नाम की वन्दना करते हुए तुलसी ने कहा है कि राम नाम कविता का प्राण है । बिना राम नाम के अच्छे कवियों की वाणी का आदर नहीं होता है और राम-नाम से युक्त गुण रहित कविता भी प्रशंसा के योग्य ही जाती है—

“मनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ ।

राम नाम विनु सोह न सोऊ ॥”

× × × ×

“सब गुन रहित कुकवि कृत बानी ।

राम नाम जस अकित जानी ॥

सादर कहहिं सुनहिं बुष ताही ।

मधुकर सरिस सत गुण प्राही ॥”

२ शिव द्वारा राम-नाम-स्मरण—राम का नाम वेद-शास्त्रों का सार है, मंगलदायक व अमंगल विनाशक है और शिव-पार्वती इसका निरन्तर जप करते हैं—

“एहि महै रघुपति नाम उदारा ।
अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मगल भवन अमगल हारी ।
उमा सहित जेहि जप पुरारो ॥”

३ प्रभावशाली महामन्त्र—राम का नाम अत्यन्त प्रभावशाली है। केवल शिव-पार्वती ही नहीं, अन्य देवता भी इसके प्रभाव से परिचित हैं। यह वह महामन्त्र है, जिसके जपने से शिवजी काशी में मरने वाले को मुक्ति प्रदान करने में समर्थ हुये हैं और गणेश सर्वप्रथम पूजनीय बन गये हैं। इनका उलटा जप 'मरा' करने पर भी वाल्मीकि आदि कवि बन गये। पार्वती इसके जप से स्त्रियो में शिरोमणि हो गईं और शिव द्वारा पीया गया जहूर भी अमृत बन गया। वास्तव में यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप हैं—

“विधि हरि हर मय वेद प्राण सो ।

अगुन, अनुपम गुन निघान सो ॥

वर्णों में महान—राम नाम के दोनो अक्षर मधुर और मनोहर हैं, वर्णमाला रूपी शरीर के नेत्र हैं। ये दोनो अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमें से एक (रकार) छत्र रूप रत्न और दूसरा 'म' मुकुटमणि रूप से सब अक्षरों के ऊपर है—

“एक छत्रु एक मुकुटमणि सब वरनि पर जोड़ ।

तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोड़ ॥”

ब्रह्म के दो भेद—ब्रह्म के दो भेद हैं। प्रथम निगुण ब्रह्म और द्वितीय सगुण ब्रह्म। तुलसी के मत में राम नाम निगुण व सगुण दोनो प्रकार के ब्रह्म से बड़ा है।

निगुण से बड़ा—राम नाम निगुण ब्रह्म से अधिक महान है। इसको जप कर योगी अनुपम, अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करते हैं। अर्थात्, आत्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ये चारो प्रकार के मक्त राम-नाम का ही आधार लेकर चलते हैं। निगुण उस अग्नि के समान हैं जो काठ के अन्दर विद्यमान है परन्तु वह व्यापक होते हुए भी अर्थात् समस्त प्राणियों के हृदय में उसके विद्यमान रहने पर भी जगत के सब जीव दोन-दुखी हैं। नाम के यथार्थ स्वरूप

महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर नाम का श्रद्धा पूर्वक जप करने से वही निर्गुण ब्रह्म ऐसे रत्न के जानने से उसका मूल्य -

“अस प्रभु हृदये अद्भुत अविकारी ।
सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

नाम निरूपन नाम जपन ते ।
सोच प्रगरत जिमि मोल रतन ते ॥”

इसीलिए तुलसी ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि राम-नाम निर्गुण ब्रह्म से महान है -

“निरगुन ते एहि भाँति बड नाम प्रभाउ अपार ॥”

सगुण ब्रह्म से महान - राम नाम सगुण ब्रह्म से भी महान है । सगुण राम ने भक्तों के लिये मनुष्य शरीर धारण कर अनेक कष्ट सहन किये, परन्तु भक्त प्रेम के साथ नाम जप कर आनन्द और कल्याण के घर हो जाते हैं । सगुण राम ने एक सपत्नी की स्त्री अहिल्या का उद्धार किया, परन्तु नाम ने करोड़ों दुष्टों की त्रिगुणी बुद्धि को सुवार दिया । राम ने स्वयं शिव-घनुष तोडा जब कि उनका नाम ससार के समस्त भयों को दूर करने वाला है । राम ने तो श्वरी, जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति दी, परन्तु नाम समस्त पापियों का उद्धार करने में समर्थ है । राम ने वन्दरो व भालुओं की सहायता से समुद्र पार किया, जबकि नाम के स्मरण मात्र से ससार-समुद्र सूख जाता है । इसीलिए राम-नाम सगुण ब्रह्म से महान है ।

“ब्रह्म राम ते नामु बड वर दायक वर दानि ।
रामचरित सतकोटि महेँ लिय महेस जिथ जानि ॥”

कलिकाल में महत्त्व - तुलसीदास ने यह और अधिक स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि चारों युगों में, तीनों कालों में और तीनों लोकों में नाम को जप कर जीव शोक रहित हुए हैं परन्तु कलियुग में तो सत्युग की भाँति ध्यान, श्रेता की भाँति यज्ञ और द्वापर की भाँति पूजन नहीं हो सकता इसलिए इस काल में तो यह नाम कल्प वृक्ष है -

“नाम काम त्रय काल कराला ॥”

कर्म भक्ति और ज्ञान के अभाव में इस कलियुग में रामनाम ही एक

बधार है। यह रामनाम नृसिंह है और कलिद्युग हिरण्यकश्यप और जप करने वाले प्रह्लाद के समान है।

समन्वय - तुलसी ने सृष्टि व निष्टुंष ग्रह से रामनाम को बड़ा बताया है और साथ ही यह भी कहा है कि निष्टुंष और मृष्टुष के बीच में नाम सुन्दर जाली है और दोनों का अर्थ जान कराने वाला चतुर कुभाषिया है। इस प्रकार तुलसी ने समन्वय के माध्यम से राम नाम को बधार बना कर सृष्टि-निष्टुंष में समन्वय स्थापित किया है -

“क्षुण्ण मयत्त विच नाम सुखाखी।

उत्तम प्रदोधक चतुर कुभाषी ॥”

उपसर्ग - रामनाम की महिमा अनन्त और अखण्ड है। उसका स्वरूप, धुरे नाम से श्रेष्ठ में का नामस्वरूप में किसी भी प्रकार स्मरण करने से हमें दिव्यता में लब्धा होता है -

“नाये शुभाये अनन्त आत्म हूँ।

नाम जपन मगल दिनि दनहूँ।”

इसीप्रकारे तुलसी ने मातारिण प्राणियों का उद्धार करने की दृष्टि से स्तुति की है -

प्रश्न—तुलसीदास ने 'बालकाण्ड' में 'बुष्टों की प्रकृति' का जो विषय किया है उसको प्रकाश में लाइये और यह भी लिखिये कि आप इस सम्बन्ध में तुलसी से कहां तक सहमत या असहमत हैं । दोनों दशाओं में अपने उत्तर की पुष्टि तुलसी कृत रामचरित मानस के बालकाण्ड से उद्धरण देकर कीजिये । (रा. वि १९६५ पूरक)

अथवा

बालकाण्ड के आधार पर संत-असंत के गुण-दोषों का विवेचन करते हुए 'सुधा सुरा सम साधु असाधु' को सोद्धरण स्पष्ट कीजिये ।

अथवा

बालकाण्ड के आधार पर सत्संगति के लाभों व कुसंगति की हानियों का विवेचन कीजिये ।

उत्तर—गोस्वामी ने रामचरित मानस के प्रारम्भ में गणेश, पार्वती, शिव, हनुमान, सीता, राम, ब्राह्मण, भन्त, कवि आदि अनेक देवी देवाताओं की वन्दना करते हुए उनसे 'राम-चरन-रति' की याचना की है और साथ ही परम्परानुसार सन्त वन्दना, दुष्ट वन्दना करते हुए इनकी संगति का प्रभाव भी स्पष्ट किया है ये समस्त वन्दना में मंगला चरण के अन्तर्गत आती हैं ।

संत-स्वभाव वर्णन—समस्त गुणों का भण्डार—सतो का समाज समस्त गुणों की खान है । उसको प्रणाम करते हुए तुलसी कहते हैं—

“सुजन समाज सकल गुन खानों ।
करउ प्रनाम सप्रैम सुवानी ॥”

तुलसा के मत में सतो का चरित्र कपास के चरित्र के समान शुभ है, जिसके फल नीरस (विषयासक्ति), उज्ज्वल (अज्ञानान्धकार से रहित) गुणमय (गुणों का भण्डार) अर्थात् तन्तु युक्त होते हैं । जिस प्रकार कपास का धागा सूई के धेड़ को अपना शरीर देकर ढकं देता है या लोटे जाने, काटे जाने और टूने जाने का कष्ट सहकर भी वस्त्रों के रूप में दूसरों के गुप्त स्थानों को ढकता है, उसी प्रकार सत स्वयं दुःख सह कर दूसरों के दोषों को ढकते हैं—

“जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।”

साक्षात् तीर्थराज—सतो का समाज ससार में चलता फिरता तीर्थराज

प्रयाग है और सब को हर्ष व मंगल प्रदाता है इस में राम-भक्ति रूपी गंगा की धारा, ब्रह्मविचार रूपी सरस्वती, विधि निरीध युक्त कर्मों की कथा यमुना, भगवान् विष्णु और शिव की कथायें, त्रिवेणी हैं। धर्म में अटल विश्वास अक्षय बट है और शुभ कर्मों वा समाज तीर्थराज का नमाज है। वह नगरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का दाता है—

“मुद मंगलमय सत समाजू ।

जो जग जगम तीरथ राजू ॥”

तात्कालिक फल प्रदाता—सती का समाज तात्कालिक फल को देने वाला है। इससे कौवे कोयल बन जाते हैं और वगुले हत्ती का रूप धारण कर लेते हैं।

समता—सती के पास हृदय में समता-भाव होता है उनका न् कोई मित्र होता है न शत्रु। वे तो शत्रु और मित्र के समान भाव से उपकारक होते हैं। सत सरल हृदय और ससार के हितेयी होते हैं।

“वंदउ सत समान चित हित अनहित नहि कोइ ।”

× × × ×

“सत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।”

विशाल हृदय और गुणग्राहक—सती का स्वभाव समुद्र की भाँति होता है जो चन्द्रमा के पूर को देखकर उमड़ता है और साथ ही वे भीरे की भाँति गुणग्राहक होते हैं—

“सज्जन सङ्गत सिधु सम कोई ।

देखि पूर विधु वाढइ जोई ॥” (बाल. चौ ८)

× × × ×

“मधुकर भरिस सत गुन ग्राही ।” (बाल. चौ १०)

दुष्ट-स्वभाव-वर्णन-

अहितकारी— तुलसीदास जी ने दुष्टों को भी प्रणाम किया है। बिना कारण भला करने वाले व्यक्ति का भी दुष्ट अहित करते हैं। दूसरों के हित में बाधा डालना ही उनकी दृष्टि में लाभ है। दूसरों का दूरा करने से उन्हें प्रसन्नता और दूसरों को लाभ पहुँचाने में उन्हें दुःख होता है। वे विष्णु और

महादेव के यशरूपी चन्द्रमा के लिये राहु की भाति होते हैं । वे अकारण दूसरो का अहित करते हैं—

“जे विनु काज दाहिनेहु वाए ।”

परनिन्दक व परछिद्र दर्शन—दुष्ट दूसरों की निन्दा करने में सहस्र-बाहु के समान वीर होते हैं । वे दोषो को हजार आखो से देखते हैं । वे दूसरो को जलाने में अग्नि और श्लोघ में यमराज के समान होते हैं । पाप और अविद्युत रूपी घन में जो कुबेर के समान धनवानं हैं, उनकी वृद्धि सबके हित-नाश के लिये घुस्रकेतु के समान हैं और जिनका कुम्भकरण की भाति सोते रहना ही अच्छा है । ओलो की भाति वे दूसरों का काम विगाडने के लिये अपना शरीर तक त्याग देते हैं—

“पर अकाजु लगि तनु परिहरहि—

जिमि हिम उपल कृपी दली गरही ॥”

कठोर भाषी—दुष्ट कठोर भाषी होते हैं । वे शोपनाग के हजारो मुखो से दूसरो के दोषो का श्लोघ पूर्वक वर्णन करते हैं । पृथु के दम हजार कानो से पर निन्दा सुनते हैं । उनको सुरा अच्छी लगती है, कठोर वचन रूपी वज्र उनका प्यारा है और वे हजार आखो से दूसरो के दोषो को देखते हैं—

“बहुरि सक्र सम बिनवउ तेही ।

सतत सुरानीक हित जेही ॥

वचन वज्र जेहि सदा पियारा ।

सहस्र नयन पर दोष निहारा ॥”

द्वेष—दुष्ट का स्वभाव द्वेषी होता है । वह अपने शत्रुओ से तो द्वेष रखता ही है, परन्तु साथ ही मित्र और उदासीन व्यक्तियों के हित की बात सुनकर भी उसे कष्ट होता है—

“उदासीन अरि भीत हित सुनत जराह खल रीति ।”

सत्सगति व कुसगति—सत, साधु व सज्जनो की सगति सत्सगति है और दुष्टो की सगति कुसगति है । ब्रह्मा ने अच्छे और बुरे सब उत्पन्न किये हैं, पर शुण और दोषो का विचार करके वेदो ने उनको अलग-अलग कर दिया । सत्सगति से पर दुःख कातरता आती और कुसगति से अवशुण्ण ।

मिट्टी हवा के साथ से आकाश में पठ जाती है और नीच जल की संगति से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोना मैना राम का स्मरण करते हैं और असाधु के राम को गालिया देते हैं। कुसंग से धुआ कालिख होता है और वही सुसंग से स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है। वही धुआ जल, अग्नि और हवा के संग से बादल का रूप धारण करके जगत को जीवन देने वाला हो जाता है—

“धूम कुसंगति कारिख होई ।

ललितम पुरान मनु मति सोई ॥

मोई जल अनल अनिल सधाता ।

होइ जलद जग जीवन दाता ॥ -(चौ. ७)

कुसंग से हानी व सुसंग से लाभ—कुसंगती से हानी होती है और सुसंगती से लाभ। दुष्ट कमी-कमी सुसंगति पाकर बलाई करते हैं, परन्तु उनका अखण्ड मलिन स्वभाव नहीं मिलता है। ठगों को सुन्दर त्रेष् में देखकर सत्तार उनको पूजता है, परन्तु अन्त में कालनेमि, राक्षस और राहु की भांति उनका कपट प्रकट हो जाता है। साधु व्यक्ति यदि अनुन्दर रूप में धारण करते हैं तो भी जामवन्त और हनुमान की भांति उनकी पूजा होती है। यह बात लोक और वेदों में प्रसिद्ध है कि कुसंगती से हानि होती है और सुसंगती से लाभ।

‘उषरहि’ अत न होई निवाहू । कालनेमि जिमि रावण राहू ॥

किणहू कुवेपु साधु जनमाहू । जिमि जग जामवन्त हनुमाहू ॥

हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहू वेदविदिज सब काहू ॥”

वास्तव में जिस प्रकार अमृत और मदिरा दोनों को उत्पन्न करने वाला पिता सागर ही है परन्तु साधु अमृत के समान उपकार और असाधु मदिरा की भांति अपकारक होते हैं—

“सुधा सुरा सम सन्धु असाधु ॥”

प्रश्न—रामचरितमानस की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ।

अथवा

—“रामचरितमानस” उत्तरी भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। इस कृष्ण का प्रतिपादन कीजिये।

अथवा

प्रथमरत्न रामचरितमानस के गुणों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डालिये ।
उत्तर—आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में रामायण नामक महाकाव्य की रचना की जिसका अवतरण गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा में किया और उस महाकाव्य का नाम रामचरितमानस रखा । रामचरित मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का वर्णन किया गया है । गोस्वामी जी ने रामायण की रचना क्यों की इसका उत्तर हमें प्रथम सोपान में ही मिल जाता है—

“ स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाय—

भाषा निवन्ध मति मज्जल मात नोति ।”

लोक पक्ष व आत्म पक्ष का समन्वय—तुलसीदासजी ने रामायण की रचना स्वान्त, सुखाय तथा परिजन हिताय की है । वे अपनी तथा दूसरों की आत्मा को शान्ति प्रदान करना चाहते थे मध्य युग में भारत की सभी जातियों का जीवन नैराश्यपूर्ण था । वर्णाश्रम धर्म मर्यादा आदि का भी लोप हुआ जा रहा था लोगो की आस्था किसी एक धर्म पर ही नहीं टिकती थी । समाज का संगठन अश्विशासो तथा अस्थिर प्रवृत्ति के थपेडो के कारण चूर-चूर हुआ जा रहा था ऐसे समय में तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव हुआ । हिन्दू समाज तथा आर्य संस्कृति व धर्म की दुर्घण दुर्दशा का चरित्र देखकर गोस्वामी जी का हृदय चित्कार उठा वे अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सके तथा हिन्दु संस्कृति को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए उन्होंने रामायण की रचना की बुनीसी स्वीकार की । अत रामायण की रचना का मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म समाज आर्य संस्कृति को अधः पतन के गर्त में जाने से रोकना था । हिन्दू जाति को अवनति व नैराश्य के अधकूप में से निकालकर उसको सम्मार्ग पर प्रेरित करना था । अब हमें यह देखना है कि रामायण अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुई है !

लोक प्रियता के कारण—हिन्दुजाति व आर्य धर्म की रक्षा के लिए ही गोस्वामीजी ने रामायण की रचना की । आज भारत के कोने-कोने से रामायण की लोकप्रियता टपकती मिलती है । रामायण प्रत्येक हिन्दु के घर में पाई जाती है । इसी से हम रामायण की लोकप्रियता का अनुमान कर सकते हैं ।

रामायण हिन्दु जनता का इतना सर्व प्रियग्रन्थ है कि वे इसकी पूजा करते हैं। इस लोकप्रियता के कुछ कारण है प्रथमतः तुलसीदासजी ने भक्त कवि होने के नाते अपने ग्रन्थ में भी भक्ति का परिचय दिया है अतः मध्य कालीन धर्मावलम्बियों को एक महारा मिल गया है। यह सहारा मर्यादा पुरपोत्तम राम धे जिनका प्रभाव हिन्दु जनता पर पुनः स्थापित हुआ। लोक प्रियता का दूसरा कारण यह है की रामायण की रचना मन्कृत के वजाय हिन्दी (अवधी) व जायसी की शैली दोहा-चौपाई में की थी अतः शैली व भाषा सरल व सरस होने की वजह से इसने साधारण लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया है। वान्तव ने अन्निध्यक्ति में जितनी सरलता होती है उहेस्य में उतनी ही पूर्णता आ जाती है। तुलसी की ममन्वय गच्छी बहून बड़ी चटी थी। उसी के बल पर रामचरित मानस लोक प्रिय हुई है।

लोकप्रियता का तीसरा कारण यह था कि तुलसीदास जी ने शैवी शाक्तों वैष्णवों आदि के झगड़ों को मिटाकर शुद्ध वैष्णव मत का प्रतिपादन किया तथा सामाजिक व राजनैतिक शिक्षाएँ दी इन सभी बातों के होने से रामायण की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती ही चली गई।

शिक्षा व संस्कृति का आधार—रामायण ने हमें अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। रामायण में हिन्दू समाज की उलझों हुई व्यवस्था को पुनः स्थापित किया। रामायण ने समाज के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार किया। समाज में चारों वर्ग—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र होने आवश्यक हैं तथा चारों आश्रमों, ब्रह्मचर्य ग्रहण्य व वानप्रस्थ, व मन्याम से ही समाज की स्थिति व नांव नजबूत रह सकती है। समाज में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रहकर ग्रहण्य चलाने की तथा शूद्रों के लिए अन्यवर्गों की सेवा करने कार्य रामायण में निरता है। समाज में बटों के आदर सम्मान आतल्य प्रेम वात्सल्य, वीरोचित श्रद्धा व पारम्परिक एकता को शिक्षा हमें रामायण से ही मिलती है। जिस प्रकार पृथ्वी का निना पृथ्वी के धर भोजन नहीं करता उसी प्रकार जनक भी जित शूद्र में रामचन्द्र के यहाँ भोजन करना उचित नहीं समझते। इससे हमें आदर्श मानाश्रितता की शिक्षा मिलती है।

धर्म धर्म का उदघोष—

धर्म सम्बन्धी शिक्षा ही रामायण में खूब दी गई है रामायण में

प्रादुर्भाव के समय भारत में मुसलमानों का आधिपत्य पूर्णरूप से स्थापित हो जाने पर हिन्दुओं के हृदय में गौरव और आत्म-स्वाधीमान के भाव नहीं रह गये थे। कट्टर और धार्मिक असहिष्णु मुसलमान हिन्दूधर्म पर आपेक्षा करते थे और अत्याचार करते थे और पराधीन हिन्दू दौन बने हुए सब कुछ सहन कर लेते थे। हिन्दू लोग हर समय आठ-आठ बासू रोते रहते थे। उनके आमुओं को पीछने वाला व हिन्दू रूपी गजका मुसलमान रूपी ग्राह से उद्धार करने वाला त्रिण्णु कोई प्रकट नहीं हो रहा था ऐसे समय में तुलसीदासजी ने जन्म लिया व रामायण की रचना कर के हिन्दुधर्म के पैर मजबूत किये। शैवो धार्क्तो व वैष्णवो में फँले धार्मिक कट्टता के अड्डो को समाप्त किया तथा सूफी कवियो नाय पथियो तथा निगुण विचार धाराओ वाले ब्यक्तियो के धार्मिक उपदेशो का खण्डन करके सगुण भक्ति की तरफ आकर्षित किया। रामायण में आर्यधर्म की सर्वोच्चता को प्रदर्शित किया और उनके ज्ञाता को राम के रूप में ला खडा किया। यहाँ कारण है कि हमें आज राम नाम का बोलवाला सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक की हम अभिवादन प्रणाली में भी राम नाम का उच्चारण करते हैं।

राजा-प्रजा-सम्बन्ध—रामायण हमें राजनैतिक शिक्षा प्रदान करती है। एक राजा का अपनी प्रजा के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिये-इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमें रामायण में देखने को मिलता है। किस प्रकार एक राजा अपनी प्रजा की रक्षा, सुरक्षा व सुख समृद्धि का खयाल रखता है। एव स्वयं वीतराग सन्यासियो (वसिष्ठादि) द्वारा नियमित होता है तथा राजा सच्चरित्र प्रजा-पालक हो-इसकी शिक्षा हमें रामायण से मिलती है। सचिव-सेवक, राज्यकर्म चारी आदि का सेवा भाव विभीषण की राजनीति दूत को दंड नहीं देना आदि शिक्षाएँ हमें रामायण से ही मिलती हैं।

आवर्श महापुरुष - चरित्र नायक - गोस्वामी जी ने अपने महाकाव्य में जनता को आचरण नीति व मर्यादा का पाठ पढाया है गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अपने महाकाव्य का नायक माना है जो कृपा, सुशीलता, नम्रता, उदारता, कृतज्ञता, सत्यता, धीरता व गम्भीरता के आधार पे। गोस्वामी जी ने साधारण जनता के हृदयो के बसुपो को राम के स्वच्छ व निर्मल चरित्र द्वारा धुलवाया है। राम ने सुग्रीव पर कृपा की, परशुराम जी के सामने नम्र वचन कहे। मर्यादा के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा ली व

रावण के गृह निवास का झूठा दोषारोपण किया। बालिवध-सीता वनवास, साधुसेवा शिवजी का काकभृशुण्डि को शाप, सीता के वियोग में धैर्य रखना समुद्र से रास्ता देने की अनुनय वितय करना उनकी गम्भीरता व धीरता के परिचायक हैं। किस प्रकार राम जो ने वन के दुखों को सहा, अपनी चीरता से पापी राजाओं का वध किया, कैवट, अहिल्या आदि को भव-सागर से पार किया, शुद्र भीलों को अपनाया, व पवन सुत के प्रति कृतज्ञता स्वीकार की और विभीषण पर कृपा कर उनको अपनाया आदि उनके धीरता वीरता, नम्रता के उदाहरण हैं। भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न और भरत के साथ व्यवहार, माता-पिता का आज्ञापालन आदि देखने लायक हैं। राम की पत्नी सीता प्रति व्रत-धर्म की रक्षिका है तो पिता दशरथ सत्यव्रत-धर्म की साक्षात् प्रति मूर्ति।

उपसंहार—उपयुक्त विवेचन के पढ़ने से यह परिलक्षित होता है कि रामायण ने हिन्दु जाति को नैतिक धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आदि सभी क्षेत्रों में शिक्षाएँ दी हैं उसने अपने आदर्शों का प्रतिपादन करके हिन्दु जाति की सब तरह से रक्षा की है। उसके पढ़ने से न मालूम कितने ही व्यक्ति सुधर कर सन्मार्ग चलने लगे हैं। कितने व्यक्तियों ने आदर्श जीवन को अपना लिया है और कितने ही वितरागों से अपने वास्तविक आधार को प्राप्त कर लिया है इस प्रकार आज हम देखते हैं कि रामायण की लोकप्रियता न केवल हिन्दुओं में ही बल्कि देश-विदेश में भी बढ़ी है। आज इस धर्म ग्रन्थ के कारण भारत का नाम गर्व से लिया जाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि रामायण भारत की बाईबिल है जिसने हिन्दू सस्कृत का उद्धार किया है किसी ने ठीक ही कहा है—

“ भारी भवसागर - उतारती कवन पार,
जीये यह रामायण तुलसी न गावती । ”

संकेत

- (१) कथा का नानापुराण निगमागम सम्मत होना।
- (२) लोकोपक व आत्म पक्ष का समन्वय।
- (३) लोक प्रियता के कारण—(१) भक्ति ग्रन्थ (२) सरल भाषा (३) शिक्षाप्रद।

(४) शिक्षायें—(क) सामाजिक (ख) धार्मिक (ग) राजनीतिक
(घ) आचरण व नीति सम्बन्धी ।

(५) आदर्श पुरुष—शक्ति, शील, सौन्दर्य सम्पन्न महापुरुष का चरित्र,
समन्वय शक्ति ।

प्रश्न—‘वालकाण्ड’ के आधार पर तुलसी काव्य-कौशल की विशेषताओं
का उल्लेख कीजिये । (रा० वि० १९६६ पूरक)

अथवा

वालकाण्ड के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार कीजिये ।

अथवा

“तुलसीदास रससिद्ध कवीश्वर थे ।”—इस कथन का समर्थन वाल
काण्ड के उदाहरणों द्वारा कीजिये ।

अथवा

‘वालकाण्ड’ की काव्य-कला का विवेचन कीजिये ।

उत्तर—

काव्य का भावपक्ष—काव्य मानव भावनाओं की सरस व सुन्दर
अभिव्यक्ति है । भावनाओं की सरसता अपनी प्रभविष्णुता से काव्य में रस-
रूप धारण कर लेती हैं और जब स्थायीभाव विभाव अनुभाव और सचारी भावों
के सयोग से अभिव्यक्त होते हैं, तब इसकी निष्पत्ति होती है । यही भाव जब
इस दशा तक पहुँच जाते हैं, तब काव्य में आनन्द प्रदायिनी शक्ति का समावेश
हो जाता है । काव्य का यही भावपक्ष होता है ।

कलापक्ष—

काव्य के कला पक्ष के अन्तर्गत भावों की सुन्दर रूप से अभिव्यक्ति
होती है अर्थात् अभिव्यक्ति पक्ष को ही कलापक्ष कहा जाता है । इसमें
भाषा, शैली, अलंकार, छन्द, प्रकृति चित्रणा न अन्य काव्यांगों के निरूपण से
काव्य की सुन्दरता बढ़ती है ।

काव्य के दो पक्ष हैं—(१) भाव पक्ष (२) कलापक्ष । भावपक्ष और
कला पक्ष की पूर्णता ही किसी कवि को ‘रस-सिद्ध’ अमिथा देने का आधार
है । यही वह आधार है जो कवि के काव्य-कौशल या उसकी काव्य-कला से

सम्बन्धित है। तुलसीदास रस सिद्ध कवीश्वर थे। उनका भावपक्ष व कलापक्ष व दोनों पर समान अधिकार का।

बालकाण्ड का भावपक्ष—

भक्ति रस—तुलसी भक्त कवि थे। उनके हृदय में राम भक्ति का अथाह सागर लहराता था। उसी सागर की लहरों की प्रचण्डता ने रामचरित मानस का निर्माण किया। रामचरित मानस में सम्पूर्ण रसों को आनन्ददायिनी धारारों प्रवाहित हैं। सहृदय रसिक किसी भी धारा में डुबकी लगाकर रसा-स्वादन कर सकते हैं। 'बालकाण्ड' इसका प्रथम सर्ग है जिसमें भंगलाचरण, सद्युग निर्गुण भेद, राम-नाम महिमा, राम कथा महात्म्य एवं अवतार के अनेक हेतुओं पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु इसके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है उनकी समस्त मनोवृत्तियाँ रामाभिमुख होकर मुखर हो गईं और उन्होंने यह रूप धारण कर लिया। बालकाण्ड में भक्ति की प्रधानता है परन्तु बीच-बीच में हास्य, करुण, भयानक आदि रसों के प्रसंग भी आ गये हैं।

कविता-सौन्दर्य—तुलसीदास ने यद्यपि "स्वान्त नुखाय तुलनी रघुनाथ गाया भाषा निवधमति-मञ्जुलमातनोति" कहा है परन्तु फिर भी उनकी दृष्टि में सफल काव्य सुर-सरिता की भाँति सबका हितसाधन करता है और कवि हृदय से निकल कर उसकी भावधारा सहृदय पाठकों को आनन्दित करती है—

“मणि माणिक मुकुता-छवि जँसी ।

अहि-गिरि-गज सिर सोहत तँसी ॥

नूप किरोट तरुनी-तन पाइ ।

लहँहि सकल सोभा अधिकाई ॥

तँसेहि सुकवि कवित दुष कहँ हीं ।

उपजँहि अनत छवि लहँहि ॥”

रस-समन्वय—बालकाण्ड की कविता-गंगा भक्तिरस से प्रारम्भ होकर शृंगार, वात्सल्य, वीर, रोड, अदनुनहास्य आदि विभिन्न धारारों ने समन्वित होकर अलौकिक ओल्हाद दामिनी हो गई है। शिव-विवाह प्रसंग और नारदमोह प्रसंग में हस्य और अदभुत रस की सुन्दर निस्पत्ति हुई है—

“देखि सिर्वाहि सुर-त्रिय मुसकाहीं ।
बर लायक बुलहि नि जग नाहीं ॥”

×

×

×

×

मन हि मन महेस मुसकाहीं ।
हरि के व्यंग धचन नहीं जाहीं ॥”

कलापक्ष—

भाषा—तुलसी का कलापक्ष भी भावपक्ष की भाँति ही समुच्चत और महान् है। भावामिवदवित को सरलता और सफलता के उद्देश्य से संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुये भी तुलसी दास ने देव वाणी की ममता को त्याग कर लोक भाषा को अपनाया। इसीलिए राजा से रक तक उनके ग्रथ-रत्न को समझ सके। उन्होंने लोक भाषा अवधी को परिभाषित कर उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया और साथ ही संस्कृत की कोमल कान्त पदावली का समावेश कर उसमें माधुर्य का आदान कर दिया। श्री गुलावराय जी ने तुलसी की भाषा के सम्बन्ध में कहा है—“तुलसी ने भाषा की शक्तियों का पूर्ण उपयोग कर उसमें गति और शक्ति दोनों उत्पन्न कर दी है। वह हमारे हृदय को स्पर्श कर उनका संदेश हम तक पहुँचाने में समर्थ होती है”।—वास्तव में तुलसी की भाषा मधुर, प्रवाह पूर्ण, शक्ति पूर्ण और प्रभावशाली है, वह प्रसंग व रस का अनुवर्तन करती है।

शैली व छन्द—तुलसीदास जी ने उम मय की प्रचलित समस्त शैलियों में रचना की थी। बालकाण्ड में संस्कृत के वर्ण-वृत्ती से लेकर दोहा, चौपाई, सौरठा, छन्द, आदि छन्दों का सुन्दर प्रयोग है। तुलसी ने जिस शैली को अपनाया उसे ही उन्होंने अपने पारस-स्पर्श से चमका दिया। सरलता, स्वाभाविकता व विदग्धता आदि शैली के गुण हैं।

अलंकार—तुलसीदास केदाव की भाँति “भूषण विनुन राज ही, कविता यनिता वित्त”—को स्वीकार नहीं करते थे। उनकी रचनाओं में अलंकारों की भरमार है, परन्तु उसमें कविता-कामिनी का मौन्दर्य निजरा ही है, क्योंकि उनके अलंकार प्रवल प्रसूत न होकर स्वभाविक हैं। वर्णन की विदग्धता ने उनकी सूक्ष्म प्रतिभा में अलंकारों के स्वाभाविक व सफल प्रयोग

ने सहायता दी है। १० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिबीष के अनुसार उनकी उपमाओं की श्रेष्ठता देखिये—

“रामचरित मानस की कोई चीपाई भले ही बिना उपमा की मिल जाय, किन्तु उनका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसने किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो। उपमाएँ भी अमूल्य रत्न राशि हैं।”

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, लाटानुप्राण, श्लेष, वक्रोक्ति, निदर्शना, ययाक्रम आदि अनेक अलंकारों को उन्होंने एक कुशल कलाकार की भाँति सरलता से उठाकर काव्य में रख दिये हैं। उनका रचना मन्ददास के जड़ने से कितना ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार तुलसीदास भावों के शुष्क मनो-वैज्ञानिक विश्लेषक ही न थे, वरन उन्होंने हलके और गहरे रूपों को एक दूसरे के साथ सशिल्पावस्था में देखा था। उसी प्रकार वे अलंकारों के काव्यशास्त्रीय अध्ययन तक ही सीमित न रह कर, परम्परा से मुक्त अनेक नवीन उपमानों को उद्भावना करने में समर्थ हुए हैं जिससे रसनिष्पत्ति में सहायता पहुँची है।

प्रबंध पद्धता व अन्य—तुलसीदास की रामचरित मानस एक सफल प्रबंध काव्य है। आचार्य राम शुक्ला के अनुसार तुलसी सफल प्रबंधकार हैं क्योंकि प्रबंधकार की पूर्ण भावुकता इसी में है कि वह कथा के मार्मिक स्थलों को पहचान करे और उनका विद्यद वर्णन करे। तुलसी ने यह प्रतिमा थी। साथ ही तुलसी ने प्रकृति का आलम्बन, उद्दीयन तथा शिक्षाप्रद रूप में चित्रण किया है। चित्रालोक वर्णन के तो वे धनी थे। कथा में होने वाले ग्रुण जैसे—सम्बन्ध निर्वाह, भावी सूचना, नाटकीय संघर्षों आदि बालकाण्ड में विद्यमान हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बालकाण्ड में तुलसी काव्य-शला के दोनो पक्षों के मूर्धन्य स्थान पर बसते हैं। उनके काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। अनुसूति प्रवणता, भावुकता, इस परिपाक, भाषा सौन्दर्य, श्लकार योजना, प्रबंध-पद्धता, वर्णन कौशल, अद्भुत चरित्र-चित्रण क्षमता आदि सभी माहिल्यिक दृष्टि कोणों से वह का चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। उद्देश्य की महानता ने तो इसे जन-जन के गले का हार बना दिया है जिसे देखकर हरिबीषजी ने कहा था—

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पाँ तुलसी की कला ।”

अवश्य ही तुलसी जैसी कलात्मक प्रतिमा का धनी पाकर कविता हलसी होगी। ऐसे तुलसी की सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरित मानस का आदि काण्ड बाल काण्ड है—

“बालकाण्ड का आदि, अयोध्या काण्ड का मध्य और उत्तर काण्ड का अन्त—इसको जो भली भाँति समझे, सो सत’ परन्तु इस कथन के अनुसार बालकाण्ड का आदि-भाग विशेष प्रशंसनीय है। अयोध्याकाण्ड तो मानस का मेखदण्ड है और उत्तरकाण्ड दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण है, परन्तु बालकाण्ड रामचरित मानस लिखने व राम के अवतार लेने के हेतुओं पर प्रकाश डालता है और साथ ही सत-असत वर्णन, राम कथा महत्त्व, सगुण-निगुण भेद व दोनों से राम-नाम की महानता के प्रतिपादन से रामचरित मानस की आधार शिला है। ‘मानस रूपक’ के कारण इसके नाम का औचित्य सिद्ध होता है और शिव-विष्णु समन्वय व शैली समन्वय से इसके दृष्टिकोण की उदारता प्रकट होती है। वास्तव में, बालकाण्ड का काव्य-सौन्दर्य पाठकों को अभिभूत कर अलौकिक आनन्द प्रदान करने में पूर्ण समर्थ है।

प्रश्न—प्रबध काव्य की दृष्टि से ‘रामचरित मानस’ और ‘रामचन्द्रिका’ की तुलना कीजिये।—

अथवा

“पूर्ण भावुक वही है जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्म स्पर्शों अंग अंग का साक्षात्कार कर सके श्रोता या पाठक के समक्ष अपनी शब्द-शक्ति से ‘प्रत्यक्ष’ कर सके। हिन्दी के कवियों में ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है।” — इस कथन की व्याख्या कीजिये।

अथवा

प्रबधकवि की दृष्टि से तुलसी और केशव की तुलनात्मक बालोचना कीजिये।

अथवा

“तुलसी ने जीवन की विविध परिस्थितियों का जैसा वर्णन किया

है, वंसा केशव ने नहीं। उनके द्वारा वर्णित जीवन में जीवन की बहुत थोड़ी वशाओं का समावेश हुआ है।" - इस कथन के अनुसार तुलसी और केशव की तुलना कीजिये।

उत्तर - तुलसी और केशव ने क्रमशः 'रामचरित मानस' और 'रामचंद्रिका' नामक प्रबंध काव्यों की रचना की है। प्रबंध काव्य के तत्वों में वस्तु नेता, रस, भाविक स्थलों की पहचान, प्रबंधत्व व स्थानगत दृश्यों की विशेषता आदि प्रधान हैं। प्रबंध काव्य के इन तत्वों की दृष्टि से जब हम 'रामचरित मानस' और 'रामचंद्रिका' की प्रबंध कल्पना पर विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन समकालीन दोनों कवियों की काव्य-साधना में महान् अन्तर है। परिस्मृतियाँ, दृष्टिकोण एवं उद्देश्य आदि भिन्नता ही इनकी काव्य-साधना में भिन्नता के हेतु है।

कथावस्तु - 'रामचरित मानस' व 'रामचंद्रिका' दोनों की कथावस्तु मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण है। परन्तु तुलसी पहले भक्त थे और फिर कवि तथा केशव दरबारी व समलकार प्रिय कवि थे। इसीलिए कथा प्रसंगों में अन्तर आगया है। तुलसी ने मर्यादा की रक्षा के लिये परशुराम का भागमन शिव धनुष टूटने के तत्काल पश्चात् ही बताया है परन्तु केशव ने बरतते खाना होने के बाद भाग में। तुलसी ने कथ की रचना में प्रारम्भ में अपना उद्देश्य 'स्वान्त सुखाय' बताया है जबकि केशव ने "रामचंद्रिका बरपत हों बहुछन्न" कहकर रामकथा को गीण कर दिया एवं पद्य से छन्दों के निरूपण को प्रधान लक्ष्य बना लिया।

शैली व रस - दोनों काव्यों के नेता 'राम' ही हैं, परन्तु दोनों के रूपों में महान् अन्तर है। राम का ईश्वरीय अवतार भेष में गीण हो गया। तुलसी ने नौ रसों की सम्यक् व्यंजना की है। उनके काव्य में रस-मूर्च्छि स्थान हो जाती है जबकि केशव उसके लिए प्रयत्नशील से जान पड़ते हैं। केशव कवोचि सब रसों का पर्यावगान शृंगार में ही मानते थे और उनकी प्रकृति भी शृंगार प्रिय थी, उन्होंने शृंगार को ही अधिक महत्व दिया। परन्तु तुलसी ने सब रसों को धरना कर उनकी यथा स्थान चित्रित किया। रस-व्यंजना में भी केशव अनन्तार प्रियता का त्याग न कर सके, इसने रचनाओं में शरीर-वर्णना 'सुन्दर' होने लगी है।

मामिक स्थलों का वर्णन - प्रवचकार- कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता इस बात से चलता है कि वह कथा के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान पाता है या नहीं। रामकथा में कई मर्मस्थल हैं, जिनमें से निम्नलिखित हैं -

- (१) राम का अयोध्या त्याग ।
- (२) पथिक रूप में राम-सीता-लक्ष्मण का वन गमन ।
- (३) चित्रकूट में राम-भरत मिलन ।
- (४) शबरी का आतिथ्य ।
- (५) लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम-विलाप ।
- (६) भरत की प्रतीक्षा

इन सभी प्रसंगों का बड़े विस्तार एवं हृदय द्रावक रूप में तुलसी ने वर्णन किया है । परन्तु केशव इनमें से कई प्रसंगों को चलता सा कर गये हैं । पथिक रूप में राम सीता और लक्ष्मण का वन गमन कितना करुणा पूर्ण प्रसंग है जिसके लिए तुलसी ने कई पृष्ठ रगे हैं, परन्तु केशव ने तो एक छन्द में ही इसकी इति श्री कर दी है । इसी प्रकार केशव द्वारा वर्णित लक्ष्मण मूर्च्छा प्रसंग भी उतना भाव विभोर नहीं करता है जितना तुलसी द्वारा वर्णित प्रसंग । केशव ने लिखा है -

“लक्ष्मण राम नहीं अवलोक्यो,
नैनन ते न रह्यौ जल रोक्यो ।
वारक लक्ष्मण मोहि विलोकी,
मोकहँ प्राण चले तजि रौ की ।
हो सुमिरौ गुन केतिक तेरे ,
सांवर पुत्र सहायक भेरे ।
बोलि उठो प्रभु को पन पारो,
नातरु होत है मो मुख कारो ॥”

इतना पटने पर भी वह करुणा पूर्ण स्थिति नहीं बनती है जो तुलसी के इन पदितियों से व्यजित है -

“जैहो, अवघ कौन मुख लाई ।
नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई ॥”

ग्रह है धातृत्व प्रेम, मर्यादा, विपाद, निराशा व आत्मग्लानि का सश्लिष्ट चित्रण ।

जीवन की प्रत्येक स्थिति का चित्रण — मानव प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ हृदय का जैसा रागात्मक सामग्रस्य तुलसी में दिखाई देता है, वह अन्य किसी में नहीं । मग्नव सम्बन्धों की कोमलता पर तुलसी ने केशव से अधिक ध्यान दिया है । मुद्रिका प्रसंग इसका प्रमाण है । आचार्य शुक्ल जी का यह कथन है —

“केशव को कवि का हृदय नहीं मिला था । उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिये । वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था ।

अन्य — केशव का कला पक्ष के प्रति अधिक आकर्षण था । छन्द-योजना, अलंकार-योजना, उक्ति वैचित्र्य, वाग्विदग्धता एवं सवाद सौष्ठव में वे तुलसी से कुछ आगे प्रतीत होते हैं । परन्तु साथ ही उनकी रचना में हृदय-हीनता है, भावुकता का अभाव है, तल्लेनता की स्थिति नहीं है अर्थात् भावात्मक या अनुभूति पक्ष दुर्बल है, अतः उनका काव्य 'मानस' के समकक्ष नहीं है । वे तो 'कठिन काव्य के प्रेत थे चमत्कार और पांडित्य प्रदर्शन उनकी रुचि थी और साथ ही दरवारी कवि होने से आश्रयदाता के मुक्तापेक्षी थे । दूसरी ओर प्लासी भावुक भक्त थे, जीवन की विविध परिस्थितियों का उन्हें ज्ञान था, आदर्श प्रतिष्ठापन में उनकी रुचि थी और मार्मिक प्रसंगों की उन्हें पूरी पहचान थी । अतः प्रवचत्व की दृष्टि से रामचरित मानस दिवस निशा प्रकाशित रहने वाला सर्वोत्तम रत्न है जबकि रामचद्रिका कीटानुबद्ध रत्न है ।

प्रश्न— “हमारा कवि मूल कथानक अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण से लेकर उसकी रूपरेखा का अनुमान करते हुये उससे बहुत कम हटता है । फिर भी जब कभी और जहाँ कहीं वह हटता है वहाँ वह प्रायः कलात्मकता प्रदर्शित करता है ।” —इस कथन की समीक्षा उदाहरण सहित कीजिये ।

अथवा

‘रामचरित मानस’ के कथानक के आधार ग्रंथ कौन कौन से हैं ?
उनका मानस पर किस रूप में प्रभाव पड़ा ? स्पष्ट कीजिये ।

अथवा

“नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् ।
रामायणे निगदितं क्वचिदन्य तोडपि ।”

तुलसी की इस उक्ति पर प्रकाश डालिये ।

उत्तर—रामचरित मानस का कथानक सम्पूर्ण जीवन की विविध परिस्थितियों को अपने कलेवर में समेटे हुए, उसके रचयिता को लोकनायक की पदवी से विभूषित करने में समर्थ है । इस ग्रंथ रत्न की रचना में तुलसी ने उस समय तक काव्यों और नाटकों में प्रचलित रामकथा को आधार बनाया परन्तु उन्होंने उन आधारों का अद्यानुकरण नहीं किया वरन् अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा के बल पर उनमें नवीन प्रसंगों एवं तथ्यों की उद्भावना कर इस ग्रंथ की लोकोपयोगिता में चार चाद लगा दिये । आदि कवि वाल्मीकि का हृदय-समुद्र जब शीघ्र मिथुन के वध को देख कर करुणा-रूप में उमड़ा था और उन्होंने रामायण की रचना की थी, तब से रामकथा का प्रारम्भ हुआ और बाद में अनेक काव्यों व नाटकों में इस कथा को आधार बनाया गया । तुलसी तब पहुँचते-पहुँचते ये ग्रंथ संस्कृत भाषा की ममता को न छोड़ पाये थे । तुलसी ने इस ममता का त्याग कर रामचरित मानस की रचना अनेक पुराण, वेद, शास्त्र, बाल्मीकि रामायण व अन्य अर्थात् प्रसन्नराघव, हनुमान-नाटक, अध्यात्म रामायण, रघुवंश, कुमार सम्भव, उत्तर रामचरित नाटक आदि को आधार बना कर की । परन्तु विशेषता यह है कि इन समस्त आधार ग्रंथों से मानस थोड़ा भिन्न है यही भिन्नता तुलसी की प्रतिभाजन्य शक्ति है, जिसके बल पर मानस सर्वथा नूतन ग्रंथप्रतीत होता है । केवल कथा के प्रसंगों तक ही यह भिन्नता समिति न होकर पात्रों के चरित्र तक विकसित हो गई है । स्वयं तुलसी ने इसी लिए कहा है—

“नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् ।

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोडपि ॥

स्वात्. सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा ।

भया निबध मति भङ्गल मातनोति ॥”

वाल्मीकि रामायण—महर्षि वाल्मीकि की रामायण में वर्णित कथानक ही मूल रूप में मानस के कथानक का आधार है । यद्यपि यज्ञ-तंत्र कथा और उनके वर्णन धर्म में कुछ भेद आ गया है, फिर भी उनके मूल रूप में कोई अन्तर नहीं आ पाया है । तुलसीदास ने कथा भाग का रूप तो 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार ही रखा है । तुलसीदास की अहिंसा वाल्मीकि रामायण की अहिंसा के अनुसार ही पापाण रूप है । कैंकयी-वरदान के प्रसंग में भी वाल्मीकि रामायण और मानस में कुछ साम्य ही पड़ता है । मानस की कथा वाल्मीकि रामायण की नामों में निर्मित होकर आदर्श समाज और आदर्श धर्म की रूप रेखा का निर्माण करती है ।

रघुपति एवं कुमार सम्भव—तुलसी पर महाकवि कालिदास के 'रघुपति एवं कुमारसम्भव' नामक महाकाव्यों का प्रभाव भी पड़ा है । कालिदास ने माना पात्रों को 'आदर्श' शब्द में सम्बोधित किया है, उसी प्रकार तुलसी ने भी उन्हें 'जपों' कहा है । कालिदास की सर्वश्रेष्ठ उपमा 'दास्यः न अनुत्तमः परे ह्यनुत्तमो नैः संतागमः का विप्रस्ये उन शब्दों में दिया है—

‘गिरा वरुण उल्लसन्ति सुन महिषत मित्र न मित्र ।

बदर मीतागम पद जिहृति पगम पिय दिग्ग ॥ (वा.शं १८)

इन्हीं ही तुलसी ने 'जल शीवि' रूप शीलकता का समावेश कर

पश्चात् देवताओं ने सरस्वती देवी से प्रार्थना की— हे देवि । यत्न पूर्वक तुम तुम भूलोक में अयोध्या जाओ । राम के अभिषेक में ब्रह्मा के वचन से विघ्न डालने का यत्न करो । पहले मथरा में प्रवेश करो, बाद में कैकयी में । विघ्न उत्पन्न होने पर हे शुभे, तुम पुनः स्वर्ग लौट आना । यह श्रुतकर सरस्वती ने कहा ऐसा ही हुआ, और उसने मथरा में प्रवेश किया । तुलसी दास ने अपने 'मानस' में यह प्रसंग 'अध्यात्म रामायण' से ही लिया है । तुलसी की मथरा और कैकयी सरस्वती के प्रभाव से अपनी सात्त्विक बुद्धि को खो बैठती है । तुलसी ने विशेष रूप से इसी प्रसंग को इस कारण ग्रहण किया है, क्योंकि इस अलौकिक प्रभाव कैकयी के दोष का परिमार्जन सुगमता से हो जाता है । 'अध्यात्म रामायण' से थोड़ा सा संकेत पाकर कवि ने धनुर्भङ्ग राजमहा में करवाया है । इसमें उसे विवेचनीय स्वयं पर नाटकीय प्रभाव छाने में सहायता मिली है ।

इनके अतिरिक्त मानस पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव राम के सद्युग निष्ठा रूप के विवेचन त्रिवेदी की स्थिति, भक्ति और ज्ञान, सन्सग, मोक्ष, वैराग्य आदि प्रसंगों पर पड़ा है । बालकाण्ड की अनेक अवान्तर रूपाएँ भी तुलसी ने इसी से ली हैं ।

प्रमन्न राघव नाटक— प्रमन्न राघव नाटक का प्रभाव भी मानस पर पड़ा है । इसका अनुकरण करते हुए ही कवि ने राम-सीता दर्शन विवाह के पहले ही करा दिया है, जिसमें कवि को पूर्वानुराग का चित्रण करने का सुअवसर प्राप्त हो सका है । परन्तु यह राम-सीता मिलन एतन्त में नहीं करवाया गया है वरन् समस्त प्रसंग में राम के साथ लक्ष्मण और सीता के साथ उनकी द्रिय सखियाँ हैं । सीता और राम का पुष्पवाटिका का मिलन प्रेम के स्वामोदिक विन्तु दिव्य वर्णन के लिए आदर्श है । 'प्रमन्न राघव' के आधार पर ही कवि ने धनुर्भङ्ग के पश्चात् सीता ही परशुराम को राजसभा में बुद्धवा कर राम-परशुराम सवाद करवाया है परशुराम को प्रमन्न में लाकर कवि ने मनो-वैज्ञानिक तथा नाटकीय परिस्थिति का अच्छा चित्रण किया है । प्रमन्न राघव का अनुकरण करते हुए कवि ने छद्मवैसी हनुमान के सम्मुख एतन्त में जगन्निन्दता सम्वाद करवाया है । इससे हनुमान को मौता के हृदय में मुग्धता राम-प्रेम की अग्नि का असङ्ग परिचय कराने और उन्हें इच्छा साक्षी बनाने में कवि को सहायता मिली है । इनके अतिरिक्त राघव-सीता-मातास्य, ज्यो

वांटिका में मुद्रिका प्रसंग आदि प्रसन्न राघव के प्रभाव स्वरूप चित्रित हुए हैं ।

हनुमान नाटक—मानस में अवान्तर कथा-भेद और प्रसंग विस्तार इसी का प्रभाव है । जनक का प्राण, उनका निराशा-जन्य दुःख, लक्ष्मण का कठोर प्रत्युत्तर, जटायु की कर्ण मृत्यु पर राम का शोक प्रदर्शन, सुमित्रा का लक्ष्मण को उरदेश, केचट-प्रसंग, अंगद के ध्यंग्यपूर्ण वचन आदि हनुमान नाटक की प्रेरणा से ही चित्रित हुए हैं ।

राम के रूपों में अन्तर—वाल्मीकि का राम नर-रूप लिए हुए हैं । यद्यपि उसमें अध्यात्मिकता का पुट है । तथापि उसमें नर कृतियों का विस्तार वर्णन है । और वाल्मीकि का राम मानव मात्र के लिए आत्मत्व का उपदेश देना प्रतीत होता है । परन्तु तुलसी का राम ऐसा नहीं । वह हमें भगवान् के रूप में दिखाई पड़ता है यद्यपि तुलसी दास ने अपने मानस में कहीं भी उनको भगवान् के रूप में वर्णित करने की चेष्टा नहीं की तब भी हमारी श्रद्धा उन के प्रति राम राजा होने के साथ साथ भगवान् राम के चरणों पर अर्पित करने में नहीं शिथिल होती । हमें उनका चित्र अलौकिक प्रति भाजित होने लगता है । हम उनकी मर्यादाओं पर मुग्ध हो उठते हैं और आत्म विभोर हो कर उनके भगवद् रूप के उपासक हो उठते हैं ।

यही विशेष अन्तर दोनों कवियों के राम में है । यद्यपि वाल्मीकि का राम ही अन्य कवियों के राम को जन्म देवे वाला है परन्तु तुलसी की अलौकिक प्रतिभा-गभीर विवेचन शैली और कल्पना शक्ति तथा वर्णन शैली ने तुलसी के राम को अन्य कवियों के राम से बहुत अधिक ऊँचा उठा दिया है और तुलसी का राम विश्व का नायक हो गया है । वह जनता जनार्दन का परिपालक, रसक सभी कुछ बन गया है । उसमें नीच से नीचतम और महान से महानतम ध्यक्त्व के एकीकरण की शक्ति आ गयी है उसके लिए लघु-गुरु का कोई भेद नहीं । तुलसी का राम समाज-जाति राष्ट्र-देश का सेवक होने हुए भी अलौकिक शक्ति सम्पन्न है । जो कि प्रतिफल में अपनी शक्ति से भी सभी और माधुर्य-प्रेम-उदारता की किरणें प्रसृत कर रहा है ।

तुलसी के राम में हम मर्यादाओं का वन्दन पाते हैं । परन्तु मर्यादाएँ केवल मानवचर्म वक्ता के लिये हैं । उन मर्यादाओं से लोकहित होगा इसी लक्ष्य से उन्हें राम अपनाए बैठे हैं । इन सभी विषय विचारों का अध्ययन

स्पष्ट करता है कि राम का लोकहित स्वरूप तुलसी अन्य कवियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ कर पाये हैं।

वाल्मीकि रामायण में राम महापुरुष है और अध्यात्म रामायण में वे सम्पूर्णता ईश्वर है। तुलसी ने अधिकतर अध्यात्म का ही आदर्श अपने सामने रखा है। यद्यपि उन्होंने उसमें अपनी मौलिकता को भी स्थान दिया है। जहाँ कहीं कवि ने कथा-प्रवाह में परिवर्तन किया है वहाँ दुरुहता के स्थान में कलात्मकता और कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। तुलसीदास ने राम के लौकिक रूप वाल्मीकि से और अलौकिक रूप अध्यात्म रामायण से लिये हैं कवि 'अध्यात्म रामायण' और वाल्मीकि रामायण की रूप रेखा का अनुसरण करते हुए अपनी मौलिकता का प्रकाश भी विकीर्ण करता जाता है। जहाँ कहीं और जब कभी भी वह उपर्युक्त ग्रंथों से कुछ दूर हटता है वहाँ कलात्मकता प्रदर्शित करता है।

प्रश्न—'बालकाण्ड' की 'अलंकार-योजना' पर टिप्पणी लिखिये।
अथवा

'गोस्वामी जी के अलंकार प्रयत्न-प्रसूत नहीं हैं—इस कथन पर प्रकाश डालते हुए 'बाल काण्ड' के अलंकारों का विवेचन कीजिए।

उत्तर—काव्य की शोभा बढ़ाने वाले उपकरण अलंकार कहलाते हैं—“काव्य शोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रयत्नानि अथवा जो अलंकृत करता है वह अलंकार होता है। जिस प्रकार कोई सुन्दर रमणी अलंकारों के यथास्थान धारणों से अधिक सुन्दर दिखाई देती है उसी प्रकार कविता का सौन्दर्य भी अलंकारों के समुचित प्रयोग से निखरता है परन्तु जब ये अलंकार प्रयत्न प्रसूत होने लगते हैं या कवि चमत्कार या पाण्डित्य प्रदर्शन के फेर में पढ़कर इनका अधिक प्रयोग करने लगता है अब कविता का स्वाभाविक सौन्दर्य दब जाना है और ये अलंकार भाव के पोषक होने के स्थान पर उसके विरोधी तथा बाधक बन कर रस के अपकर्ष के हेतु बन जाते हैं। जब कोई कामिनी अपनी प्राकृत और स्वाभाविक शोभा के भार से दबी जा रही हो और अपने पाँवों को पृथ्वी पर सीधे डालने में असमर्थ हो तब उसे किसी भी अलंकार के भार से लाद देना उचित नहीं है। ऐसा करने से तो उसका सौन्दर्य दब कर निस्प्राण हो जावेगा। अतः कविता में अलंकारों का समुचित व यथा स्थान प्रयोग करना ही सौन्दर्य के लिये उचित है।”

गोस्वामी तुलसीदास के बालकाण्ड में अलकारों का प्रयोग स्वाभाविकता और सौन्दर्य के साथ हुआ है। वे काव्य के सौन्दर्य व भाव का उत्कर्ष करते हैं और उनसे वर्ण्य विषय में स्पष्टता तथा प्रभावशीलता आ गई है। उनके अलकार केशव की भांति प्रयत्न प्रसूय न होकर सीधे हृदय से निकल कर पाठक के मन को छू लेते हैं। कथा के स्वच्छन्द प्रवाह में वे कहीं बाधक नहीं हैं।

शब्दाकारों व अर्थालकारों का 'बालकाण्ड' में खूब प्रयोग हुआ। शब्दालकार अर्थात् अनुप्रास, नामक श्लेष आदि की छटा इसमें सर्वत्र विखरी पड़ी है। अर्थालकारों में भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यथाक्रम, निर्देशना आदि का यथास्थान प्रयोग दर्शनीय है।

अनुप्रास—बालकाण्ड में अनुप्रासों की प्रचुरता है। छैकाप्रास, वृत्त्यानुप्रास व लाटानुप्रास का प्रयोग स्थान-स्थान पर काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं—छैकानु प्राप्त देखिये—

“हरिहर पव रति मति न कुतरकी ।”

अन्त्यानुप्रास—

“मगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।”

वृत्त्यानुप्रास— ‘काक कर्हि कल कठ कठोर’

X X X X

“सुधा सुधाकर सुरसरि साधु ।”

लाटानुप्रास—पूर्ण शब्दों की एक ही अर्थ में आवृत्ति और अन्वय भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ हो, सब लाटानुप्रास अलकार होता है। बालकाण्ड में स्थान-स्थान पर लाटानुप्रास के दर्शन होते हैं—

“साधु असाधु सुजाति कुजाति ।” (चौ० ५)

X X X X

“नील सरोवह नील मनि नील नीरघर स्याम ।

लाजहि तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम ॥”

(बा० दो० १४६)

यमक—यमक अलकार का भी बालकाण्ड में कई स्थलों पर सफल प्रयोग हुआ है।

“असे मानस, मानस बख बाही ।

भइ कवि बुद्धि-विमल अवगाही ॥” (चौ० ३६)

× × ×

भजेउ राम आपु भव चापू ।

भव भय भजन नाप प्रतापू ।” (चौ० २४)

श्लेष—अभग श्लेष

“साधु चरित सुभ चरित कपासू ।

निरस विसद गुनमय फल जासू ॥” (चौ० २)

समंग श्लेष— “बहुरि सकु सम बिनबउं ते ही ।

सतत सुरानीक हित जे ही ।”

इन शब्दालंकारों की भांति अर्थालंकारों का भी सफल प्रयोग वालकाण्ड में दर्शनीय है। यथाक्रम अलंकार का सौन्दर्य देखिये—

“वदउ सत असज्जन चरना ।

दुखप्रद उभय बीच कछु वरना ॥

बिछुरत एक प्राण हरि ले ही ।

मिलत एक दुख-दारुन दे ही ।” (चौ० ५)

× × ×

“अरथ अनूप सुभाव सुभासा ।

सोई पराग मकरन्द सुवासा ।” (चौ० ३७)

निदर्शना—असम्भव वस्तुओं की उपमान रूप में कई स्थलों पर वालकाण्ड में हुई है।

“कह रघुरति के चरित अपारा ।

कह मति मोरि निरख ससारा ॥

जेहि मारुत गिरि मेरु उठाही ।

कहहू तूल केहि लेखे माही ॥”

रूपक—वालकाण्ड रूपकों का अक्षय भंडार हैं। रूपक, साग रूपक व परम्परित रूपक के अनेक उदाहरण इसमें उपलब्ध हैं। रामचरित मानस को मानसरोवर का रूपक तथा सन्त-समाज को तीर्थ राज प्रयाग का रूप वालकाण्ड में दिया गया है। यह सागरूपक का श्रेष्ठ व सफल उदाहरण है। इतना लम्बा व सफल सागरूपक अन्यत्र नहीं है। परम्परित रूपक का सुन्दर उदाहरण देखिये—

"सुखं विनाम सकलं जल रंजनि ।
 रामं जल कलि कलुप विमंजनि ॥
 जल कया कलि पतंग मरनी ।
 जल विवेक पावरु कहं वरनी ॥" (चौ० ३१)
 उत्पला— "हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए ।
 मानहुं अबहि भवन ले जाए ॥"

उपमा—रूपक और उपमा का प्रयोग बालकाण्ड से शुरू हुआ है। इन दोहो अलंकारों पर गोस्वामीजी का पूर्ण अधिकार था। पूर्णोपमा, सुप्तोपमा व मालोपमा व मालोहृमा का सौन्दर्य दर्शनीय है। मालोपमा देखिये :—

"वदत नाम राम रघुवर को ।

हेतु कसानु मानु हिमकर को ॥

विधि हरि हरमय वेद प्राण सो ।

अगुन अनुहम गुन निघान सो ॥ (चौ० १६)

एक अन्य सुन्दर उपमा का निम्नलिखित उदाहरण है—

"गिरा अरथ जल बोचि सम कहिअत मिल्न न भिन्न ।

वदत सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय स्निग्ध ॥"

प० अयोध्यासिंह 'सरिऔष' के अनुसार तुलसी की उपमाओं की श्रेष्ठता देखिये—

"रामचरित मानस की कोई चौपाई भले ही बिना उपमा की मिल पाय, किन्तु उसका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसमें किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो। उपमायें भी अभूत्य रत्नराशि हैं।"

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि रससिद्ध कवीद्वर तुलसीदास ने बालकाण्ड में ध्वलाकारों और अर्थालंकारों का जूब प्रयोग किया है। ये अलंकार काव्य की घोभा-वद्धन करने वाले और कथा-वस्तु के विकास को गति प्रदान करने वाले हैं। तुलसी की अनुभूतियों की तीव्रता, स्पष्टता व प्रभावशीलता प्रदान करने वाले ये अलंकार नन्ददास के जड़ने से भी अधिक सुन्दर हैं

